॥ श्री ॥

श्रीविश्वकर्माप्रणीतः

विश्वकर्माप्रकाशः

॥ एक अनुभवी विद्वान द्वारा अनुवादित ॥

यह ग्रन्थ

मुंबईस्थ

पं० श्रीधर शिवलालजी की

आज्ञानुसार

किशनलाल द्वारकाप्रसादने

अपने

" बंबईभूषण " यंत्रालयमें

छापकर प्रकाशित किया

MUTTRA.

Registered under act XXV of 1867.

भूमिका

यह संसार बड़ा विलक्षण है, इसकी प्रत्येक वस्तु भी बड़ी विलक्षण हैं, विलक्षणता होने का कारण भी है कि इसके चराचर सबही पदार्थ अहर्निश एक दशा से दूसरी में बदलते ही रहते हैं, कभी एक स्थिति में नहीं रहते। ऐसे विश्वके रचनेवाले उस परमात्माका नाम विश्वकर्माहै वही इस संसार का रचनेवाला बड़ा ऐंजिनीयर है, उसी के आधार पर यह सब जो कुछ आंखों से दिखाई देता है, स्थित है।

इस विश्वकर्मा नाम के ही आधार पर दुर्ग, प्रासाद, मन्दिर, राज-स्थान, देवालय, जलाशय, वापी, कूप, तड़ागादि के बनाने में निपुण कारीगरों का नामभी विश्वकर्मा पड़गयाहै ये लोग इस काममें बड़े निपुण थे, भारतवर्ष की पहिली बनी हुई इमारतें इस बात की साक्षी देरही हैं। बंबई का ऐलीफेंटा टापू देखने से स्पष्ट ऐसा अनुभव होने लगता है कि यह मनुष्यकृत नहीं किन्तु किसी दैवी शक्तिद्वारा निर्म्मित है।

इन्द्रप्रस्थमें राजा युधिष्ठिर की राजसभा का स्थान जो मय नामक दैत्य के आधिपत्य में बनाया गया था और जिसमें उसने अपनी कारीगरों से ऐसे २ काम बनाये कि जहां जलाशय धरातल और धरा-तल जलाशय प्रतीति होते थे। इस बात के स्मरण करने से और उन कारीगरों की बिचित्र कारीगरी पर दृष्टि डालने से रोमांच खड़े हो जाते हैं और मौनधारण के अतिरिक्त कुछभी कहना नहींबन पड़ता॥

इस ग्रन्थमें उसी विश्वकर्मा के कहे हुए इमारत संबंधी संपूर्ण नियम दिये गये हैं।

भवदीय

बाबू किशनलाल द्वारकाप्रसाद

बम्बई भूषण छापाखाना

मथुरा।

विश्वकर्म्मा प्रकाश की अनुक्रमणिका ।

विश्वकर्म्मा प्रकाश की अनुक्रमणिका ।

इति अनुक्रमणिका समाप्त ॥

पुस्तक मिलने का पता—

बाबू किशनलाल द्वारकाप्रसाद

बंबईभूषण प्रेस

मथुरा ।

ओ३म्

श्रीहरिम्वन्दे

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ।

विश्वकर्माप्रकाशः

भाषाटीकासहितः ।

॥ मंगलाचरण ॥

जयति वरदमूर्तिर्मङ्गलम्मङ्गलानां जयति सकलवन्द्या भारती ब्रह्मरूपा ॥ जयति भुवनमाता चिन्मयी मोक्षरूपा दिशतु मम महेशो वाङ्मयः शब्दरूपम् ॥ १ ॥

वरदायिनी मूर्ति है जिसकी और मंगलों की भी मंगल करने वाली, सम्पूर्ण लोकों से पूजित सबके नमस्कार करनेयोग्य ब्रह्मरूपा सरस्वती जयको प्राप्तहो और चेतन और मोक्षरूप तीनों भुवनों की माता जयको प्राप्तहो और वाङ्मय महेश्वर मेरे हृदय में शब्दरूप का उपदेश करो ॥ १ ॥

ग्रन्थ निर्माण का हेतु ।

आब्रह्मभुवनाल्लोका गृहस्थाश्रममाश्रिताः । यतस्तस्माद्गृहारम्भप्रवेशसमयंह्यहम् ॥ २ ॥ प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठ शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ यदुक्तं शंभुना पूर्वम्वास्तुशास्त्रं पुरातनम् । ३ ।

ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोक गृहस्थाश्रम के आश्रितहैं इसलिये मैं घर बनाने के आरम्भ का समय और उसमें प्रवेश करनेके मुहूर्तोंका वर्णन करताहूं हे मुनिवर ! तुम एकाग्रचित होकर इस प्राचीन वास्तुशास्त्र को सुनो इसका उपदेश महादेवजी ने किया है ॥ २ ॥ ३ ॥

ग्रन्थपरम्परा ।

पराशरः प्राह बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे ॥ स वि

श्वकर्मा जगतां हिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तं ॥ ४ ॥

महादेवजीसे सुनकर इस शास्त्रकाउपदेश पाराशर ऋषिने वृहद्रथको, वृहद्रथने विश्वकर्मा को और विश्वकर्माने संसार के हितकी कामनासे अनेक भेदोंसे युक्त इस वास्तुशास्त्र को सब लोकों में प्रकट किया ॥ ४ ॥

विश्वकर्मोवाच –वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ पुरात्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतम्व्यवस्थितम् ॥ स्वाप्यमानं शरीरेण सकलम्भुवनन्ततः ॥ ६ ॥ तन्दृष्ट्वा विस्मयन्देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः ॥ ततस्तेभयमापन्ना ब्रह्माणं शरणंययुः ॥७॥ भूतभावन भूतेशमहद्भयमुपस्थितम् ॥ क्व यास्यामः क्व गच्छामो वयं लोकपितामह ॥ ८ ॥

विश्वकर्मा कहते हैं कि मैं जगत् की भलाईकी कामनासे वास्तुशास्त्र को कहता हूं ॥५ ॥ प्राचीन समय में त्रेतायुग में एक महाभूत प्रकट हुआ उसने अपने शरीरसे संपूर्ण भुवन को ढकलिया ॥ ६ ॥ उस को देखकर इन्द्र सहित संपूर्णदेवता आश्चर्य में आकर भयभीत हुएऔर ब्रह्माकीशरणमें पहुंचे ॥७॥और कहनेलगे कि हे भूतभावन!हे भूतेश!यहबडाभय उपस्थितहुआहै हे लोकपितामह ! इस भयसे हम सब कहां जांय और किधर छिपकर अपने प्राण बचावें ॥८॥

ब्रह्माका उपदेश ।

मा भयङ्कुरु वो देवाविगृह्येत महाबलम् ॥ पातयाधोमुखं भूमौ निर्विशङ्का भविष्यथ ॥ ९ ॥ ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तम्महाबलम् ॥ विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थिता तत्रैव ते सुराः ॥१०॥

यह सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे कि हे देवताओ! डरो मत और इसमहाबली भूतके संग विग्रह करना उचित नहीं है किन्तु-इसको पृथ्वीमें औंधामुख करके डालदो ऐसा करने से तुम निःशंकहोजावोगे ॥ ९ ॥ तदनन्तरक्रोध से संतप्तहो उन देवताओं ने उस महाबली भूतको पकड़ भूमिपर अधोमुख पटक दिया और आप उसीके ऊपर चढ बैठे ॥१०॥

वास्तुपुरुष के जन्म का समय ।

तमेववास्तुपुरुषं ब्रह्मा समसृजत्प्रभुः ॥ कृष्णपक्षे तृतीयायां

मासिभाद्रपदेतथा ॥ शनिवारेभवज्जन्मनक्षत्रे कृत्तिकासु च॥योगस्तस्यव्यतीपातः करणंविष्टिसंज्ञकं॥ १२ ॥भद्रान्तरे भवज्जन्म कुलिके तु तथैव च ॥ क्रोशमानंमहाशब्दं ब्रह्माणं समपद्यत ॥ १३ ॥चराचरमिदंसर्वंन्त्वया सृष्टं जगत्प्रभो ॥ विनापराधेनच मां पीडयन्ति सुरा भृशम् ॥ १४॥

वहीवास्तुपुरुष ब्रह्मदेवनेभाद्रपदकेकृष्णपक्षकीतृतीयाकोरचाथा ॥११॥यह शनिवारके दिन कृत्तिका नक्षत्र,व्यतीपात योग विष्टिकरण॥ १२॥भद्राओं के मध्य और कुलिक योगमें उत्पन्न हुआथा और महान् शब्दकरता हुआ वह वास्तु पुरुष ब्रह्माके निकट जाकर॥१३॥कहने लगा कि हेप्रभो ! यहचराचर जगत् तुमने रचाहै फिर बिना अपराध ये सब देवतामुझेअत्यन्त पीडा क्यों देते हैं ॥ १४ ॥

॥ ब्रह्माका वरप्रदान ॥

वरन्तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामहः । ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेपि वा ॥ १५ ॥ प्रासादे च प्रपायां च जलोद्याने तथैव च ॥ यस्त्वान्न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तुनरप्रभो ॥ १६ ॥ अश्रियम्मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ वास्तु पूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥१७॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेसद्यो देवो ब्रह्मविदाम्वरः ॥ वास्तुपूजां प्रकुर्वीत गृहारंभे प्रवेशने ॥ १८ ॥

इस पर प्रसन्न होकर लोक पितामह ब्रह्माने उसकोयह वर दिया कि हे वास्तुपुरुष ! ग्राम, नगर, दुर्ग, पत्तन (शहर) ॥१५॥ महल ,प्याऊऔरजलोद्यानमें जो मनुष्य भूलसेभी तेरा पूजननकरेगा ॥ १६ ॥ वह दरिद्रीहोगा और कालका ग्रासबनेगातथा उसको बातबात में विघ्न उपस्थितहोगाऔर वास्तु पूजाको न करनेवाला मनुष्य तेराआहार होगा ॥ १७॥ यहकहकर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मातत्काल अन्तर्धान होगये इससे घर बनाने के आरम्भ और प्रवेश में वास्तु पूजा करना उचित है ॥ १८ ॥

वास्तुपूजा कहां २करनी चाहिये ।

द्वाराभिवर्तने चैवत्रिविधेचप्रवेशने॥ प्रतिवर्षञ्चयज्ञादौ

तथा पुत्रस्य जन्मनि ॥ १९ ॥ व्रतबन्धे विवाहे च तथैव च महोत्सवे॥जीर्णोद्धारे तथा शल्यन्यासे चैव विशेषतः ॥२०॥ वज्राग्निदूषिते भग्ने सर्पचाण्डालवेष्टिते ॥ उलूकवासिते सप्त रात्रौ काकाधिवासिते ॥ २१ ॥ मृगाधिवासिते रात्रौ गोमार्जाराभिनादिते ॥ वारणाश्वादिविरुते स्त्रीणां युद्धाभिदूषिते ॥ २२ ॥ कपोतकगृहावासे मधूनां निलये तथा ॥ अन्यैश्चैव महोत्पातै र्दूषिते शांतिमाचरेत् ॥ २३ ॥

दरवाज़े के बनाने में, तीन प्रकारके प्रवेश में, प्रत्येक वर्ष यज्ञादि करने के समय,पुत्रके जन्ममें,॥१९॥यज्ञोपवीत संस्कारके समय, विवाहमें, किसी महोत्सव के समय, जीर्णोद्धारमें (पुरानी वा टूटी इमारतकी मरम्मतके समय,) विशेष कर के शल्यन्यास अर्थात् टूटे फूटे मकानों की दुरुस्तीके समय॥२०॥ विजलीसे टूटने पर, अग्नि के लगने पर, अकस्मात् टूट कर गिर पड़ने पर, सर्प और चांडालसे वेष्टित घरमें वास्तु पूजाकरना उचितहै, तथा जिस घरमें उल्लुओंका वास होगयाहो, जिस घरमें रात्रिमें हरिण रहतेहों, बिजार डकराते हों, बिल्लियां लडती और रुदन करतीहों, हाथी चिंघाडतेहों, घोडे हिनहिनातेहों, स्त्रियां आपस में कलह करतीहों॥२२॥ जिसमें कबूतरोंने घर बनालियाहो,शहतकी मक्खियों ने छत्ते जमालिये हों, तथा ऐसेही और भी अन्य बडे२ उत्पात जिस घरमें होते हों, उस में वास्तुशान्ति अवश्य करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अथ भूमिदर्शनम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि लोकनांहितकाम्यया ॥ श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णानुपूर्व्यतः ॥ २४ ॥

अब संसार की भलाई के निमित्त भूमिकी परीक्षाका वर्णन किया जाता है । यथाः—ब्राह्मण संज्ञक भूमिका रंग सफेद,क्षत्रिय जातिकी भूमि लाल,वैश्य वर्णकी पीली और शूद्र वर्णकी काली होती है ॥ १४ ॥

गंध परीक्षा ।

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमी रक्तगन्धा तु क्षात्रिणी ॥ मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिणी ॥ २५ ॥

जिस भूमिमें अच्छी सुगंध आतीहो वह ब्राह्मणी, रुधिरके समान गंधवाली

क्षत्राणी,शहदके समान गंधवाली वैश्यानी और मदिराकेतुल्य गंधवाली शूद्रणी भूमि होती है ॥ २५ ॥

रसपरीक्षा ।

मधुरा ब्राह्मणीभूमिः कषाया क्षत्रिया मता ॥ अम्ला वैश्या भवेद्भूमिस्तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥

मधुर(मिष्ट)रसवाली भूमि ब्राह्मणी, कसेले रसवाली क्षत्राणि, खट्टे रसवाली वैश्यजाति और चरपरी भूमि शूद्राणी होतीहै ॥ २६ ॥

शुभभूमि के लक्षण ।

चतुरस्रांद्विपाकारां सिंहोक्षाश्वेभरूपिणीम्॥ वृत्तञ्च भद्रपीठञ्च त्रिशूलं लिंगसन्निभं ॥२७॥ प्रासादध्वजकुम्भादि देवानामपि दुर्ल्लभाम् ॥

चतुष्कोण[चौकौन] हाथीके आकारके सदृश, सिंह, वैल, घोडाके समान रूपवाली, गोल, भद्रपीठ, त्रिशूल के आकारवाली, शिवलिंगके सदृश ॥२७॥ महलकी ध्वजा और कुंभादिसे युक्त भूमि देवताओंकोभी कठिनतासे मिलतीहै ॥

अशुभ भूमि के लक्षण ।

त्रिकोणां शकटाकारां शूर्प्पव्यजनसन्निभाम् ॥ २८ ॥ मुरजाकारसदृशां सर्पमण्डूकरूपिणीम्॥ खराजगरसङ्काशाम्बकाञ्चिपिटरूपिणीम् ॥२९॥ मुद्गराभांतथोलूककाकसर्प्पनिभान्तथा॥शूकरोष्ट्राजसदृशां धनुःपरशुरूपिणीम् ॥३०॥ कृकलासशवाकारान्दुर्गम्याञ्चविवर्जयेत् ॥ मनोरमा च या भूमिः परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ ३१ ॥

जो भूमि त्रिकोण हो, शकटाकार[गाडीके आकारके सदृश]हो, सूप और बीजनेके समानहो, मृदंगके आकारके तुल्यहो, जो सर्प और मेंडक के आकार के सदृशहो, जो गधा अजगर, बगला और चिपिटके समानहो. जो मुगदर, घुग्घू कौए और सर्पके तुल्यहो, जो सूअर, ऊंट, और बकरे के तुल्यहो, जिस भूमिका आकार धनुष और परसा अर्थात कुल्हाडीके समान हो, जिसका आकार किरकेंटे अथवा मुर्देके तुल्यहो,जो दुर्गमहो अर्थात्‌जहां पहुंचनाकठिन हो,ऐसी भूमियोंका सर्वथा परित्याग करदेना चाहिये,तथा जो मनको प्रसन्न

करनेवाली हो उसकी परीक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥२८॥२९॥३०॥३१॥

द्वितीया दृढभूमिश्च निम्नाचोत्तरपूर्वके ॥ गंभीरा ब्राह्मणी भूमिर्नृपाणां तुङ्गमाश्रिता ॥ ३२ ॥ वैश्यानांसमभूमिश्च शूद्राणांविकटास्मृता॥ सर्वेषाञ्चैव वर्णानां समभूमिःशुभावहा ॥ ३३ ॥ शुक्लवर्णा च सर्वेषां शुभा भूमिरुदाहृता । कुशकाशयुता ब्राह्मी दूर्वा नृपति वर्गगा॥ ३४॥ फलपुष्पलता वैश्या शूद्राणां तृणसंयुता ॥

दूसरी प्रकारकी भूमि दृढ होती है तथा वह उत्तर और पूर्व दिशाओं में नीची होतीहै ब्राह्मणोंके गृहकी भूमि गम्भीर अच्छी होतीहै और क्षत्रियोंका घर ऊंचे स्थान पर शुभहै ॥३२॥ वैश्योंका घर समान भूमिपर शुभहै और शूद्रोंके लिये विकट भूमि श्रेयस्करहै परन्तु समान भूमि सब वर्णोंके लिये श्रेष्ठ कहीहै सफेद वर्णकी भूमि सब वर्णों को शुभकारी है जिस भूमिमें कुशा और काश उगे हों वह ब्राह्मणोंको और जिसमें दूब हो वह क्षत्रियोंको ॥३४॥जिसमें फल पुष्प लताहों वह वैश्योंको और जिसमें तृणहों वह शूद्रोंको हितकारी होती है ॥

वर्जितभूमि ।

नदीघाताश्रितां तद्वन्महापाषाणसंयुताम् ॥३५॥ पर्वताग्रेषु संलग्नाङ्गर्त्ताविवरसंयुतां ॥ वक्रां शूर्पनिभां तद्वल्लकुटाभां कुरूपणीम् ॥ ३६ ॥ मुशलाभांमहाघोरां वायुना वाविपीडितां॥ वल्लभल्लकसंयुक्तां मध्ये विकटरूपिणीम् ॥३७॥ श्वश्रृगालनिभां रूक्षां दन्तकैः परिवारितां ॥ चैत्यश्मशानवल्मीकधूर्तकालयवर्जिताम् ॥ ३८ ॥ चतुष्पथमहावृक्षदेवमंत्रिनिवासितां॥ दूराश्रिताश्वभूगर्तयुक्ताञ्चैव विवर्जयेत३९

इतिभूमिलक्षणम् ॥

जो भूमि. नदीके कटावके पासहो,जो बडेबडे पत्थरोंसेयुक्तहो।।३५॥जोपर्वतोंके अग्रभागसे मिलीहो, जिसमें खाई और छिद्रहों,जो टेढी सूपके आकारके समानहो, लाठीके समानहो और जो कुरूपाहो ॥३६॥ जो भूमि मुसलके समान और भयंकरहो जहां दिनरात प्रचंड वायु चलताहो जहां रीछ भालू रहतेहों और जिसका बीचमें विकट रूपहो ॥३७॥ जो कुत्तों और गीदड़के समानहो, जो

रूखी और दांतोंसे युक्तहो. जो चैत्य,श्मशान,बांबी और जंबुकोंके बिलसे युक्त हो ॥३८॥ जहां चौराहों पर बडे २ ऊंचे वृक्ष और देवयोनि भूतादिक जिनमें रहतेहों जोनगरसे दूरहो औरगढोंसे युक्तहो ऐसीभूमिको सर्वथा त्यागदेवै ॥३९॥

अथफलानि ॥ स्ववर्णगन्धासुरसाधनधान्यसुखावहा ॥ व्यत्ययेव्यत्ययफला अतः कार्यम्परीक्षणम् ॥ ४० ॥ चतुरस्रा महाधान्या द्विपाभा धनदायिनी॥ सिंहाभा सगुणान्पुत्रान्वृषाभा पशुवृद्धिदा ॥ ४१ ॥ वृत्तासद्वित्तदाभूमिर्भद्रपीठनिभा तथा॥त्रिशूलरूपावीराणामुत्पत्तिर्धनसौख्यदा ।४२। लिङ्गाभालिङ्गिनांश्रेष्ठाप्रासादध्वजसन्निभा ॥ पदोन्नतिंप्रकुरुतेकुंभाभाधानवर्द्धिनी ॥ ४३ ॥ त्रिकोणशकटाकारासूर्पव्यजनसन्निभा ॥ क्रमेणसुतसौख्यार्थधर्महानिकरीस्मृता ॥ ४४ ॥

अब फलों का वर्णन करतेहैं जिस भूमिमें अपनी जातिकी गंध आतीहै और उसका सुंदर रूपहो,वह भूमि धन धान्य संयुक्त और सुख देनेवाली होतीहै और इससे विपरीतहो अर्थात् जिसमे अपनेवर्णकी गंध न आतीहोतो फलभीविपरीत होताहै, इससे भूमिकी परीक्षा करना उचितहै ॥४०॥ जोभूमिचौकोन हो उसमें अन्न बहुत होताहै जिसका हाथीकेसमान आकारहोवहधन देनेवाली होतीहै जो भूमि सिंहके तुल्यहो उसका रहनेवाला गुणवान्पुत्रोंसेयुक्त होताहैजोबैलके समान है उसमें पशुओं की वृद्धि होतीहै ॥ ४१ ॥ जो भूमि गोल वा भद्र पीठके तुल्यहै वह उत्तम धनके देनेवाली होतीहै और जिस भूमिकात्रिशूलकेसमान आकारहै उसमें शूरवीर उत्पन्न होतेहै तथा वह धन और सुख देने वालीहोतीहै । ४२ ॥ और जिसकी कांति लिंगके समान है वह संन्यासियोंके लिये उत्तम है औरजो महलकी ध्वजाकेसमानहै वह प्रतिष्ठाकोबढातीहै और जो कुंभके समानहै वह धन की वृद्धि करतीहै ॥४३ ॥ त्रिकोण आकार पृथ्वीपुत्रोंकी, शकटाकार सुख की, सूर्पाकार धनकी और पंखेकेआकार वाली पृथ्वी धर्मकीहानि करतीहै ॥ ४४ ॥

मुरजावंशहासर्पमण्डूकाभाभयावहा ॥ नैःस्वंखरानुकाराच-मृत्युदाऽजगरान्विता ॥४५॥ चिपिटापौरुषैर्हीनामुद्गराभातथैवच ॥ काकोलूकनिभातद्वद्दुःखशोकभयप्रदा ॥४६॥ सर्पाभापुत्रपौत्रघ्नीवंशाभावंशहानिदा॥शूकरोष्ट्राजसदृशी

धनुःपरशुरूपिणी ॥ ४७ ॥ कुचैलान्मलिनान्मूर्खान्ब्रह्मघ्ना ञ्जनयेत्सुतान् ॥ कृकलासशवाकारामृतपुत्राधनार्तिदा ४८ दुर्गम्यापापिनांवंशप्रजाभूमिंपरित्यजेत् ॥ मनोरमासुतप्रदा दृढाधनप्रदामता ॥ सुतार्थदातथाप्युदक्सुरेशादिक्प्लवामही ॥ ४९ ॥ गंभीरशब्दाजनयेत्पुत्रान्गंभीरनिःस्वनान् ॥ तुङ्गापदान्वितान्कुर्यात्समासौभाग्यदायिनी ॥ ५० ॥ विकटा शूद्रजातीनांतथादुर्गनिवासिनाम् ॥ शुभदानापरेषांचतस्क-राणांशुभावहा ॥ ५१ ॥

जो भूमि मृदङ्ग के सदृश होतीहै वह वंश का नाश कर देती है, सर्प और मेंडकके आकार वाली भयदायक होती है, गधे के आकार वाली धननाशक और अजगर के आकार वाली मृत्युकारक होती है, ॥ ४५ ॥ चिपिट वा मुद्गर के समान, भूमिपुरुषों से हीन रहती है, जो कौए और उल्लू के समान होती है वह दुःख, शोक, और भय देनेवाली होती है ॥ ४६ ॥ सर्प कीसी आकृति वाली भूमि बेटे नातियों का नाश करती है और वांस के सदृश पृथ्वी वंश को नष्ट कर देती है तथा जो पृथ्वी सूअर, ऊँट, बकरे, धनुष और कुल्हाडे के सदृश होती है,॥ ४७ ॥उस में मैली, मलीन, मूर्ख और ब्रह्महत्यारी संतान पैदा होती है, किरकेंटे तथा मुर्दे के आकार वाली पृथ्वीमें पुत्र हो होकर मर-जाते हैं, धन की हीनता रहतीहै क्लेशभी रहताहै ॥४८॥ दुर्गम और पापियों के कुलघरों की पृथ्वी का सर्वथा परित्याग कर देवै ॥ मनोरमा पृथ्वी पुत्रों के दैनेवाली दृढा पृथ्वी धन की दाता होती है, इसी तरह उत्तर और पूर्व दिशाओं की ओर जो पृथ्वी नीची होती है वह बेटे और धन के दैने वाली होती है ॥४९॥ गंभीर शब्दवाली भूमि में गंभीर शब्दवाली संतान होतीहै ऊँची पृथ्वी प्रतिष्ठाको बढातीहै और सामान्य पृथ्वी सौभाग्यके दैनेवाली होतीहै५०॥ विकट पृथ्वी शूद्र लोगों को, गढके रहने वालों को तथा चोरों को शुभ फल दायक होती है अन्य मनुष्यों को अशुभ फल के दैनेवाली होती है ॥ ५१ ॥

स्ववर्णवर्णास्वान्वर्णान्वर्णानामाधिपत्यदा ॥ शुक्लवर्णाचसर्वे षांपुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥ ५२ ॥ कुशकाशान्विताब्रह्मवर्चसा न्कुरुतेसुतान् ॥ दूर्वान्विताबीरजानिः फलाढ्याधनपुत्रदा

अपने अपने वर्ण की पृथ्वी सुखदायक होती है तथा अन्य वर्णों पर अधिकार जमाती है, तथा श्वेत वर्ण की भूमि सम्पूर्ण वर्णों के पुत्र पौत्रों की वृद्धि करती है ॥५१॥ कुशा और कांस वाली भूमि में ब्रह्म तेजधारी पुत्र होते हैं, दूबवाली पृथ्वी वीरप्रसवनी होती है, फल वाली पृथ्वी धन और पुत्रों से युक्त होती है ॥ ५३ ॥

नदीघाताश्रिता मूर्खान्मृतवत्सांस्तथैव च ॥ दरिद्रा नश्ममध्यस्थागर्तावस्थामृषायुतान् ॥ ५४ ॥ विवरापशुपुत्रार्त्तिदायिनीसौख्यहारिणी॥ वक्रातिवक्राजनयेत्पुत्रान्विद्याविहीनकान् ॥५५॥ शूर्पमार्जारलकुटनिभाभीतिसुतार्तिदा ॥ मुशलामुशलान्पुत्राञ्जनयेद्वंशघातकान् ॥ ५६ ॥ घोराघोरप्रदावायुपीडितावायुभीतिदा ॥ बल्लभल्लकसंयुक्तापशुहानिप्रदासदा ॥५७॥

नदी के कटाव के पास वाली पृथ्वी मूर्ख और संतानहीनों को पैदा करती है, मध्य में पाषाण वाली भूमि में दरिद्री, खाई वाली भूमिमें मिथ्यावादी मनुष्य होतेहैं ॥५४॥ छिद्रों से युक्त पृथ्वी पशु और पुत्रों को पीडाकारक और सुखनाशक होतीहै टेढी तिरछी पृथ्वीमें विद्याहीन पुत्र होते हैं ॥ ५५ ॥ सूप, बिल्ली, लाठी के सदृश भूमि भयदायक तथा पुत्रों को पीडा देने वाली होती है, मूषलाकार भूमि निर्दय कुलघाती पुत्रों को पैदा करती है ५६ ॥ घोर पृथ्वी भयदायक और वायुसे टकरानेवाली पृथ्वी वायुकृत पीडा को करने वाली होती है । भालू और रीछों से युक्त पृथ्वीमें सदा पशुओं की हानि होती है ॥ ५७ ॥

विकटाविकटान्पुत्रान् श्वशृगालनिभा तथा॥ददाति रूक्षा परूषा दुर्वचाञ्जनयेत्सुतान् ॥ ५८ ॥ गृहस्वामिभयञ्चैत्ये वल्मीके विपदः स्मृताः ॥ धूर्तालयसमीपे तु पुत्रस्य मरणन्ध्रुवम् ॥ ५९ ॥ चतुष्पथेत्वकीर्तिः स्यादुद्वेगोदेवसद्मनि ॥ अर्थहानिश्च सचिवे श्वभ्रेविपदउत्कटाः ॥ ६० ॥ गर्तायान्तु पिपासास्यात्कूर्माभे धननाशनम् ॥

विकटपृथ्वी तथा कुत्ते और शृगालकेसदृश पृथ्वीमें विकट पुत्रपैदाहोतेहैं

रूक्ष और कठोर पृथ्वी दुर्वचन कहनेवाले पुत्रोंको पैदाकरतीहै ॥५८॥ चैत्य-स्थानकी पृथ्वी घरकेमालिकको भयदेतीहै । बांवीकी पृथ्वी विपत्तिका कारण होतीहै, धूर्तोंके निवासस्थानके पासवाली पृथ्वीमें निश्चयही पुत्रकीमृत्युहोतीहै ॥ ५९ ॥ चौराहेकी पृथ्वीमें घर बनानेसे कीर्तिका नाशहोजाताहै, देवमंदिरमें घरका बनाना उद्वेगका कारणहोताहै, मंत्रीके घरमें घरबनानेसे धनकी हानि होतीहै, गढेमें घरबनानेसे उत्कट विपत्तियोंका पडना संभवहै॥६०॥ गर्त अर्थात् खाईमें घरबनानेसे जलकी तृषाकी अधिकताहोतीहै और कच्छपकेसमानपृथ्वी में घर बनानेसे धनका नाश होताहै ॥

अथ भूमि परीक्षा ।

निखनेद्धस्त मात्रेण पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ पांशुनाधिकमध्यो ना श्रेष्ठामध्याधमाक्रमात् ॥६१॥ जलेनापूरयेच्छ्वभ्रं शीघ्रं गत्वा पदैः शतं ॥ तथैवागम्य वीक्षेत न हीन सलिला शुभा॥ अरत्निमात्रश्वभ्रे वा ह्यनुलिप्ते च सर्वतः ॥ ६२ ॥ घृतमामश रावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयं ॥ ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थंसंपूर्णंसर्वदि-ङ्मुखं॥ ६३ ॥ दीप्तापूर्वादिग्गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ हलाकृष्टेतथोद्देशेसर्वबीजानिवापयेत् ॥ ६४ ॥ त्रिपञ्चस प्तरात्रेणनप्ररोहन्तितान्यपि॥उप्तबीजात्रिरात्रेणसाङ्कुराशो भनामही॥ ६५॥ मध्यमापञ्चरात्रेण सप्तरात्रेण निन्दिता ॥

एक हाथलंबी चौडी और गहरीपृथ्वी खोदकर फिर उसीमिट्टीसे उसेभरदे, यदि मिट्टी अधिकहोतो पृथ्वी उत्तम, समान होतो मध्यम और कमहोतो अधम फल होताहै ॥६१॥ अथवा उस गढेमें जलभरकर शीघ्रही सौ पेंडतक चलाजाय और फिर शीघ्रही लौटकर देखे, जो उसमें जल कमहोजाय तो पृथ्वीको शुभ न समझना चाहिये अथवा उस गढेके चारों ओर एक एक बिलस्त लीपदे ॥६२॥ फिर एक मिट्टीके कच्चे सर्वेमें घी भरकर, चारों दिशाओंमें एकएक बत्तीका मुख करदे, ॥ ६३ ॥ ऐसा करनेसे इसतरह परीक्षा होतीहै कि यदि चारों बत्तीजलती रहें तो ब्राह्मणके लिये पूर्वकी पृथ्वी, क्षत्रियकेलिये उत्तरकी पृथ्वी, वैश्यके लिये पश्चिम और शूद्रके लिये दक्षिणकी पृथ्वी ग्रहण करनीचाहिये।अथवा पृथ्वीको हलसे जोतकर उसमें सब प्रकारके बीजबोदेवै ॥६४॥ और देखे कि तीन, पांच,

वा सात दिनमें बीजोंमें अंकुर जमतेहैं वा नहीं अगर तीनदिनमें बीजोंमें अंकुर जम उठेंतो भूमि उत्तम होतीहै, ॥६५॥ पांच दिनमें उगेंतो मध्यम और सातदिन में जमेंतो निन्दित समझनी चाहिये ॥

तिलान्वा वापयेत्तत्र यवांश्चापि च सर्षपान् ॥ ६६ ॥ अथवा सर्वधान्यानिवापयेच्चसमन्ततः ॥ यत्रैनवप्ररोहंतितां प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ ६७ ॥ व्रीहयः शालयोमुद्गागोधूमाः सर्षपास्तिलाः ॥ यवाश्चौषधयः सप्तसर्वबीजानिचैवहि ॥ ६८ ॥ सुवर्णताम्रपुष्पाणिश्वभ्रमध्यगतानिच ॥ यस्यनाम्निसमायान्तिसाभूमिस्तस्यशोभना ॥ ६९ ॥ पांशवोरेणुतांनीत्वा निरीक्षेदन्तरिक्षगाः ॥ अधोमध्योर्द्ध्वगान्दृणांगतितुल्यफलप्रदा ॥ ७० ॥ कृष्टांप्ररूढबीजाङ्कांध्युषितांब्राह्मणैस्तथा ॥ गत्वामहींगृहपतिः कालेसांवत्सरोदिते ॥ ७१ ॥

अथवा तिल, जौ या सरसों उस पृथ्वीमें बोवै ॥ ६६ ॥ अथवा उस घरके चारों ओर सब प्रकारके अन्न बोदे, जहां किसी प्रकारकाभी बीज न उगे उसे यत्न पूर्वक त्यागदे ॥ ६७ ॥ ब्रीहि शाली चांवल, मूंग, गेंहूं, सरसों, तिल और जौ ये सातों सर्वौषधि और सतनजा कहलातेहैं ॥ ६८ ॥ सौने और तांबेके फूल बनवाकर गढे में रखदे, जिसकेनामसे ये फूल निकल आवें वहीपृथ्वी उसके लिये शुभ है ॥ ६९ ॥ जिस पृथ्वीमें घर बनवाना चाहै वहांकी मिट्टी को महीनकरके आकाशमेंफेंके यदिउसके रेणु नीचेकी ओर आवेंतो अधोगति, बीचमें रहजांयतो मध्यगति और ऊपरको चलेजांयतो ऊर्ध्वगति होतीहै ॥ ७० ॥ जिस पृथ्वीमें हल चल चुका हो, बीजोंके अंकुर जमगयेहों, जिसमें ब्राह्मण रहचुकेहों उस भूमिमें सांवत्सरिक मुहूर्तके समय मालिकको प्रवेश करना उचितहै ॥ ७१ ॥

॥ शुभ शकुनोंका वर्णन ॥

पुण्याहशंखाध्ययनाम्बुकुम्भाविप्राश्चवीणापटहस्वनानि । पुन्नान्विताश्चीगुरवोमृदङ्गावाद्यानिभेरीनिनदाः प्रशस्ताः ॥ ७२ ॥ कन्यासुधौताम्बरबासकारीमृदः सुरस्यासुरभी सुगन्धा ॥ पुष्पाणिचामीकररौप्य मुक्ताप्रवाल भक्ष्या

णि शुभावहानि ॥ ७३ ॥ मृगारांजनबद्धैकपशुश्चोष्णी-षचन्दनम् ॥ आदर्शव्यजनंवर्द्धमानाश्चापि शुभावहाः ॥ ७४ ॥ आमिषंदधिदुग्धंचनृयानंछत्रमेवच ॥ मीनानिमिथुनंपुंसामायुरारोग्यवृद्धिदम् ॥ ७५ ॥ कमलममलङ्गीतारावः सितोक्षमृगाद्धिजाः गमनसमयेपुंसांधन्या-गृहाद्याधिवासिते ॥ गजहयसुवासिन्यस्तथाप्रवराङ्गना-धनसुतसुखारोग्यायुः प्रदागृहकर्माणि ॥ ७६ ॥ गणिकाचाङ्कुशंदीपंमालांबालांसुभूषितां ॥ तथावृष्टिर्गृहारंभेनिवेशेसमभीष्टदा ॥ ७७ ॥

घरमें प्रवेश करनेकेसमय जो पुण्याहवाचन, शंखध्वनि, वेदाध्ययनका शब्द सुनाईदेतो उत्तमहै, जलका घडा वा ब्राह्मणोंका समूह सन्मुख आवे तो उत्तम है, वीणा और ढोलका शब्द सुनाईदे, पुत्र सहित स्त्री आवै, गुरु आवै, मृदग, भेरी, निशान आदि बाजोंका शब्दभी शुभ सूचक होताहै ॥ ७२ ॥ धुलेहुए स्वच्छ उज्जल वस्त्रोंको धारण कियेहुए कन्या आवै, रसीली, और सुन्दर गन्ध युक्त मिट्टी, सुवर्ण, चांदी, मोती, मूंगा और सुन्दर सुन्दर खानेके पदार्थ प्रवेशके समय आवें तो शुभ शकुन समझना चाहिये ॥ ७३ ॥ हरिण, अंजन, बंधाहुआ एक पशु, पगडी, चंदन, दर्पण, बीजना, और वर्द्धमान येभी प्रवेशके समय शुभ सूचक है ॥७४॥ मांस, दही, दूध, पालकी, छत्र, मछली, और दंपति ये भी प्रवेशके समय आयु और आरोग्यको बढानेवाले हैं ॥ ७५ ॥ स्वच्छ कमल, गीतोंका शब्द, सफेद बैल, मृग, ब्राह्मण ये सब प्रवेशके समय सन्मुख आवेंतो वह मनुष्य धन्य है गृहकर्म में हाथी, घोड़ा, सौभाग्यवती स्त्री, धन, पुत्र, सुख, आरोग्य और आयुको दैनेवाले होतेहैं ॥ ७६ ॥ वेश्या, अंकुश, दीपक, माला आभूषणों समेत स्त्री, और वर्षा ये घरमें प्रवेशके समय वा घर बनवानेके आरंभ के समय सन्मुख आवें तो मनबांछित फलके दैनेवाले होते हैं ॥ ७७ ॥

बुरे शकुनोंका वर्णन ।

दुर्वाणी शत्रुवाणी च मद्यञ्चर्मास्थिरेवच ॥ तृणन्तुषन्तथा सर्पं चर्मं चाङ्गारमेवच ॥ ७८ ॥ कार्पासलवणम्पङ्कक्लीबतैलौषधानिच ॥ पुरीषंकृष्णधान्यानि व्याधिताभ्यक्तमे

वच ॥ ७९ ॥ पतितो जटिलोन्मत्तौमुण्डीनग्नशिरस्तथा।
इन्धनानिबिरावञ्चाद्विपक्षि मृगमानुषम् ॥ ८० ॥ ज्व-
लिताशासुदग्धासुधूमितासुच पश्यतः ॥ मरणंनिर्दिशे
त्प्राज्ञस्तत्रशल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥ यस्यापशकुनन्त-
स्यशल्यन्तत्रभवेद्गृहे ॥ तत्रवासन्न कुर्वीतगृहञ्चैवनका
रयेत् ॥ ८२ ॥

दुर्वचन, शत्रुका शब्द, मद्य, चमडा, हड्डी, तृण, तुष, काचली, अग्नि, ॥ ७८ ॥ कपास, नमक, कीच, नपुंसक, तेल, औषध, विष्टा, काला, अन्न, रोगी, तेलकी मालिश कियेहुए कोई आदमी, ॥ ७९ ॥ पापी, जटाधारी, बावला, सिरमुंडाहुआ, नंगेसिर, ईंधन, किसीके रोनेकाशब्द, पक्षी, मृग, मनुष्य ॥ ८० ॥ जलतीहुई दिशा, दग्ध दिशा, धूंआं वाली दिशाओंमें देखता हुआ प्रवेशकरेतो उसकी मृत्यु होतीहै और वहां दुख पाताहै ॥ ८१ ॥ जिस मनुष्य को ऐसे अपशकुन होते हैं वह दुख भोगताहै, उसे उचित है कि उस जगह न रहै और न घर बनवावै ॥ ८२ ॥

खनन विधि ।

ज्योतिश्शास्त्रानुसारेण सुदिने शुभ वासरे ॥ सुलग्नेसुमुहू
र्त्तेचसुस्नातः प्राङ्मुखोगृही ॥ ८३ ॥ पूजयेद्गणनाथञ्च
ग्रहांश्चकलशेस्थितान् ॥ परीक्षितायां भूभागे गोमयेना
नुलिप्यच ॥ ८४ ॥ तत्रसंपूजयेद्विप्रान्दैवज्ञञ्चतथैवच
॥ यावत्प्रमाणाभूर्ग्राह्यागृहार्थन्तावतागृही ॥ ८५ ॥पञ्च
गव्यौषधिजलैस्तथापञ्चामृतेनच ॥ सेचयेच्छुद्धिकामेन
भूसंस्कारांश्च कारयेत् ॥ ८६ ॥ तत्रकुम्भंनिवेश्यादौहेम
गर्भफलैर्युतम् ॥ सर्वधान्ययुतं सर्वगन्धिसर्वौषधैर्युतम्
॥ ८७ ॥ पुष्पान्वितंरक्तवर्णं सवस्त्रं मंत्रमंत्रितम् ॥ तस्मि
न्नावाहयेत्खेटान्वरुणप्रमुखांस्तथा ॥ ८८ ॥

ज्योतिष शास्त्रके कहे हुए नियमोंके अनुसार शुभ दिन शुभ वार, शुभ-लग्न, शुभ महूर्तमें अच्छीतरह स्नानकरके पूर्वदिशा की ओर मुख करके गृह-

स्थीको बैठना उचित है ॥ ८३ ॥ फिर गणेशजीका पूजन करै और कलशपर स्थापित नवग्रहोंका पूजनकरै तदनन्तर ऊपर कहीहुई रीतियोंके अनुसार भूमि की परीक्षा करके किसी स्थानमें गोवरसे लीपकर ॥ ८४ ॥ ब्राह्मण और ज्योतिषी का पूजनकरै फिर घरके मालिक को उचित है कि जितनी पृथ्वीपर घर बनबानाहो उतनी पृथ्वीको ॥ ८५ ॥ पंचगव्य, सर्वौषधि के जल और पंचामृत से सेचनकरै और शुद्धिके निमित्त भूसंस्कारोंको करै ॥ ८६ ॥ प्रथमही कलश स्थापनकरै उसमें थोडासा सुवर्ण डालै, ऊपर फूल रक्खे, नीचे सतनजा, सर्व गंध सर्वौषधि रक्खै ॥ ८७ ॥ फूलमाला चढावै और लालकपडा लपेटकर मंत्रों से अभिमंत्रित करै फिर उसमें वरुणादिक देवताओं का आवाहनकरै ॥ ८८ ॥

तस्मिन्नावाहयेद्भूमिंसशैल वनकाननां । नदीनदसमायुक्ताङ्कर्णिकाभिश्च भूषितां ॥ ८९ ॥ सागरैर्वेष्टितान्तत्रपूजयेत्प्रार्थयेत्ततः ॥ दिक्पालान्कुलदेवींश्चदेवान्यक्षांस्तथोरगान् ॥ ९० ॥ बलिञ्चदत्वाविधिवज्जलायेतिजपेत्ततः ॥ षट्रृचं रुद्रजापञ्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ तस्मिन्संपूजयेद्वास्तुंप्रार्थयेपूजयेत्ततः ॥ ॐ नमोभगवते वास्तुपुरुषायकपिलायच ॥ ९२ ॥ पृथ्वीधरायदेवायप्रधानपुरुषायच ॥ सकलगृह प्रासादपुष्करोद्यान कर्माणि ॥ ९३ ॥ गृहारंभ प्रथम कालेसर्वसिद्धिप्रदायक ॥ सिद्धदेवमनुष्यैश्च पूज्यमानो दिवानिशं ९४

फिर उसमें शैल, वन, कानन, नदी, नद, और कर्णिकासे भूषित ससागरा पृथ्वीका आवाहन करै, और प्रार्थनाकरै फिर दिक्पाल कुलदेवी, कुलदेवता, यक्ष, उरग ॥ ८९ ॥ ९० ॥ इनको बलिप्रदान करके 'जलाय' इस मंत्रका जपकरै और विधिपूर्वक रुद्री तथा षड् ऋचाओंका जपकरावै ॥ ९१ ॥ फिर उसी कलश में वास्तुदेवता की पूजा करके इस तरह प्रार्थना करै 'ओ३म् नमो भगवते वास्तुपुरुषाय कपिलायच । पृथ्वी धराय देवाय प्रधान पुरुषायच इस तरह नमस्कार करके कहना चाहिये कि संपूर्ण घर महल, पुष्कर, उद्यान आदि कर्मों मे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ तथा घर बनबानेके प्रथम कालमें हे संपूर्ण सिद्धियोंके देनेवाले और सिद्ध,देव, मनुष्यआदिसे अहर्निश पूजा कियेहुए ॥ ९४ ॥

गृहस्थानप्रजापतिक्षेत्रेस्मिंस्मिन्निष्ठसाम्प्रतम् ॥ इहागच्छइमांपू

जांगृहाणवरदोभव ॥९५॥ वास्तुपुरुषनमस्तेऽस्तुभूमिशय्या रतप्रभो ॥ मद्गृहन्धनधान्यादिसमृद्धंकुरुसर्वदा ॥ ९६ ॥ इतिप्रार्थ्यततोभूमौसंलिखेद्वास्तुपूरुषम् ॥ पिष्टातकैस्तंडुलैर्वानागरूपधरंविभुम् ॥ ९७ ॥ आवाहयेद्वेदमन्त्रैःपूजयेच्च स्वशक्तितः ॥ आवाहयाम्यहंदेवंभूमस्थंचअधोमुखम् ॥९८॥ वास्तुनाथंजगत्प्राणंपूर्वस्यांप्रथमाश्रितम् ॥ विष्णोरराटेतिमंत्रेणपूजयेत्सर्पनायकम् ॥९९॥ नमोऽस्तुसर्पेभ्यइतिवापूजयच्च स्वशक्तितः॥कुक्षिप्रदेशेनिखनेद्वास्तुनागस्यमन्त्रतः ।१००। त्रिषुत्रिषुचमासेषुनभस्यादिषुचक्रमात् ॥ यद्दिङ्मुखोवास्तुनरस्तन्मुखंसदनंशुभम् ॥ १०१ ॥

हे वास्तुपुरुष ! आप इस घरके स्थानमें प्रजापति क्षेत्रमें आकर स्थित हूजिये और मेरी दीहुई पूजाको ग्रहण कीजिये और बर दीजिये ॥ ९५ ॥ हे वास्तुपुरुष ! हे भूमिरूपी शय्या पर शयन करनेवाले प्रभो ! मेरे इस घरको सदा धनधान्यादिसे भरपूर रखिये ॥ ९६ ॥ इसतरह प्रार्थना करके भूमि पर वास्तुपुरुषकी प्रतिकृति बनावें, यह मूरत पिट्ठी वा चांवलों की बनाई जातीहै और सर्पकासा रूप धारण कराया जाताहै ॥ ९७ ॥ उसका वेद मंत्रोंसे आवाहन करके अपनी शक्तिके अनुसार पूजन करै और कहै कि मैं भूमिमें स्थित अधोमुख वास्तुदेवका आवाहन करताहूं ॥ ९८ ॥ वास्तुनाथ, जगत के प्राणाधार, प्रथमही पूर्वदिशामें आश्रित, सर्पोंके नायक वास्तुदेवका 'विष्णोरराट' इस मंत्रसे पूजन करैं ॥ ९९ ॥ अथवा अपनी शक्तिके अनुसार " नमोस्तुसर्पेभ्यः,, इस मंत्रसे पूजन करै और पूर्वोक्त मंत्र द्वारा वास्तुनाग की कूखपर खोदना प्रारंभ करै ॥ १०० ॥ और भाद्रपदसे आदि लेकर तीन तीन महिने में पूर्वादि दिशाओंमें वास्तुपुरुष का मुख होताहै तो जिस दिशामें मुखहो उसी दिशामें घरका मुख शुभ फलदायक होताहै ॥ १०१ ॥

अन्यदिङ्मुखगेहन्तुदुःखशोकभयप्रदम् ॥ वृषार्कादित्रिकं वेदांसिंहादिगणयेद्गृहे ॥ १०२ ॥ देवालयेचमीनादितडागेमकरादिकम् ॥ पूर्वादिक्षुशिरः कृत्वानागःशेतेत्रिभिस्त्रिभिः ॥ १०३ ॥ भाद्राद्यैर्वामपार्श्वेचतस्यक्रोडेगृहंशुभम् ॥ ईशान

तः कालसर्पसंहारेणप्रसर्पति ॥ १०४ ॥ विदिक्षुशेषवास्तो श्चमुखन्त्याज्यञ्चतुर्थकम् ॥ खनेच्चसौरमानेन व्यत्ययञ्चाशुभंभवेत् ॥ १०५ ॥ चतुस्त्रिका दिशालानामेषदोषोनविद्यते ॥ एकंनागोडुसं शुद्धयामंदिरारंभणंशुभम् ॥ १०६ ॥ अधोमुखेचनक्षत्रेशुभे ह्निशुभवासरे॥चंद्रतारानुकूल्येचखननारंभणंशुभम् ॥१०७॥ त्रिषुत्रिषुचमासेषुमार्गशीर्षादिषुक्रमात् ॥पूर्वदक्षिणतोयेशपौ-लस्त्याशांक्रमाद्गुः ॥ १०८ ॥

ई	वायु	नै०	ऽग्नि
मा	मा	फा	ज्ये
कु	पौ	चै	आ
का	मा	बै	श्रा

जिस घर का मुख अन्य दिशामें होता है वह दुख शोक और भय के देनेवाला होता है और वृषकी संक्रान्ति से तीन तीन संक्रान्तियों में वेदी में, सिंह की संक्रान्ति से तीन तीन संक्रान्तियों में घर के वीच, ॥ १०२ ॥ मीनादि तीन संक्रान्तियों में देवालय में, और मकरादि तीन संक्रान्तियों में तालाव में गिने तो वास्तुनाग पूर्वादि दिशाओं में सिर करके तीन तीन संक्रान्ति में सोता है ॥ १०३ ॥ भाद्रपद आश्विन और कार्तिक इन तीन महिनों में वास्तुपुरुष के वांए पसवाडे के वीच में घर बनवाना अशुभ है, इसी कही हुई रीति के अनुसार ईशान दिशा से काल सर्प क्रम पूर्वक चलता है ॥ १०४ ॥ ईशान आदि विदिशाओं में वास्तुपुरुष का मुख जो चतुर्थ विदिशा में है वह सर्वथा त्याज्य है और सौरमान से खोदना शुभ है, इस से विपरीत करने पर फल अशुभ होता है ॥ १०५ ॥ जो चौथे वा तीसरे बनाये जाते हैं उन में यह दोष नहीं होता है वास्तुनाग और नक्षत्र की शुद्धि पूर्वक घर का आरंभ करना अच्छा है ॥ १०६ ॥ अधोमुख नक्षत्र, शुभदिन और शुभ वासर में चन्द्रमा और तारा इन की अनुकूलताके समय खोदने का आरंभ करना शुभ है ॥ १०७ ॥ मार्गशिर से आदि लेकर क्रमसे तीन तीन महिनों में पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओं में राहु रहता है अर्थात् मार्गशिर, पौष, माघ में पूर्व में, फाल्गुन चैत्र, वैशाख में दक्षिण में इसी तरह और भी जानो ॥ १०८ ॥

स्तंभेवंशविनाशःस्याद्द्वारे वन्हिभयंभवेत ॥ गमनेकार्यहानिः स्याद्गृहारम्भेकुलक्षयः ॥ १०९ ॥ रक्षःकुबेराग्निजलेशयास्य

वायव्यकाष्ठासुचसूर्यवारात ॥ वसेदगुश्चाष्टसुदिग्भचक्रेमुखे विवर्ज्यौगमनंगृहंच ॥ ११० ॥ शिरःखनेविनाशः स्यान्मातापित्रोश्चपृष्ठके ॥ स्त्रीपुत्रनाशः पुच्छेतुगात्रेपुत्रविनाशनम् ॥ १११ ॥ कुक्षौसर्वसमृद्धिः स्याद्धनधान्यसुतागमः ॥ सिंहादिषुचमासेषुआग्नेय्यांकुक्षिमाश्रितः ॥११२ ॥ वृश्चिकादिषुईशान्यांकुम्भादिषुचवायुदिक् ॥ वृषादिषुचनैर्ऋत्यमुखं पुच्छंनशोभनम् ॥ ११३ ॥ कृत्तिकाद्यंसप्तपूर्वेमघाद्यंसप्तदक्षिणे ॥ मैत्राद्यंपश्चिमेसप्तधनिष्ठाद्यन्तथोत्तरे ॥ ११४ ॥

राहुकी दिशामें स्तंभके रखनेसे बंशनाश, द्वार चढानेसे अग्निभय, गमन करनेसे कार्यकी हानि और घर बनानेके आरभमें कुलका नाश होताहै ॥१०९॥ रविबार को नैर्ऋतिमें, सोमवार को उत्तर में, मंगलको अग्निकोणमें, बुधको पश्चिममें बृहस्पतिको ईशानमें, शुक्रको दक्षिणमें, शनिश्चरको वायव्यकोणमें राहु वसताहै इन दिशाओंके चक्र में मुखके विषे गमन करना और घरका बनाना उत्तम है ॥ ११० ॥ राहुके शिरके स्थानमें खनन करै तौ नाशहोता है और पृष्ठ भाग में खनन करनेसे माता पिताका नाश और पुच्छमें खनन करनेसे स्त्री पुत्र का नाश, और गात्रमें खनन करनेसे पुत्रका नाश होताहै ॥ १११ ॥ कुक्षि में खनन करनेसे संपूर्ण ऋद्धि धन और पुत्रोंकी वृद्धि होतीहै। सिंह आदि महिनोंमें अग्निकोणमें रहताहै ॥ ११२ ॥ और वृश्चिक आदि महिनों में ईशान में और कुंभ आदि में वायुकोण में और वृषआदि में नैर्ऋति कोणमें राहुका मुख होताहै इन्हीं मासोंमें राहुकी पुच्छ शुभ नहीं होती ॥ ११३ ॥ कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्वमें, मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिणमें, अनुराधा से लेकर सात नक्षत्र पश्चिममें और धनिष्ठा से आदि लेकर सात नक्षत्र उत्तर दिशा में रहते हैं ॥ ११४ ॥

अग्रेचन्द्रेस्वामिभयङ्कर्मकर्ताचपृष्ठके ॥ दक्षिणेचधनन्दद्युर्वामेस्त्रीसुखसंपदः ॥ ११५ ॥ गृहोपलब्धऋक्षेषुयन्नक्षेषुचन्द्रमाः॥शलाकासप्तकेदेयंकृत्तिकादिक्रमेणच॥ ११६ ॥ ऋक्षञ्चन्द्रस्यवास्तोश्चअग्रेपृष्ठेनशस्यते ॥ लग्नादृक्षाद्विचार्योसौचन्द्रःसद्यःफलप्रदः॥११७॥ गृहचन्द्रेसम्मुखस्थेपृष्ठस्थे

नशुभंगृहम् ॥ वामदक्षिणगश्चन्द्रःप्रशस्तोवास्तुकर्मणि११८
लोहदण्डंचसम्पूज्यभैरवञ्चतथैवच ॥ तद्दिक्पालन्नमस्कृ-
त्यपृथिवीञ्चतथैवच ॥ ११९ ॥ शिवोनामेतिमन्त्रेणलोहद-
ण्डंप्रपूजयेत् ॥ निवर्तयामीत्यृचाविध्यायेदीशमुमापतिम्१२०
बलेनलोहदण्डेननिखनेद्वास्तुपूरुषम् ॥ यावत्प्रमाणांभुवमे-
तितावत्तस्यथितिर्भवेत ॥ १२१ ॥ तंलोहदण्डंवस्त्राक्तंब्रा-
ह्मणायनिवेदयेत् ॥ पुत्राप्त्यंविषमेङ्गुल्येसमेङ्गुल्ये तुकन्य
काम् ॥ १२२ ॥

जो चंद्रमा अग्रभाग में होतो घर के मालिक को भय होताहै और पीठपर होतो काम करने वाला नष्ट होताहै दक्षिणमें होतो धन देता है वाम भाग में होतो स्त्री और सुख संपदाओंको देताहै ॥ ११५ ॥ गृह में मिले हुए नक्षत्रों में जिन नक्षत्रों में चंद्रमा होय उन सातों नक्षत्रों शलाका कृत्तिका आदि नक्षत्रोंके क्रमसे रक्खै ॥११६॥ चंद्रमा और वास्तुका नक्षत्र अग्र और पृष्ठभाग में उत्तम नहीं होता लग्न और नक्षत्रसे विचारा हुआ यह चंद्रमा शीघ्र फलदायक है ॥ ११७ ॥ घरका चंद्रमा पीठपर वा सन्मुख होतो शुभ नहीं होता वाम और दक्षिण भागका चंद्रमा वास्तुकर्ममें श्रेष्ठ होता है ॥ ११८ ॥ लोहदण्ड (पृथ्वी खोदनेका अस्त्र फावड़ा) और भैरव इनकी पूजाकरके और उस दिशाके दिग्पाल और भूमिको नमस्कार करके ॥ ११९ ॥ "शिवोनाम्" इस मंत्रसे लोहदण्डका जप करै और "निर्वर्तयामि०" इसमंत्रसे उमापति महादेवका ध्यानकरै ॥१२०॥ और लोहके दण्डको लेकर जोरसे वास्तुपुरुषका खनन करै वह लोहका दण्ड जितना अधिक भूमिमें घुसजाताहै उतनेही समयतक वह घर स्थित रहता है ॥ १२१ ॥ वस्त्रसे ढकेहुए उस लोहदण्डको ब्राह्मणके अर्थ निवेदन करै यदि लोहदण्डकी विषम अंगुलिहों तो पुत्रोंको देताहै और सम अंगुलिहों तो कन्याओं को देताहै ॥ १२२ ॥

निर्दिशेत्तुतयोर्मध्येलोहखण्डार्त्तिदन्तथा॥ तस्मिन्कालेशुभां-
बाणांमङ्गल्यंचारुदर्शनम् ।१२३।वेदगीतिध्वनिंपुष्पफललाभ
न्तथैवच ॥ वेणुवीणामृदङ्गानांश्रवणंदर्शनंशुभम् ॥१२४॥
दधिदूर्वाङ्कुशाश्चैवकल्याणंद्रव्यदर्शनम् ॥सुवर्णरजतन्ताम्रंशं

खमौक्तिकविद्रुमान् ॥ १२५ ॥ मणयोरत्नवैडूर्य्यस्फाटिकंसुखदामृदः॥गारुडश्चफलंपुष्पमृन्मयंगुल्ममेवच॥१२६॥खाद्यानिकन्दमूलानिसाभूमिः सुखदायिनी ॥ कण्टकञ्चतथासर्पं खर्जूरंदर्द्दुमेवच ॥ १२७ ॥ वृश्चिकाश्मकवज्रञ्चाविवरंलोहमुद्गरम् ॥ केशांगारकभस्मञ्चचर्मास्थिलवणन्तथा ॥ १२८ ॥ रुधिरञ्चतथामज्जारसाक्तातानशोभनाः ॥ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेभूम्यादिपरीक्षालक्षणवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

और जिस लोह दण्ड की न सम अंगुलिहों न विषम हों वह दुःखदायी होता है उस वास्तुपुरुष के खोदने के समय शुभ वाणी, मंगलीक और सुन्दर पदार्थोंका दर्शन, ॥ १२३ ॥ वेदध्वनि, गीत, पुष्पफलका लाभ, वेणु, वीणा, मृदंग, इनका शब्द सुनना और देखना शुभ होताहै ॥ १२४ ॥ दही, दूध, कुशा इन द्रव्योंका देखना शुभसूचक, है, सुवर्ण, चांदी, तांवा, शंख, मोती, मूंगा ॥ १२५ ॥ मणि, रत्न, वैडूर्य, स्फटिक, सुखदायक मृत्तिका और गरुड का फल पुष्प और मिट्टी का गुल्म ॥ १२६ ॥ खाने योग्य कंदमूल इनको देखे वह भूमि सुखदायक होती है और कंटक, सांप, खजूर, दर्द्दु ॥ १२७ ॥ विच्छू, पत्थर, वज्र, छिद्र, लोहका मुद्गर, केश, अंगार, भस्म, चर्म, नमक, ॥ १२८ ॥ रुधिर, मज्जा, इनका देखना अच्छा नहीं होता और जो भूमि रससे युक्त होती है वह भी श्रेष्ठ नहीं होती ॥ इतिवास्तुशास्त्रे भूम्यादिपरीक्षालक्षण प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथस्वप्नविधि ।

गणेशंलोकपालांश्चपृथिवींचविशेषतः ॥ ग्रहांश्चकलशेपूज्य यथामन्त्रंयथोदितम् ॥ १२९ ॥ यथाकल्पमुपस्कृत्यशुचौ देशेकुशासनः ॥ भूमौशुद्धेनवस्त्रेणशीर्षंसंपूजयेच्छ्रियम् ॥ १३० ॥ पद्माञ्चभद्रकालीञ्चपलिन्दस्त्वातथैवच ॥ सर्वबीजान्वितान्कुंभान्सर्वरत्नौषधैर्युतान् ॥ १३१ ॥ कृत्वोभय तटेरम्यान्नवाञ्छुद्धोदकान्वितान् ॥ कल्पयित्वासुमनसः कृत्वास्वस्त्ययनादिकम् ॥ १३२ ॥ सावधानः शुचिः सूक्ष्म

क्षौमवासाजितेन्द्रियः ॥ प्राङ्मुखोरुद्ररुद्रेतिहृदिरुद्रविधिंजपेत् ॥१३३॥ षड्चंरुद्रजापञ्चकारयेत्प्रयतः शुचिः ।१३४।

गणेश, लोकपाल, विशेष कर पृथ्वी औरगृह इनका कलशके ऊपरमंत्र शास्त्रके अनुसार पूजन करके ॥ १२९ ॥ यथोपलब्ध सामग्रियोंको इकट्ठा करके स्वच्छ जगहमें कुशासनपर बैठे और भूमिमें शुद्ध वस्त्रके ऊपर शिरकेस्थान में लक्ष्मीका पजन करै ॥१३०॥ तथा पद्मा और भद्रकालीकोबालि देकर और सतनजा सर्व रत्न और सर्वौषधियोंसे युक्त ऐसे घटोंको ॥ १३१ ॥ अपने दोनों ओर रक्खे ये कलश सुन्दर, नये और पवित्र जल से भरे हुए हों इन पर फल चढावे और स्वस्तिवाचन करकै ॥ १३२ ॥ सावधान और शुद्ध और सूक्ष्म रेशमके वस्त्रोंको धारण कर जितेन्द्रिय होकर पूर्वकी ओर मुखकरके रुद्र रुद्र इस प्रकार कहकर हृदय में रुद्रविधिको जपै ॥ १३३ ॥ और छः ऋचाहैं जिस में ऐसे रुद्रजपको सावधान होकर किसी ब्राह्मण द्वारा करावे ॥ १३४ ॥

प्रकारांतरम् ।

दुकूलमुक्तामणिभृन्नरेन्द्रः समंत्रिदैवज्ञपुरोहितोतः ॥ स्वदेवतागारमनुप्रविश्यनिवेशयेत्तत्रादिगीश्वरार्चाम् ॥ १३५ ॥ अभ्यर्च्यमन्त्रैस्तुपुरोहितस्तामतश्च तस्यांभुविसंस्कृतायाम् ॥ दर्भैश्चकृत्वान्तरमक्षतैस्तान्किरेत्समन्तात्सितसर्षपांश्च॥१३६

दूसरी रीति यह है कि वस्त्र और मुक्तामणियों को धारण करके मंत्री ज्योतिषी पुरोहित सहित राजा अपने देवताके मन्दिरमें प्रवेश करके वहां दिशाओंके ईश्वरोंकी पूजाको स्थापन करे ॥ १३५ ॥ और पुरोहित मंत्रोंसे उस पूजा को करके उस संस्कृत भूमिमें कुशाओं को बिछाकर अक्षत और सफेद सरसों बखेरैं ॥ १३६ ॥

ब्राह्मींसदूर्वामथनागयूथिङ्कृत्वोपधानंशिरसिक्षितीशः ॥ पूर्णान्घटान्पुष्पफलान्वितांस्तानाशासुकुर्य्याच्चतुरः क्रमेण ॥ १३७ ॥ यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवमावर्त्यमन्त्रान्प्रयतस्तथैतान् ॥ लध्वेकभुक्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नंपरीक्षेतयथोपदेशम् ॥ १३८ ॥ नमः शम्भोत्रिनेत्राय रुद्रायवरदायच ॥ वामनायविरूपायस्वप्नाधिपतयेनमः ॥ १३९ ॥

ब्राह्मी दूब नागयूथी इनको भी बखेरै फिर राजा तकिया लगाकर पुष्प फलोंसहित पूर्ण घंटोंको क्रमसे चारों दिशाओं में रखकर शयन करै॥ १३७॥ "यज्जाग्रतो दैवमुदैतिदूरम्" इत्यादि मंत्रोंको सावधानीसे पढता हुआ और एकवार हलका भोजन करै और दाहिनी करवट सोवे और गुरुकी आज्ञाके अनुसार स्वप्नकी परीक्षाकरै॥१३८॥ हे शंभो, हे त्रिनेत्रहे, रुद्र, वर केदाताहे, वामन, विरूप, स्वप्नके अधिपति जो आपहै उनको नमस्कारहै॥१३९॥

भगवन्देवदेवेशशूलभृद्वृषवाहन॥ इष्टानिमेममाचक्ष्वस्वप्नेसुप्तस्यशाश्वतं॥ १४०॥ एकवस्त्रः कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः॥ निशान्तेपश्यतिस्वप्नंशुभम्वायदिवाशुभम्॥१४१॥ चतुरस्रांसमांशुद्धांभूमिङ्कृत्वाप्रयत्नतः।तस्मिन्दिक्साधनङ्कार्यम्वृत्तमध्यगतेदिशि॥ १४२॥ पूर्वप्लवेभवेल्लक्ष्मीआग्नेयां शोकमादिशेत॥याम्यांयातियमद्वारन्नैर्ऋतेचमहाभयं।१४३

हे भगवन्, हेदेवदेवेश, हे वृषवाहन, सोतेहुए मुझ को स्वप्नमें सदैव वांछित फलको दो॥ १४०॥ एक वस्त्र धारण किये हुए कुशाके आसनपर सावधान मनसे सोता हुआ राजा रात्रिके अन्तमें शुभ वा अशुभ स्वप्नको देखता है॥ १४१॥ चौकोन भूमिको यत्नसे इकसार करके उसमें वृत्तके मध्यकी दिशा में दिशाका साधन करै॥ १४२॥ जो पूर्वकी ओर भूमिका निचान हो तो लक्ष्मी, अग्निकोण में हो तो शोक दक्षिण में हो तो मृत्यु नैर्ऋत कोण में हो तो महाभय॥ १४३॥

पश्चिमेकलहङ्कुर्याद्वायव्याम्मृत्युमादिशेत्॥ उत्तरेवंशवृद्धिः स्यादीशानेरत्नसञ्चयः॥ १४४॥ दिङ्मूढे कुलनाशः स्याद्वक्रेदारिद्र्यमादिशेत्॥

पश्चिममें होतो कलह, वायव्य कोण में होतो मृत्यु, उत्तरमें होतो वंशकी वृद्धि, ईशानमें होतो रत्नोंके संचयकी सूचना देता है॥१४४॥ और जिस भूमिकी निचाई दिङ्मूढ हो अर्थात् किसी दिशाको नहोतो कुलका नाश और जो टेढी होतो दरिद्रताकी सूचकहै॥

अथसमयशुद्धि।

चैत्रेव्याधिमवाप्नोतियोनवङ्कारयेद्गृहम्॥ वैशाखेधनरत्नानि ज्येष्ठेमृत्युस्तथैवच॥ १४५॥ आषाढेभृत्यरत्नानिपशुवर्ज

मवाप्नुयात् ॥ श्रावणे मित्रलाभन्तुहानिं भाद्रपदे तथा ॥ १४६ ॥ युद्धंचैवाश्विनेमासिकार्तिकेधनधान्यकं ॥ धन वृद्धिर्मार्गशीर्षेपौषेतस्करतोभयम् ॥ १४७ ॥ माघेत्वाग्निभय म्विन्द्यात्लक्ष्मीर्वृद्धिश्चफाल्गुने ॥

अब समयकी शुद्धिको वर्णन करतेहैं जो मनुष्य चैत्रमें नया घर बनवाताहै वह रोगी होताहै वैशाखमें धन और रत्नोंको पाताहै और ज्येष्ठमें मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १४५ ॥ आषाढमें भृत्य, रत्न और पशुओंके नाश को प्राप्त होताहै, श्रावणमें मित्रके लाभको और भाद्रपदमें हानिको प्राप्त होताहै ॥ १४६ ॥ आश्विन मास में युद्धको, कार्तिक में धनधान्यको, मार्गशिर में धनकी वृद्धिको पौषमास में चोर से भयको प्राप्त होताहै ॥ १४७ ॥ माघ मास में अग्निभय, फाल्गुन में लक्ष्मी और वंशकी वृद्धिको प्राप्त होता है

ग्रहसंस्थापनंसूर्येमेषस्थेशुभदंभवेत् ॥ १४८ ॥ वृषस्थेधन वृद्धिः स्यान्मिथुनेमरणंभवेत् ॥ कर्कटेशुभदंप्रोक्तंसिंहेभृत्यावि वर्द्धनम् ॥ १४९ ॥ कन्यारोगन्तुलासौख्यंवृश्चिकेधन धान्यकं ॥ कार्मुकेच महाहानिं मकरेस्याद्धनागमः ।१५०॥ कुंभेतु रत्नलाभःस्यात् मीनेस्वप्नभयावहम् ॥ चाप मीननृ युक्कन्या मासा दोषावहाः स्मृताः ॥ १५१ ॥

मेषके सूर्यमें घरबनाना शुभदायी होताहै ॥ १४८ ॥ वृषके सूर्यमें धनकी वृद्धि, मिथुनके सूर्यमें मृत्यु,कर्कके सूर्यमें सुख, सिंहके सूर्यमें सेवकोंकी वृद्धिकरता है ॥ १४९ ॥ कन्याके सूर्यमें रोग, तुलके सूर्यमें सुख, वृश्चिकके सूर्यमें धनधान्य धनके सूर्यमें महाहानि मकरके सूर्यमें धनकी प्राप्ति होतीहै ॥ १५० ॥ कुंभमें रत्नों का लाभ और मीनमें गृह बनाना आरंभ करे तौ भयंकर स्वप्न दिखाई देते हैं और धन, मीन, मिथुन और कन्याके सूर्य ये मास दोषके दैनेवालेहैं ॥ १५१ ॥

ज्येष्ठोर्जेमाघसिंहाख्याः सौरमाने तु शोभनाः ॥ मासेतपस्ये तपसिमाघेनेनभासित्विषे ॥ १५२ ॥ ऊर्ज्जेचगृहनिर्माणं पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ निषिद्धेष्वपिकालेषु स्वानुकूलेशुभेदि ने ॥ १५३ ॥ तृणदारुगृहारंभे मासदोषोनविद्यते ॥ पा

षाणे ष्टयादिगेहानि निन्द्यमासेनकारयेत् ॥ १५४ ॥ निन्द्यमासेपिचंद्रस्य मासेनशुभदंगृहम् ॥ गोचराष्टकबर्गाभ्यां वामवेधान्विचिन्तयेत् ॥ १५५ ॥ दशान्तरदशादीनां विचारश्चात्रकर्मणि ॥

ज्येष्ठ कार्तिक माघ और सिंह ये संक्रांतिके मानसे शुभ फलदायक हैं और फाल्गुन, माघ, वैशाख श्रावण, आश्विन, ॥ १५२ ॥ और कार्तिकमें घर का बनाना पुत्र पौत्र और धनको देताहै और निषिद्धकालमें भी अपने अनुकूल शुभ दिनमें ॥ १५३ ॥ तृण काष्ठ के संग्रह और घर बनानेके आरंभमें मासका दोष नहीं होताहै और निन्दित महिनोंमें पत्थर ईट आदिके घर बनवाना उचित नहीं है ॥ १५४ ॥ और निंदित मासमें भी चंद्रमाके माससे गृह शुभफल दायक होते हैं तथा गृहगोचर और अष्टकवर्गोंसे वामवेधकी विशेषकर चिन्ता करे ॥ १५५ ॥ और इस गृहारम्भकर्ममें भी दशा और अन्तर्दशा का विशेष रूपसे विचार करना चाहिये ॥

गुरुशुक्रबले विप्रान्सूर्य भूमिजयोस्तथा ॥ १५६ ॥ शशिसौम्यबले सौरेवर्णानुक्रमपूर्वशः ॥ गृहारंभं प्रकुर्वीत वर्णनाथबलेसति ॥ १५७ ॥ सर्वेषामपि वर्णानां सूर्यचंद्रबलं स्मृतं ॥ विषमस्थे रवौस्वामी पीड्यतेगृहिणीविधौ ॥१५८॥ शुक्रेण पीड्यतेलक्ष्मी जीवेनसुखसंपदः ॥ बुधेन पुत्रपौत्राश्च भौमेन भ्रातृबान्धवाः ॥ १५९ ॥ सौरेणदासवर्गाश्च पीड्यंते नात्रसंशयः ॥ विशेषेणतुसूर्यस्य बलेप्रोक्तंगृहम्बुधैः॥ १६० ॥

गुरु और शुक्र के बल में ब्राह्मण, सूर्य मंगल के बल में क्षत्रिय ॥ १५६ ॥ सोम और बुधके बल में वैश्य और शनैश्चरके बल में शूद्रवर्णोंके क्रम से वर्ण के नाथका बलहीनेपर घरबनाना आरंभकरनाचाहिये ॥१५७॥ सूर्य चंद्रमा का बल सब वर्णोंके लिये उत्तम कहा है यदि सूर्य विषम राशि का हो तौ स्वामीको और चंद्रमाका बल होतौ स्त्रीको पीडा होतीहै ॥ १५८ ॥ विषमराशि के शुक्रसे धनका नाश और बृहस्पतिसे सुखसंपत्तिओं नाश,बुध से पुत्रपौत्रों का नाश, मंगलसे भाई बधुओंको कष्ट होताहै ॥ १५९ ॥ और शनैश्चर से निस्संदेह सेवक लोगोंको पीड़ा होती है और विशेषकर सूर्य के

बलमें बुद्धिमानोंने घरका बनानाशुभ कहाहै ॥ १६० ॥

सर्वेषामपिवर्णानां रविशुद्धि र्विधीयते ॥ दशापतौहीनबले वर्णनाथे तथैवच ॥ पीडितर्क्षगते सूर्य्ये नविदध्यात्कदाच न ॥ प्रथमे कोष्ठरोगंच द्वितीये चार्थनाशनम् ॥ १६२ ॥ तृतीये धनलाभंच चतुर्थे भयदोरविः ॥ पंचमे पुत्रनाशाय शत्रुनाशाय शत्रुगे ॥ १६३ ॥ स्त्रीकष्टं सप्तमे सूर्ये मृत्यु श्चाष्टमगेहगे ॥ नवमे धर्मनाशाय दशमे कर्मसंयुतिः ॥१६४ ॥ एकादशे भवेल्लक्ष्मी र्द्वादशेच धनक्षयः ॥

सब वर्णों के लिये सूर्य की शुद्धि का विधान कहा है जो दशा का और वर्ण का स्वामी बलहीन हो ॥ १६१ ॥ और पीडित नक्षत्रपर सूर्य होतौ कदापि घरबनाना आरम्भ न करै जन्म के सूर्यमें उदर रोग, दूसरेमें अर्थनाश, ॥ १६२ ॥ तीसरेमें धनलाभ, चौथेमें भय, पांचवेंमें पुत्रनाश, छटेमें शत्रु नाश ॥१६३ ॥ सातवेंमें स्त्रीकष्ट. आठवेंमें मृत्यु, नवेंमें धर्मनाश, दसवेंमें कर्मयोग ॥१६४ ॥ ग्यारहवेंमें लक्ष्मीकी प्राप्ति और बारहवेंमें धनका नाश होता है ॥

पुत्रेद्वितीये द्यूनेच धर्मे मध्यबलोरविः ॥ १६५ ॥ द्वितीय पुत्राङ्कगतो विश्वाहात्परतः शुभः ॥ अस्तगानीच राशि स्थाः परराशौ पराजिताः ॥ १६६ ॥ वृद्धस्था बालभाव स्थाः वक्रगाश्चातिचारगाः ॥ रिपुदृष्टिवशंयाता उल्कापा तेन दूषिताः ॥ १६७॥ नफलन्ति ग्रहागेह प्रारंभे तान्प्रपूजयेत् ॥

पांचवां दूसरा सातवां और नवां सूर्य होयतो मध्यबली होताहै ॥ १६५ ॥ दूसरा, पांचवां, नवां सूर्य १३ दिनसेपरे शुभ कहाहै अस्तको प्राप्तहुआ, नीच राशिमें स्थित, परराशिमें स्थित, और अन्य ग्रहोंसे विजित, वृद्धअवस्था और बालअवस्थामें स्थित,वक्री,अतिचारी शत्रुकी दृष्टिके वशीभूत और उल्कापात से दूषित जो ग्रहहैं ॥ १६७ ॥ वे घरबनानेके आरम्भ में फलदायक नहीं होते इससे उन का घरके आरम्भ में पूजन करै ॥

स्वामि हस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नी करेणच ॥ १६८ ॥ ज्येष्ठपु

त्रकरेणापि कर्मकारकरेणच ॥ अनामिकान्तंहस्तः स्या दूर्द्धे बाहो शरांशकः ॥ १६९ ॥ कनिष्ठिका मध्यमा वा प्रमाणे नैवकारयेत् ॥ स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नी करेणच १७० गर्भमात्रं भवेद्गेहन्नृणांप्रोक्तंपुरातनैः ॥ स्वामि हस्तप्रमाणे न गृहङ्कुर्य्यातदन्द्रितः ॥ १७१ ॥ हस्तादिरेणु पर्य्यन्त मयुग्मं युग्ममेवच ॥

स्वामीके हाथके बराबर वा पत्नीके हाथसे ॥ १६८ ॥ और बडे पुत्रके हाथसे वा मुनीमके हाथसे अनामिकापर्यन्त हाथ होताहै और वह ऊपरको उठाये हुये मनुष्यका पांचवां भाग होताहै ॥ १६९ ॥ कनिष्ठिका वा मध्यमाके प्रमाणसे घरको बनवावे स्वामीके हस्तप्रमाण वा पत्नीके हस्तप्रमाणसे ॥ १७० ॥ मनुष्योंका घर प्राचीन आचार्योंने गर्भमात्र कहाहै और स्वामीके हस्तप्रमाणसे सावधानीसे घरका आरंभ करै ॥ १७१ ॥ और हस्तसे लेकर रेणुपर्यंत अयुग्म वा युग्म गृहका प्रमाण होता है ॥

कृष्णपक्षे तिथिंषष्ठिङ्गण्डान्तेरविसंक्रमे ॥ १७२ ॥ रवि भौमदिने विष्ट्यां व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ मासदग्धं वारदग्धं तिथिंषष्ठींन्विवर्जयेत् ॥ १७३ ॥

कृष्ण पक्ष की षष्ठी तिथि को गण्डान्त और सूर्य के संगम में ॥ १७२ ॥ रविवार और भौम भद्रा व्यतीपात वैधृति में मास दग्ध वारदग्ध नक्षत्रको और षष्ठीतिथिको विशेषकर छोड देना चाहिये ॥ १७३ ॥

अनुक्तेष्वेवधिष्ण्येषु न कर्त्तव्यंकदाचन ॥ क्रकचान्तिथिदग्धञ्च योगान्वज्रसंज्ञकम् ॥ १७४ ॥ उत्पातैर्दूषितंऋक्ष न्निसर्गन्दर्शसंज्ञकम् ॥ बज्रव्याघात शूलेषु व्यतीपातेति गण्डयोः ॥ १७५ ॥ विष्कुंभङ्गण्डपरिघं वर्जयोगेषु कारयेत ॥

शास्त्रमें नहीं कहे हुये नक्षत्रों में कदापि घर का प्रारंभ न करै क्रकचयोग दग्धातिथि वज्रयोग ॥ १७४ ॥ उत्पातोंसे दूषित नक्षत्र अमावास्या वज्र व्याघात शूल व्यतीपात अतिगंड ॥ १७५ ॥ विष्कुंभ गंड परिघ इनसे वर्जित योगोंमें घरका आरंभ करना उचित हैं ॥

स्तंभादिकी ऊंचाई के नक्षत्र ।

स्वातीमैत्रेथमाहेन्द्रे गान्धर्वेभगरोहिणे ॥ १७६ ॥ स्त-म्भोच्छ्रायादि कर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् ॥

स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा,, पूर्वाफाल्गुन, रोहिणी ॥ १७६ ॥ इन नक्षत्रोंमें स्तंभकी ऊंचाई आदि कामोंको करै तथा शेष नक्षत्रों में इस काम को न करना चाहिये ॥

आयध्वजादि का वर्णन ।

विस्तारेणहतंदैर्घ्यम्विभजेदष्टभिस्ततः ॥ १७७ ॥ यच्छे षंसंभवेदायोध्वजाद्यास्तेस्युरष्टधा ॥ ध्वजोधूम्रोहरिः श्वागौः खरेभौवायसोष्टमः ॥ १७८ ॥ पूर्वादिदिक्षुचाष्टानांध्वजादी नामपिस्थितिः ॥ स्वस्थानात्पञ्चमेस्थानेवैरत्वञ्चमहद्भवेत ॥ १७९ ॥ विषमायः शुभःप्रोक्तः समायः शोकदुःखदः ॥ स्वस्थानगाबलिष्ठाः स्युर्नचान्यस्थानगाः शुभाः। १८० ॥ ध्वजःसिंहेतौचगजे ह्येतत्रिशुभप्रदाः ॥ वृषोनपूजितोह्यत्र ध्वजःसर्वत्र पूजितः ॥ १८१ ॥ वृषसिंह गजाश्चैव खुटक पेटकोटयोः ॥ द्विपः पुनः प्रयोक्तव्यो वापी कूपसरःसुच ॥ १८२ ॥ मृगेन्द्रमासनेदद्या च्छयनेषुगजंपुनः ॥ वृषम्भो जनपात्रेषु छत्रादिषुपुनर्ध्वजं ॥ १८३ ॥ अग्निवेश्म सुसर्वेषु गृहेधस्तूपजीविनां ॥ धूमंनियोजयेत्कोचित् श्वानंम्लेच्छादिजा तिषु ॥ १८४ ॥ खरो वैश्यगृहे शस्तो ध्वांक्षःशेषकुटीषुच ॥ वृषसिंहध्वजाश्चापि प्रासादपुरवेश्मसु ॥ १८५ ॥

घरकी लंबाई चौडाईको आपसमें गुणा करके गुणनफलमें आठका भागदे ॥ १७७ ॥ जो शेष आय ध्वज आदि होते हैं, उनके ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, हाथी, और काग ये आठ भेद होते हैं ॥ १७८ ॥ और इन आय ध्वजा आदियों की स्थिति पूर्वादि दिशाओंमें होती है अपने स्थानसे पांचवें स्थानमें घोर बैरहोता है ॥१७९ ॥ विषम आय (विस्तार) शुभ होताहै और सम आयशोक और दुःखका का देनेवाला होताहै जो गृह अपने स्थान होते हैं वे बलवान् होते हैं

परन्तु अन्य स्थान पर स्थित ग्रह बलवान नहीं होते।।१८०।।ध्वज सिंह और हाथी गौ ये शुभ फलदायक होते हैं यहां बैल शुभ नहीं होता और ध्वजा सर्वत्र शुभ होती है ॥ १८१ ॥ पुर कर्पट और कोटमें वृष सिंह गज और वापी कूप और तडागमें हाथी की ध्वजा करना योग्यहै ॥ १८२ ॥ सिंहकी ध्वजा आसनमें,हाथी की ध्वजा शयनमें,वृषकी भोजनके पात्रोंमें और छत्र आदिमें ध्वजाको बनवाना चाहिये ।।१८३।। और अग्निके सब स्थानों में और व्यौपारियोंके घरमें धूम्रकी ध्वजा तथा म्लेच्छ आदि जातियोंमें श्वानकी ध्वजा बनवाना चाहिये ॥१८४॥ वैश्यके घरमें खरकी ध्वजा तथा अन्य कुटी आदिमें काककी ध्वजा श्रेष्ठ होती है और वृष सिंह ध्वज ये महल और वेश्म इनमें शुभ होते हैं ॥ १८५ ॥

अश्वादि शालाओं का वर्णन ।

गजाये वाध्वजायेवा गजानां सदनंशुभम् ॥ अश्वाल यन्ध्वजायेच खरायेवृषभेपिवा ॥ १८६ ॥ उष्ट्राणांमन्दिरं कार्यङ्गजाये वा वृषध्वजे ॥ पशुसद्मवृषायेच ध्वजायेवा शुभप्रदम् ॥ १८७ ॥ शय्यासु वृषभःशस्तः पीठेसिंहः शुभ प्रदः ॥ अमत्र छत्रवस्त्राणां वृषायेवाध्वजेपिवा ॥ १८८ ॥ पादुकोपानहौकार्यौ सिंहायेप्यथवाध्वजे ॥ स्वर्णरूप्यादि धातूनामन्येषान्तुध्वजःस्मृतः ॥ १८९ ॥

गजायमें अथवा ध्वजायमें गजशाला शुभ होतीहै, ध्वजायमें हयशाला तथा खराय और वृषमें भी हयशाला शुभ होतीहै ॥१८६॥ गजाय वा वृषध्वज में पशुओंके रहनेकी जगह वा ऊंटोंका घर बनवावेतो शुभफलदायक होताहै।१८७। शयनागर में वृष राशि और बैठने के स्थानमें सिंह शुभ फलदायक होता-है पात्र छत्र वस्त्र इनका स्थान वृषाय वा ध्वजमें श्रेष्ठ होताहै ॥ १८८ ॥खड़ा-ऊं और जूता ये दोनों वृषाय वा ध्वजमें करने चाहियें सुवर्ण और रौप्य आदि धातु और अन्य स्थानमें ध्वज श्रेष्ठ कहा है ॥ १८९ ॥

घरोंके मुखादि ।

ब्राह्मणेषुध्वजः शस्तः प्रतीच्याङ्कारयेन्मुखं ॥ सिंहश्चभूभृतांशस्तः उदीच्याश्चमुखंशुभं ॥ १९० ॥ विशाम्वृषः प्राग्वदनंशूद्राणांदक्षिणेगजः सर्वेषामेवचायानांध्वजः श्रेष्ठतमोमतः ॥ १९१ ॥

ब्राह्मणोंमें ध्वज श्रेष्ठ होताहै इनको अपने घरका द्वार पश्चिम दिशामें रखना चाहिये क्षत्रियोंको सिंह श्रेष्ठ कहाहै गृहका मुख उत्तरदिशामें श्रेष्ठहै॥१९०॥ वैश्योंको वृष श्रेष्ठ कहाहै और इनके घरका मुख पूर्व दिशामें शुभ होताहै और शूद्रोंको गजाय और इनके घरका मुख दक्षिण में शुभ कहा है और सब आयोंमें गजका आय श्रेष्ठ कहा है ॥ १९१ ॥

ध्वजायः क्षत्रियविशोः प्रशस्तोगुरुरब्रवीत् ॥ सिंहायः सर्वथात्याज्योब्राह्मणेनवृषेप्सुना ॥ १९२ ॥ सिंहायेचण्डता गेहेअल्पापत्यः प्रजायते ॥ ध्वजायेपूर्णसिद्धिः स्याद्वृषायः पशुवृद्धिदः ॥ १९३ ॥ गजाये संपदां वृद्धिः शेषायाः शोकदुःखदाः ॥ पिण्डेनवांकाङ्कगज वन्हिनागाष्टसागरैः१९४ नागैश्चगुणितेभक्ते क्रमादेतेपदार्थकाः ॥ नागाद्रिनवसूर्य्याष्ट भतिथ्यृक्षखभानुभिः ॥ १९५ ॥ आयोवारांशकोद्रव्य मृणमृक्षंतिथिर्युतिः ॥ आयुश्चाथगृहेशर्क्षं गृहभैक्यं मृति प्रदम् ॥ १९६ ॥ संपूर्णाःशुभदाह्येते ह्यसंपूर्णास्त्वनिष्टदाः ॥ धिष्ण्येचवसुभिर्भक्ते व्ययःस्याच्छेषकाङ्कके ॥ १९७ ॥

बृहस्पतिजी नें कहा है कि क्षत्रिय और वैश्योंको ध्वजाय श्रेष्ठ है धर्मके अभिलाषी ब्राह्मणको सिंहायका सर्वथा त्यागदेना उचितहै ॥ १९२ ॥ सिंहाय में घरमें चण्डता और सन्तानकी कमी होतीहै ध्वजाय में पूर्ण सिद्धि और वृषाय में पशुओं की वृद्धि होती है ॥ १९३ ॥ गजाय में संपदा बढती है तथा शेष आय शोक और दुःख के देनेवाले होते हैं गृहके पिण्डको अर्थात् हाथों की संख्याको ॥ ९, ६, ८, ३, ७, ८, ७, ८, ॥ १९४ ॥ इनसे गुणा करने से और क्रम से नाग ८, ७, ९, १२, ८, १२, १५, २७ ॥ १२० ॥ इनका भाग देने पर ये पदार्थ क्रमसे होते हैं ॥१९५॥ कि आय वार अंशक द्रव्य ऋण नक्षत्र तिथि युति और आयु और गृहके स्वामीका नक्षत्र और गृहका नक्षत्र एक होजाय तो गृह मृत्युका दाता होता है ॥ १९६ ॥ जो ये पूर्ण हों तो शुभदायक और अपूर्ण होंतो अनिष्टकारक हैं और गृहमें आठका भागदेनेपर जो शेष अंक रहै उसमें व्यय होता है ॥ १९७ ॥

धनाधिकंगृहंवृद्ध्यैनिर्द्धनायऋणाधिकम्॥ व्ययान्वितेक्षे

त्रफले ध्रुवाद्यक्षरसंयुते ॥ १९८ ॥ त्रिभिःशेषे क्रमादिन्द्र यमभूम्याधिपांशकाः ॥ इन्द्रांशेपदवीवृद्धि र्महत्सौख्यप्रजायते ॥ १९९ ॥ यमांशेमरणंनूनं रोगशोकमनेकधा ॥ राजांशेधनधान्याप्तिः पुत्रवृद्धिश्चजायते ॥ २०० ॥

जिस घरमें धन अधिक होताहै उसमें वृद्धि और जिसमें ऋण अधिक हो उसमें निर्धनता बढती है व्ययसे युक्त क्षेत्रफलमें ध्रुव आदि अक्षरोंको मिलाकर ॥ १९८ ॥ तीनका भाग देकर शेषमें क्रमसे इन्द्र यम भूमिका स्वामी इनके अंशक होते हैं इंद्रके अंशमें पदवी की वृद्धि और महान् सुख होताहै ॥ १९९॥ यमके अंशमें निश्चय मृत्यु होतीहै और अनेक प्रकारके रोग शोक भी होतेहैं राजाके अंशमें धन धान्यकी प्राप्ति और पुत्रोंकी वृद्धि होतीहै ॥ २०० ॥

राशिकूटादिकंसर्वंदम्पत्योरिव चिन्तयेत् ॥ नैः स्वंद्विद्वादशे नूनं त्रिकोणे ह्यनपत्यता ॥ २०१ ॥ षडष्टकेनैधनंस्या द्व्यत्ययेनधनंमृतं ॥ द्यूनस्थितेपुत्रलाभं स्त्रीलाभंच तथैवच ॥ २०२ ॥ जन्मतृतीयेचतथा धनधान्यागमोभवेत् ॥ दशमैकादशेचन्द्रो धनायुर्बहुपुत्रदः ॥ २०३ ॥ चतुर्थाष्टमरिष्फस्थो मृत्युपुत्रविनाशदः ॥ त्रिकोणेत्वनपत्यं स्यात्कोचिद्बन्धुगृहेशुभं ॥ २०४ ॥ वदन्तिचन्द्रंमुनयो नैतन्ममम्मतंस्मृतं ॥

घरके आरंभमें दंपतिकी राशिकूट आदि संपूर्ण बातोंका विचारकरे दूसरी और बारहवीं राशि गृह और गृहके स्वामीकी होयतो निश्चय दरिद्रता होती है और त्रिकोण अर्थात् नवें और पांचवें में सन्तानका अभाव होताहै ॥ २०१ ॥ छटे और आठवेंमेंधनका अभावऔर शोकतथा विपरीतअर्थात् आठवें घरमें धन कहा है सातवेंमें पुत्र स्त्रीका लाभ होताहै ॥ २०२ ॥ और जन्मसे तीसरी राशि में धन धान्यकी वृद्धि होतीहै दशवां और ग्यारहवां चंद्रमा धन आयु और बहुत पुत्रोंको देताहै ॥ २०३ ॥ चौथा आठवां बारहवां चंद्रमा मृत्यु और पुत्रों के नाशको देताहै और नवें पांचवें में सन्तानका अभाव और कोई आचार्य चन्द्रमाको बन्धु गृहमें शुभ ॥ २०४ ॥ कहतेहैं यह मेरा मत नहीं है

अश्विन्यादित्रयम्मेषे सिंहेप्रोक्तम्मघात्रयम् ॥ २०५ ॥

मूलादि त्रितयंचापे शेषराशिद्विकेद्विके ॥ सूर्य्यारवारराश्यं शाः सदावन्हिभयप्रदाः ॥ २०६ ॥ शेषग्रहाणाम्वारांशाः कर्त्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः ॥ गृहस्यागतभंयत्तु तद्द्विराश्यात्मकंय दि ॥ २०७ ॥ तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यंसर्वदागृहं ॥

अश्विनीसे आदिलेकर तीन नक्षत्र मेषमें, मघा आदि तीन सिंहमें ॥ ०५॥ और मूल आदि तीन धनमें कहेहैं और बचीहुई राशि दो दो नक्षत्रोंमें समझनी चाहिये रवि और मंगलवार और इनकी राशियोंके अंशमें अग्निका भय सदा रहताहै ॥ २०६ ॥ और बचेहुए गृहोंके वार अंश कर्ताकी इष्ट सिद्धिको देते हैं घरका आगत नक्षत्र यदि द्विराश्यात्मक राशि रूपहो ॥ २०७ ॥ तो उसके नवांशके अनुसार सदा जानना चाहिये ॥

तारागणोंकावर्णन ।

विपत्प्रदाविपत्तारात्प्रत्यरी प्रतिकूलदा ॥ २०८ ॥ निधनाख्यातुयातारासर्वथा निधनप्रदा ॥ विवर्ज्यतारकास्वेतान्निर्माणमशुभप्रदम् ॥ २०९ ॥ प्रत्यरिस्तुभ्रभयदात्रिविंशर्क्षे तुमृत्युदा ॥ निधनाख्यातुयातारा स्त्रीसुतार्तिप्रदायिनी ॥ ॥ २१० ॥ कुर्वन्नज्ञानतोमोहाद्दुःखभाग्व्याधिभाग्भवेत् ॥

विपत्तारा विपत्तिको देतीहै प्रत्यरि प्रतिकूल फल देतीहै ॥ २०८ ॥ निधन नाम वाली तारा सर्वथा मृत्युकारक होती है वर्जित ताराओंमें घरबनाना फलदायक होता है ॥ २०९ ॥ प्रत्यरितारा महान् भयकारक होती है और तेईसवें नक्षत्रमें हो तो मृत्युकारक है निधन नामकी तारा स्त्री और पुत्रोंको दुःखदायक होती है ॥ २१० ॥ भूलवा प्रमाद से जो कोई इनमें घर बनाता है वह दुःख और व्याधिका भागी होता है ॥

तिथियोंकावर्णन ।

तिथौरिक्तेदरिद्रत्वंदर्शेगर्भनिपातनं ॥ २११ ॥ कुयोगेधनधान्यादिनाशः पातश्चमृत्युदः ॥ वैधृतिःसर्वनाशायनक्षत्रैक्येनचैवच ॥ २१२ ॥ आयुर्विहीनेगेहेतुदुर्भगत्वंप्रजायते नाडीवेधोनशुभदस्ताराराेगभयप्रदा ॥ २१३ ॥ गणवैरे पुत्रहानिर्धनहानिस्तथैवच ॥ योनौकलिर्महादुःखंयमांशेमरणध्रुवम् ॥ २१४ ॥

रिक्ता तिथिमें दरिद्रता और अमावास्यामें गर्भपात होता है ॥ २११॥ कुयोगमें धन धान्य आदिका नाश और पात योग मृत्युकारक होता है और वैधृति और नक्षत्रकी एकतामें सर्वनाश होता है ॥ २१२ ॥ आयुहीन घर हो तो स्वामी दुर्भागी होता है नाडीका वेध शुभदायक नहीं है और तारा रोग तथा भयको देती है ॥ २१३ ॥ गणके वैरमें पुत्र और धनकी हानि होती है और योनिमें कलह और महादुःख होताहै और यमांशमें स्त्रीपुरुष दोनोंकी मृत्यु होती है ॥ २१४ ॥

नक्षत्रैक्येस्वामिमृत्युर्वर्णे वंशविनाशनम् ॥ पापवारेदरिद्रत्वंशिशूनाम्मरणन्तथा ॥ २१५ ॥ केचिच्छनिंप्रशंसन्ति चौरभीतिस्तु जायते ॥ स्वामिहस्तप्रमाणेन गृहङ्कुर्याद्वरानने ॥ रेखादिहस्तपर्यन्तमोजसंख्याप्रशस्यते ॥ करमानादधिकञ्चेत्तदाङ्गुलानिप्रदायहित्वाच ॥ क्षेत्रफलङ्गणितेन प्रसादयेदिष्टसिद्ध्यर्थम् ॥ २१७ ॥करमानादधिकञ्चेदङ्गुलानिप्रसाधयेत् ॥ दीर्घेदद्यान्निवानूनम् नविस्तीर्णे कदाचन ॥ २१८ ॥

नक्षत्रकी एकतामें स्वामीकी मृत्यु और वर्ण की एकता में वंशका नाश होताहै पापग्रहके वारमें दरिद्रता और बालकोंका मरण होताहै ॥ २१५ ॥ कोई २ आचार्य शनैश्चर को अच्छा समझते हैं परन्तु शनैश्चरमें चोरोंका भय होताहै हेवरानने स्वामीके हाथके प्रमाणसे घरको बनावै रेखासे लेकर हस्तपर्यन्त विषम संख्या श्रेष्ठ होती है ॥ २१६ ॥ हाथके प्रमाणसे अधिक हो तो अंगुलोंको लेकर वा छोडकर गणितसे क्षेत्रफलको इष्ट सिद्धिके लिये साधन करै ॥ २१७॥ हाथके मानसे अधिक हो तो अंगुलोंको सिद्धकरै और घरकी लंबाई में अंगुलोंको दे पर चौडाई में कदापि न दे ॥ २१८ ॥

अङ्गुलैः कलितानाभिर्वर्गीकृत्यपदंभवेत् ॥ प्राप्तहस्तादिमानंस्यात्कुर्य्यादापतनंततः ॥ २१९ ॥ एकादशकराद्वृद्धियावद्द्वात्रिंशहस्तकं तावदायादिकंचिंत्यं तदूर्ध्वंनैवचिन्तयेत् ॥ २२० ॥ आयव्ययौमासशुद्धिंनजीर्णेचिन्तयेद्गृहे ॥ शिलान्यासम्प्रकुर्वीतमध्येतस्यविधानतः ॥ २२१ ॥

अंगुलोंसे कल्पना की हुई जो नाभि है उसका वर्ग करने से पद होता है इसतरह मात्र जो हस्त आदिका मान उससे फिर घरको बनवाना चाहिये ॥२१९॥ ग्यारह हाथसे आगे बत्तीस हाथ तक आयादिकका बिचार करै और उस के ऊपर न करै ।।२२०॥ आय व्यय और मासकी शुद्धि का विचार पुराने घरमें न करना चाहिये और घरके बीचमें विधिपूर्वक शिलाका स्थापन करै।२२१।

शालाओंकावर्णन ।

ईशान्यांदेवतागेहम्पूर्वस्यांस्नानमन्दिरम् ॥ आग्नेयांपाकसदनंभाण्डारागारमुत्तरे ॥ २२२ ॥ आग्नेयपूर्वयोर्मध्येदधिमन्थनमन्दिरं ॥ अग्निप्रेतेशयोर्मध्ये आज्यगेहंप्रशस्यते ॥ २२३ ॥ याम्यनैर्ऋत्ययोर्मध्येपुरीषत्यागमन्दिरम् ॥ नैर्ऋत्याम्बुपयोर्मध्येविद्याभ्यासस्यमन्दिरम् ॥ २२४ ॥ पश्चिमानिलयोर्मध्येरोदनार्थंगृहंस्मृतम् ॥ वायव्योत्तरयोर्मध्येरतिगेहं प्रशस्यते ॥ २२५ ॥ उत्तरेशानयोर्मध्ये औषधार्थन्तुकारयेत् ॥ नैर्ऋत्यांसूतिकागेहन्नृपाणांभूतिमिच्छतां ॥२२६॥ आसन्नप्रसवेमासि कुर्याच्चैवविशेषतः ॥ तद्वत्प्रसवकालस्यादितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ २२७ ॥ मासेतुनवमेप्राप्ते पूर्वपक्षे शुभेदिने ॥ प्रसूतिसंभवेकाले गृहारंभणमिष्यते ॥२२९॥ गुरोरधोलघुस्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्ववन्न्यसेत् ॥ गुरुभिःपश्चिमे पूर्वे सर्वलघ्ववधिर्विधिः ॥ २३० ॥

ईशान दिशामें देवालय पूर्वमें स्नानागार अग्निकोण में रसोई घर और उत्तरमें बर्तनों का स्थान बनवावै ॥ २२१ ॥ अग्निकोण और पूर्वके बीच में दधि मथनका घर, अग्निकोण और दक्षिण दिशाके बीचमें घृतका घर बनाना उत्तम है ॥ २२३ ॥ दक्षिण और नैर्ऋतिके बीचमें मलके त्यागनेका स्थान (पाखाना) और नैऋत और पश्चिम के बीचमें विद्याके अभ्यास का मंदिर बनवाना चाहिये ॥ २२४ ॥ पश्चिम और वायुकोण के मध्यमें रोदनघर, वायुकोण और उत्तरके मध्यमें स्त्री संगम घर श्रेष्ठ कहाहै ॥२२५॥ उत्तर और ईशान के बीचमें औषधालय बनवावै तथा वैभवके चाहनेवाले राजाओं को उचित है सूतिकाका घर नैर्ऋत दिशामें बनवावै ॥ २२६ ॥

यह प्रसवकालके पासवाले महिनेमें करना और तैसेही प्रसवकालमें बनाना शास्त्रोंके अनुकूलहै॥२२७॥नवम मासके आनेपर पूर्वपक्षके शुभ दिनमें प्रसूतिके प्रारंभके समयप्रसूतिका घर बनाना अच्छा होताहै॥२२८॥ गुरुके नीचे लघु-की स्थापना करै और उसके आगे ऊर्द्धके समान स्थापना करै गुरुओंसे पश्चिम और पूर्वमें सब लघुओंकी अवधिकी विधि होतीहै ॥ २२९ ॥

अलिन्दों का भेद ।

स्यादलिन्दोलघुस्थाने नालिन्दंगुरुसमाश्रितं॥प्रदक्षिणगृहद्वारादलिन्दैर्दशषोडधा॥२३०॥ध्रुवसंज्ञं गृहं स्याद्यं धनधान्यसुखप्रदम्॥धान्यं धान्यप्रदंनृणांजयं स्याद्विजयप्रदम् ॥२३१॥ नन्दंस्त्रीहानिदं नूनंखरंसंपद्विनाशनम्॥पुत्रपौत्रप्रदंकान्तंश्रीप्रदंस्यान्मनोरमं ॥२३२॥सुवक्त्रंभोगदंनूनंदुर्मुखंविमुखप्रदम्॥सर्वदुःखप्रदंक्रूरंविपुलंशत्रुभीतिदं॥२३३॥ धनदंधनदंक्षयंसर्वक्षयावहम् ॥ आक्रन्दंशोकजनकंविपुलं श्रीयशःप्रदम् ॥२३४॥विपुलेनासदृशन्धनदंविजयाभिधं ।२३५। प्रदक्षिणेसप्तमुखादलिन्दंविद्या लघुस्थानसमाश्रितश्च ॥ गृहस्यपूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवंभवेयुर्दशषड्चभेदाः ॥ २३६ ॥

लघुस्थान में देहली की स्थापना करै पर गुरुस्थानमें अलिंद न रखना चाहिये घरके द्वारसे प्रदक्षिणा की रीतिसे जो अलिंदहैं उनके सोलह भेद होतेहैं ॥२३०॥

पहिला ध्रुव संज्ञकहै जो धन धान्य और सुखका दाता होताहै । दूसरा धान्य नामक घरहै यह मनुष्यों को धान्य देताहै और तीसरा जय है जो विजय देताहै ॥ २३१ ॥ चौथा नंद नामक घर स्त्रियोंकी हानि को देताहै, पांचवां खर सम्पत्तिका नाशकहै छटा कान्त नामक घर पुत्र पौत्रों को देता है सातवां मनोरम नामक घर लक्ष्मी को देताहै॥२३२॥आठवां सुवक्र नामक घर भोग देता है नवां दुर्मुख विमुखता को देता है दसवां क्रूरग्रह सब दुःखों को देताहै ग्यारहवां विपुल सब शत्रुओं को देताहै ॥२३४॥ बारहवां धनद धनको देताहै तेरहवां क्षय सबका क्षयकारकहै चौदहवां आक्रंद शोक पैदा करता है पंद्रहवां विपुल श्री और यशको देताहै ॥ २३४ ॥ सोलहवां विजय नामक घर विपुल के तुल्य फल देताहै तथा धन भी देताहै ॥ २३५ ॥

इसतरह प्रदक्षिण क्रमसे सप्त मुखसे लघुस्थान में रक्खे हुए अलिंदको जान-

ना चाहिये पूर्व आदि दिशाओं में रक्खे हुए अलिंदोंमें क्रमसे सोलह भेद होते हैं ॥ २३६ ॥

अलिन्द का वर्णन ।

भवेयुर्नशुभालिन्दं गृहङ्कापालसंज्ञकं ॥ विस्ताराद्द्विगुणङ्केहं गृहस्वामिविनाशनं ॥ २३७ ॥ निरर्थकन्तद्गृहंस्याद्भयम्वाराजसंभवम् ॥ केचिदलिन्दकंद्वारंप्रवदन्तिमनीषिणः ॥ २३८ ॥ केचिदालिन्दंशालाञ्चकेचिच्चालिन्दकञ्चतत् ॥ गृहवाह्यस्थिताः काष्ठागृहमत्यन्तनिर्गताः ॥ २३९ ॥ काष्ठाकाष्ठस्ययद्गेहन्तद्वाचालिन्दसंज्ञकं॥ गृहाद्बहिश्चयेकाष्ठागृहस्यान्तर्गताश्चये ।२४०। तेषाङ्कोष्ठीकृतान्तिर्यग्गेहञ्चालिन्दसंज्ञकं॥

जिस घरके अलिन्द शुभ नहीं होते हैं, वे कापाल संज्ञक होतेहैं, जो घर अपनी लम्बाई से दूना होताहै वह घर के मालिक का सत्यानाश खो-देता है ॥ २३७ ॥ वह घर निरर्थक कहलाता ह और उसमें राजा का भय रहता है कोई कोई बुद्धिमान् अलिन्द को द्वार बोलते हैं ॥ २३८ ॥ कोई२ अलिन्द और शाला दोनों को और कोई आलिंदक को कहते हैं, किसी किसी घर में बाहर की ओर काष्ठा निकली रहती है उन काष्ठाओं समेत जो काठका घर है वह अलिंद संज्ञक होता है जो काष्ठा घरके बाहर होती है वा जो घरके भीतर होती हैं ॥ २३९ ॥ २४० ॥ उनका कोष्ठरूप में अर्थात् एक दूसरे की ओर मुख किये हुए टेढा घर बनाना अलिंद कहलाताहै ॥

स्तंभहीनंगृहाद्बाह्यान्निर्गतङ्काष्ठनिर्मितं ॥ २४१ ॥ मध्यादूर्ध्वगतङ्गेहंतच्चवालिंदसंज्ञकं ॥ यत्रालिन्दञ्चतत्रैवद्वारमार्गंप्रशस्यते ॥ २४२ ॥ अलिन्दंद्वारहीनञ्चगृहङ्कोटीसमंस्मृतम् ॥ यत्रालिन्दंतत्रशालातत्रद्वारञ्चशोभनं ॥२४३ ॥ शालालिन्दन्द्वारहीनंनगृहङ्कारयेद्बुधः ॥

जिस घरमें खम्भ नहीं होते और जिसमें काठका बना हुआ बाहरको निकला रहताहै और बीच में ऊंचा होताहै उसे भी अलिंद कहते हैं, जहां अलिंद होताहै वहीं द्वार होना चाहिये ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ जिस घरमें अ-लिंद और द्वार नहीं होते हैं वह घर कोटी के तुल्य होता है जहां अलिंद हो

वहीं शाला और द्वार सुशोभित होते हैं ॥ २४३ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि घरको कभी शाला अलिंद और द्वार रहित न बनवावे ॥

ऊंचाई का वर्णन ।

यद्वास्तुनिचविस्तारः सैवोच्छ्रायः शुभः स्मृतः ॥२४४॥ सूकशालोगृहःकार्योविस्ताराद्द्विगुणोदश ॥ चतुःशालगृहस्यैवमुच्छ्रायोव्याससम्मितः ॥ २४५ ॥ विस्ताराद्द्विगुणं दैर्घ्यमेकशालेप्रशस्यते ॥ विस्तीर्णयत्नवेद्गेहन्तदूर्ध्वंत्वेकशालकं ॥ २४६ ॥ द्विशालेद्विगुणम्प्रोक्तंत्रिशालेत्रिगुणंतथा ॥ चतुःशालेपञ्चगुणंतदूर्ध्वन्नैवकारयेत् ॥ २४७ ॥ शिखाचैव त्रिभागन्तुगृहञ्चोत्तमसंज्ञकं ॥ एकन्नागोडुसंशुद्धयाद्वेच दक्षिणपश्चिमा ॥ २४८ ॥

वास्तु की जितनी लम्बाई होती है उतनी ही ऊंचाई करना शुभ होता है ॥ २४४ ॥ शूकशाल नामक घरकी ऊंचाई उसकी लंबाई से दूनी होती है, दस और चार शाला के घरकी ऊंचाई उस घरके व्यासके तुल्य अच्छी होतीहै (जो रेखा केन्द्र पर होकर दोनों परिधिओं को छूती है उसे व्यास कहते हैं) ॥ २४५ ॥ एक शाला के घरकी लंबाई बिस्तार से दूनी अच्छी होती है, जो घर बहुत लम्बा चौडा होता है वह एकशाला होता है अर्थात् उसके ऊपर दूसरी मंजिल न बनवानी चाहिये ॥ २४६ ॥ दुमंजिले मकान में दूना, तिमंजिले में तिगुना और चौमंजिले में पंचगुना जानना चाहिये इस से ऊंचा मकान कदापि न बनवावे ॥ २४७ ॥ जिस घरकी चोटी उससे त्रिभाग की हो वह उत्तम होता है । एक शाला घर बनवाने में घरको उत्तर शालासे हीन करना चाहिये यदि दो शाला वाला घर बनवाना हो तो दक्षिण और पश्चिम में मकान बनवाना चाहिये ॥ २४८ ॥

त्रिशालेपूर्वतोहीनङ्कार्यम्वासोम्यवर्जितः ॥ ऊर्ध्वभागत्रयन्त्यक्त्वाअधाभागद्वयन्तथा ॥ २४९ ॥ मध्येनाभिम्विजानीयादितिप्राहपराशरः ॥ पूर्वादिषुचतुर्दिक्षुवाममेकादयोध्रुवाः ॥ २५० ॥ विस्तारस्याथदैर्घ्यस्यतथैवैकैकसंयुतम् ॥ वामम्वातादिकोणेषुध्रुवंविस्तारदैर्घ्ययोः ॥ २५१ ॥ एकाद्याः

स्वेच्छयासर्वेकार्यावेदसमन्विताः ।। अनेनैवप्रकारेणक्रियमाणेववास्तुनि ॥ २५२ ॥ आयव्ययादिसंशुद्धिंनचिंतयंति पूर्वजाः ॥ अस्यार्थः ॥ यदिवास्तुनिएकमेवगृहंक्रियतेतदा नागोडुनंशुद्ध्यासौम्यवर्जितं उत्तरशालाहीनंगृहं यदिद्विशाल कंगृहं क्रियते तदादक्षिणपश्चिमेशाला कार्यात्रिशालेपूर्वतोहीनंकार्यंत्रिशाले उत्तरशालया वाहीनं कार्यंशाला विभागस्तु अनेनैव विधानेन कार्यः पूर्वेऊर्द्धभागत्रयंत्यक्त्वा पश्चिमेभाग द्वयंत्यक्त्वायोमध्यगतोभागः सनाभिः तत्रशालानाविधेया ॥ अनेनैवप्रकारेण पूर्वादिदिक्षुएकाद्यो विस्तारदैर्घ्यस्यएकैकं भागंसंयोज्यवातादिकोणेषु उत्तरशालाहीनत्वान्नदेयंसर्वे एकाद्याः चतुःशालांतावेदसमन्विताः कार्याः ॥ अनेनैव प्रकारेणशालायुते वास्तुनिआयव्ययादिशुद्धिर्नचिन्तनीया॥ एकशालेआयव्ययादिविचारः कर्त्तव्यः द्विशाले आयव्ययादिशुद्धिर्नविचारणीया यतः निर्गमालिंदानिपूर्वादीनियानिचतुर्दिशं वेश्मनां तानि न ग्राह्याणि नो तद्वास्तु परिग्रहाः ॥ २५३ ॥

तिमंजले मकानमें पूर्व वा उत्तर की ओर मकान न बनवाना चाहिये, इसी तरह ऊपर के तीन और नीचे के दो भागों को छोडकर ॥ २४९ ॥ बीच में नाभि जानना चाहिये यह पाराशर ऋषिका मत है, इसीतरह पूर्वसे आदि लेकर चारों दिशाओं में एक आदि ध्रुव बांई ओर से होताहै ॥ २५० ॥ लंबाई और चौडाई के एक एक भागको मिलाकर बांई ओर से वायव्यादि कोण में लंबाई चौडाई का ध्रुव होताहै ॥ २५१ ॥ इसतरह एक शालावाले घरसे लेकर चारशाला वाले बनवाने चाहिये ॥ २५२ ॥ पूर्वाचार्य गण इसतरह घर बनवाने में आय व्ययादिका कुछ विचार नहीं करते अर्थात् एक शालावाले घरमें तो आयव्यय का विचार करना चाहिये, दो शालावाले घरमें नहीं करना चाहिये कारण यह है कि घरके चारों ओर जो निर्गम और अलिंद होतेहैं वे दोशालावाले घरोंमे नहीं मानने चाहिये २५३

वर्णोंसे शाला के भेद ।

ब्राह्मणानांचतुःशालं क्षत्रियाणांत्रिशालकं ॥ द्विशालं स्यात्तुवैश्यानां शूद्राणामेकशालकं ॥ २५४ ॥ सर्वेषामेव वर्णानां मेकशालंप्रशस्यते ॥ एकशालन्द्विशालंवा त्रिशालन्तुर्यशालकम् ॥ २५५ ॥ यथालिन्दंगृहंकुर्यात्ताद्दक्शालाप्रशस्यते ॥ शालादिभिर्नकर्त्तव्यं नकुर्यात्तुंगनिम्नकम् २५६

ब्राह्मणों का घर चार शाला का, क्षत्रियोंका तीन शाला का, वैश्यों का दुशाला का और शूद्रोंका एक शाला का होताहै ॥ २५४ ॥ तथा सब वर्णोंके लिये एक शाला वाले घरों में ॥ २५५ ॥ अलिंद के अनुसार घर बनवावै, ऐसी शालाएं उत्तम होती है परंतु ऐसे शालावाले घर न बनवाने चाहिये जो कहीं ऊंचे हों और कहीं नीचे हों ॥ २५६ ॥

समांशालान्ततःकुर्या त्समंप्राकारमेवच ॥ कुलीरवृश्चिकौमीन उत्तरद्वारसंस्थिताः ॥ २५७ ॥ मेषसिंहधनुर्द्धागाः पूर्वद्वारेषुसंस्थिताः ॥ वृषभं मकरंकन्या याम्यद्वारेसमाश्रिताः ॥ २५८ ॥ मिथुनंतुलकुंभौच पश्चिमद्वारमाश्रिताः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चैवयथाक्रमं ॥ २५९ ॥ यद्दिशाराशयःप्रोक्ता स्तास्मिन्शालाप्रशस्यते ॥ अथवा पूर्वभागेतु ब्राह्मणाउत्तरेनृपाः ॥ २६० ॥ वैश्यानां दक्षिणेभागे पश्चिमे शूद्रकास्तथा ॥ आग्नेयादि क्रमेणैव अन्त्यजावर्णसङ्कराः ॥ २६१ ॥ ज्ञातिभ्रष्टाश्चचौराश्चविदिक्स्याः शोभनाः स्मृताः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्राः प्रागादिषुस्मृताः २६२

तदनन्तर समान शाला और उसके समानही परकोटा बनवावै कर्क वृश्चिक और मीन ये उत्तरके द्वारमें स्थित होतेहैं ॥ २५७ ॥ मेष, सिंह और धन ये पूर्वके द्वारमें स्थित होतेहैं वृष मकर और कन्या ये दक्षिणके द्वारमें स्थित होतेहैं ॥ २५८ ॥ मिथुन तुल और कुंभ ये पश्चिमके द्वारमें स्थित होतेहैं और इसी क्रमसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंका वास होताहै उत्तर में ब्राह्मण, पूर्वमें क्षत्रिय, दक्षिण में वैश्य और पश्चिमें में शूद्र का बास होताहै ॥ २५९ ॥ जिस दिशा की राशि कही गई हैं उसी दिशा में शाला का

बनवाना अच्छा होताहै अथवा पूर्व भागमें ब्राह्मण, उत्तर में क्षत्रिय ॥२६०॥ दक्षिणमें वैश्य, पश्चिममें शूद्र और अग्निकोण आदिके क्रमसे अन्त्यज और वर्णसंकरोंका वास होताहै ॥ २६१ ॥ जातिसे भ्रष्ट और चोरोंका वास विदिशाओंमें होताहै ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये पूर्व आदि दिशाओंमें शुभ कहे हैं ॥ २६२ ॥

राजमन्दिरों का विस्तार ।

अष्टोत्तरशतंहस्त विस्तारान्नृपमन्दिरम् ॥ कार्यंप्रधान मन्यानि तथाष्टाष्टानितानितु ॥ २६३ ॥ विस्तारंपाद संयुक्तं तेषान्दैर्घ्यंप्रकल्पयेत् ॥ एवंनृपाणांपंचैव गृहाणिशुभदानिच ॥ २६४ ॥ षड्भिःषड्भिर्विहीनाश्च चतुःषष्टिमितस्य च ॥ पंचैवतस्यविस्तारं दैर्घ्यंषड्भागसंयुतम् ॥ षाष्टिश्चतुर्विहीनानि वेश्मानिसचिवस्यच ॥ पंचषष्ठांशसंयुक्त न्दैर्घ्यन्तस्यार्द्धमेवच ॥ २६६ ॥ नृपाणाम्महिषीणाञ्च प्रशस्तम्पञ्चचैवहि ॥ षड्भिषड्भिश्चवर्ज्यानि अशीत्याश्वतथैवच ॥ २६७ ॥ त्रिंशद्युतन्तद्दैर्घ्यंश्च युवराजगृहाणिच ॥ पंचाशद्वृद्धंतस्यैव भ्रातृणांप्रभवन्तिच ॥ २६८ ॥

राजाओंका मन्दिर १०८ हाथ का होता है यह सब स्थानोंमें उत्तम होताहै शेष स्थान आठ वर्ग हाथके होने चाहिये ॥ २६३ ॥ इनके विस्तार के पादसे युक्त लम्बाई की कल्पना करे इस तरह राजाओंके पांचही घर शुभदायक होते हैं ॥ २६४ ॥ और चौंसठ हाथके घर में छठे २ भागसे हीन पांच घर होते हैं उनकी लंबाई चौडाई में छः भाग मिले रहते हैं ॥ २६५ ॥ और चौंसठ हाथसे कम मंत्रियों के पांच घर होतेहैं और छठे भागसे युक्त अथवा चौडाई से आधी उनकी लंबाई होती है ॥ २६६ ॥ राज रानियों के भी पांचही घर उत्तम होतेहैं और उनका विस्तार भी छठे भागसे हीन ८० हाथका होताहै ॥ २६७ ॥ और रानियोंके घरकी लंबाईसे ३० हाथ अधिक युवराजोंके घर होतेहैं और युवराजके घरसे ५० हाथ अधिक राजाके भाईयों के घर होतेहैं ॥ २६८ ॥

नृपमन्त्रिगृहाणांच अन्तरेयत्प्रमाणकम् ॥ सामन्तराजपुत्राणां प्रवराणांगृहंस्मृतम् ॥ २६९ ॥ नृपाणांयुवराजस्य गृहाणामन्तरेणयत् ॥ तद्गृहङ्कञ्चुकीवेश्या कलाज्ञानन्तथैव

च ॥ २७० ॥ युवराजमन्त्रिणान्तु प्रभवेद्धियदन्तरम् ॥ अध्यक्षदूतगेहन्तत्कर्मसुकुशलाश्चये ॥ २७१ ॥ अध्यक्षाधिकृतानाञ्च रतिकोशप्रमाणकम् ॥ चत्वारिंशच्चतुर्हीनाः पंचगेहाभवन्तिहि ॥ २७२ ॥

और राजा तथा मंत्री के घरोंके बीचका जो प्रमाणहै उतने प्रमाण का सामंत और राजपुत्रों के लिये श्रेष्ठ कहाहै ॥ २६९ ॥ राजा और युवराजों के घरोंके बीचका जो प्रमाणहै उतना घर कंचुकी, वेश्या और कलाकुशल नटादि लोगोंका होताहै ॥ २७० ॥ युवराज और मंत्रियोंके घरका जो बीच का प्रमाणहो उतने प्रमाणका घर अध्यक्ष, दूत और कार्यकुशल लोगों के घर होते हैं ॥ २७१ ॥ अध्यक्ष और अधिकारियों के घरभी संभोगालय और कोषस्थानके तुल्य होतेहैं और इन लोगोंके भी छत्तीस छत्तीस हाथके पांच घर होते हैं ॥ २७२ ॥

षड्भागसंयुतन्दैर्घ्यन्दैवज्ञाभिषजान्तथा ॥ पुरोहितानां शुभदंसर्वेषांकथयाम्यतः ॥ २७३॥ हस्तद्वात्रिंशतायुक्तम्विस्तारस्याद्विजालयं ॥ विस्तारस्दृशांशस्तुदैर्घ्यन्तस्यप्रकल्पयेत् ॥ २७४ ॥ त्रयाणांक्षत्रियादीनामालयं पूर्वचोदितम्॥ नृपसेनापतेर्गेहस्यान्तरंयन्नवेदिह ॥ २७५ ॥ तत्कोशगेहं भवतिरतिगेहन्तथैवच ॥ सेनापतिगृहाणाञ्च अन्तरंयत्प्रमाणकम् ॥ २७६ ॥

इनसे छठे भागसे युक्त लम्बाई के घर ज्योतिषी और वैद्योंके होते हैं और पुरोहितोंके घरभी सुखदायक होते हैं अब सब लोगोंके घरोंका वर्णन किया जाता है ॥ २७३ ॥ ३२ बत्तीस हाथकी चौडाई का घर ब्राह्मणोंका होताहै और इतनी ही उनकी लंबाई होनी चाहिये ॥ २७४ ॥ और क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंका घर पहिले के समान ही समझना चाहिये राजा और सेनापतियोंके घरका बीचका भागहो उतने प्रमाणका कोशस्थान (खजाना) और संभोगालय होताहै और सेनापति के घरके बीच का जो प्रमाणहो ॥२७६॥

चातुर्वर्ण्यस्ययद्गेहन्तद्राजपुरुषंमतं ॥ अथपारशवादीनां मातापित्रोर्यदन्तरं ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणस्यचयन्मानंशूद्रेणस

हयद्भवेत् ॥ मूर्द्धावसिक्तक्षत्रासुतथैवमृतकण्टकः ॥२७८॥ पश्चात्श्रमिजनानाञ्चयथेष्टङ्कारयेद्गृहं ॥ शतहस्तोछ्रितङ्कार्यंचतुः शालंगृहंभवेत् ॥ २७९ ॥ प्रमितन्त्वेकशालन्तु शुभदन्तत्प्रकीर्तितं ॥ सेनापति नृपादीनां सप्तत्या सहिते कृते ॥ २८० ॥

उतने प्रमाण का घर चारों वर्णोंके राजपुरुषों का होताहै और माता-पिताके घरका जो बीच का प्रमाण होताहै उतने ही प्रमाण का घर पारशवादिका होताहै । पारशव उसे कहते हैं जो शूद्राके पेटसे ब्राह्मणके संयोगसे होता है ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणके घरका प्रमाण शूद्रके घरके संग हो वह घर मूर्द्धाभिषिक्त और मृतकण्टकका होता है ॥ २७८ ॥ इस के पीछे श्रमीजन (मजदूर) के घरको अपनी इच्छाके अनुसार बनवावै जिस घरमें चार शाला हों उसकी उंचाई सौ हाथ की होती है ॥ २७९ ॥ और जो एक शालाका प्रमितहो वह सुखदायक होता है सेनापति और राजाके घरके प्रमाणके व्यास में सत्तर मिलाकर ॥ २८० ॥

व्यासेचतुर्दशहृतेशालामानंविनिर्दिशेत् ॥ पञ्चत्रिंशद्धृतेन्यत्रालिन्दमानंभवेच्चतत् ॥ २८१ ॥ शालात्रिभागतुल्या चकर्तव्यावीथिकाबहिः ॥ भवनात्पूर्वतोष्णीषंपश्चात्स्वापाश्रयम्भवेत् ॥ २८२ ॥ सावष्टंभं पार्श्वयोस्तुसर्वत्रसुस्थितंभवेत्॥ विस्तारषोडशांशस्तुचतुर्हस्तयुतश्चयः ॥ २८३ ॥ तदन्तरस्योच्चतरंप्रमाणंप्रवदेद्बुधः। द्वादशभागेनोनं चसमस्तानां प्रकल्पयेत् ॥ २८४ ॥

१४ का भाग देनेपर शाला का मान निकलताहै और ३९ का भाग देनेपर अलिंदका मान होताहै ॥ २८१ ॥ और शालासे तिहाई गलीकी चौडाई होती है और घरसे पूर्व भागमें वस्त्र बनवानेका स्थान अर्थात् तोशाखाना और पश्चिममें निन्द्राभवन होताहै २८२॥ और शेष बगलोंमे अवष्टम्भ सहित और सब ओर से दृढ चौडाई के सोलहवें हिस्से में चार हाथ मिलाकर जो प्रमाणहो ॥ २८३ ॥ उतना प्रमाण उसके बीच की ऊंचाई का होना चाहिये और शेष सब घरोंकी ऊंचाई बारहवें भागसे कम बनवानी चाहिये ॥२८४॥

यजन्तेराजसूयाद्यैः क्रतुभिर्ह्यवनीश्वराः ॥ नलैरष्टाष्टमै स्तेषांकारयेद्भवनोत्तमं ॥ २८५ ॥ तथाचसप्तमैरेव विप्रा णाङ्कारयेद्गृहम् ॥ अर्द्धषष्ठैःक्षात्रियाणां वैश्यानामर्द्धपंचमैः ॥ २८६ ॥ त्रिभिस्साद्धैश्चशूद्राणां भवनंशुभदंस्मृतम् ॥ स्व गृहाणाम्विभागेन प्रमाणमिहलक्षयेत ॥ २८७ ॥

राजा लोग राजसूय आदि यज्ञोंसे जो ईश्वर का भजन करतेहैं उनका उत्तम भवन चार ऐसे नलोंसे बनवावें ॥ १८५ ॥ और सात जिनमें आधेहों उनसे ब्राह्मणों के और छः जिनमें आधेहों उनसे क्षत्रियोंका और पांच जिनमें आधे हों ऐसे नलों से वैश्योंका घर बनवावै ॥२८६॥ और साढेतीन जिनमें आधे हों ऐसों से शूद्रोंका घर बनवाना उत्तम होताहै अपने अपने घरोंके विभाग से इसका प्रमाण देखना चाहिये ॥ २८७ ॥

विस्तारायामगुणितन्नलैः षोडशभिः स्मृतम् ॥ विषमाः शुभदाह्येतेसमादुःख प्रदायकाः ॥ २८८ ॥ व्यासाच्चषोड शोभागः सर्वेषांमितयः स्मृताः पक्केष्टकाकृतानाञ्चनदारूणां कदाचन ॥ ॥ २८९ ॥ नृपसेनापतिगृहमष्टाशीतिशतैर्युताः॥ अङ्गुलानिद्वारमानम्प्रवदन्तिमनीषिणः ॥ २९० ॥ विप्रा दीनांतथासप्तविंशतिस्त्वंगुलानिच ॥ द्वारस्यमानंतत्प्रोक्तं त्रिगुणोच्छ्रायमुच्यते ॥ २९१ ॥ उच्छ्रायहस्तसंख्यायाः परिमाणान्यंगुलानिच ॥ शाखाद्वयेपिबाहुल्यंकार्यंद्वादशसं युतं ॥ २९२ ॥ उच्छ्रायात्सप्तगुणिताद्दशीतिपृथुतामता ॥ भागः पुनर्नवगुणाशीत्यंशस्ततएवच ॥ २९३ ॥ दशांशही नतस्याग्रः स्तंभानांपरिमाणकं ॥ ॥ वेदस्त्रोरुचकः स्तंभोव ज्रोष्टास्त्रियुतोमतः ॥ २९४ ॥

१६ नलोंसे गुणन करनेसे जो लंबाई चौडाई निकलतीहै उसमें जो विषम आवै तो शुभदायक और सम आवे तो दुःखदायक होतेहैं ॥ २८८ ॥ और व्याससे सोलहवें भागका जो प्रमाण कहाहै वह सब घरोंका प्रमाणहै यह उन गृहोंका प्रमाणहै जो पक्की ईंटोंके हों काष्ठकी ईंटोंके कदाचित्

नहीं ॥ २८९ ॥ राजा और सेनापति के घर के द्वारका प्रमाण एकसौ अट्ठासी अंगुलका कहाहै ॥ २९० ॥ और ब्राह्मण आदिकोंके द्वारका प्रमाण सत्ताईस अंगुलका कहाहै द्वारके प्रमाणसे तिगुनी ऊंचाई शास्त्रमें कहीहै२९१ ऊंचाई के हाथोंकी जो संख्या है उतनेही अंगुल तथा बारह अंगुल अधिक दोनोंशाखाओंमें अधिक बनवाने चाहिये ॥ २२९ ॥ और ऊंचाई से सात गुनी दशा पृथुता होती है, नौगुने का अस्सीवां हिस्सा भाग और तत कहलाता है ॥ २९३ ॥ दशांश से हीन उसका अग्र होता है अब यहां से आगे स्तम्भों का प्रमाण कहते हैं, यथाः—चार कोने वाले स्तम्भ को रुचक और ८ कोन वाले स्तम्भ को बज्र कहते हैं ॥ २९४ ॥

द्विवज्रःषोडशास्त्रिःस्याद्द्विगुणास्त्रिःप्रलीनकः ॥ समंत वृत्तो वृत्ताख्यः स्तंभः प्रोक्तोद्विजोत्तमैः ॥ १९५ ॥ विभज्य नवधास्तंभं कुर्यादुद्वहनंघटं ॥ पद्मंच सोत्तरोष्टंच कुर्य्या द्वावोनभागतः ॥ २९६ ॥ स्तंभसमंबाहुल्यंभारतुलाना मुपर्य्युपरियासां ॥ भवतितुलायतुलाना मूनंपादेनपादेन ॥ २९७ ॥ अप्रतिषिद्धालिंदं समंततोवास्तुसर्वतो भद्रम् ॥ नृपविबुधसमूहानां कार्यद्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ २९८ ॥

इसी तरह सोलह कोन वाला द्विवज्र और बत्तीस कोन वाला प्रलीनक कहलाता है और गोल स्तम्भको वृत्त कहते हैं ॥ २९५ ॥ स्तम्भ के नौ भेद करके उद्वहन घटको बनवाना चाहिये और पद्म तथा उत्तरोष्ठको भी भाग से ऊन भाव में बनवाना चाहिये काष्ठको पद्म उत्तरौष्ठ कहते हैं ॥ २९६ ॥ भारकी तुलाके ऊपर ऊपर जिनकी स्तम्भके समान अधिकता होतीहै उनकी तुला एक पाद कम होती है ॥ २९७ ॥ अप्रतिषिद्धि अलिन्द के समान जो घर हैं वह सर्वतोभद्र अर्थात् सब प्रकारसे शुभदायी होता है राजद्वार और देवताओं के समूहों के घर में चार द्वार रखने चाहियें ॥ २९८ ॥

दोशालावाले घर ।

याम्यशालान्यसेदादौ द्वितीयापश्चिमेततः ॥ तृतीया चोत्तरेस्थाप्या चतुर्थीपूर्वपश्चिमा ॥ २९९ ॥ दक्षिणेदुर्मुखं कृत्वा पूर्वंचखरसंज्ञकं ॥ तद्धातारुयम्भवेद्गेहम्वातरोगपदं स्मृ

त्तम् ॥ ३०० ॥ दक्षिणेदुमुखञ्चेहम्पश्चिमे धान्यसंज्ञकं ॥ सिद्धार्थाख्यंद्विशालञ्च सर्वसिद्धिकरन्नृणां ॥ ३०१ ॥ पश्चिमेधान्यनामानमुत्तरेजयसंज्ञकं ॥ यमसूर्य्यन्द्विशाल न्त न्मृत्युदन्नाशदंस्मृतं ॥ ३०२ ॥

अब दोशाला घरोंका वर्णन करते हैं पहिली शाला दक्षिणमें, दूसरी पश्चिम में, तीसरी उत्तर में, चौथी पूर्व और पश्चिम के बीच में बनवानी चाहिये ॥ २९९ ॥ जिस घरकी दक्षिण दिशा में दुर्मुख चिन्हहो और पूर्व में खरका चिन्हहो वह घर बात नामक होता है उसमें रहने वाले बातरोग से पीडित रहते हैं ॥ ३०० ॥ जिस दुशाले घर के दक्षिण में दुमुख और पश्चिम में धान्य संज्ञकहो वह सिद्धार्थ नामका होता है और वह मनुष्यों को सब सिद्धियों का देनेवाला होता है ॥ ३०१ ॥ जो पश्चिम में धान्य नामक और उत्तर में जय नामक हो और जिसमें दोशाला हों उसे यमसूर्य कहते हैं वह मृत्युकारक तथा नाशकारक होता ॥ ३०२ ॥

पूर्वेतुखरनामानमुत्तरेधान्यसंज्ञकं । दण्डाख्यन्तद्विशालंस्याद्दण्डंकुर्य्यात्पुनःपुनः ॥३०३॥ दुर्मुखन्दक्षिणे कुर्य्यादुत्तरेजयसंज्ञकं ।वाताख्यं तद्विशालंतु बन्धुनाशं धनक्षयम् ।३०४। खरञ्चपूर्वेदिग्भागे पश्चिमे धान्य संज्ञकं ॥ गृहञ्चुल्कीद्विशालन्तत्पशुवृद्धि धनप्रदम् ॥ ३०५ ॥ विपक्षं दक्षिणेभागे पश्चिमे क्रूर संज्ञकं ॥ शोभनाख्यं द्विशालन्तद्धनधान्यकरंपरम् ॥ ३०६ ॥

जो पूर्वमें खरनामका हो और उत्तरमें धान्य नामकाहो वह दण्डनामका दुशाला घर होता है उसमें वार वार दण्ड होताहै ॥ ३०३ ॥ जो दक्षिण में दुमुख और उत्तर में जय संज्ञक होय वह बात नामका दुशाला घर होता हैउसमें बन्धु और धनका नाश होताहै ॥३०४॥ जो पूर्वदिशा में खर और पश्चिम में धान्य नामका हो ऐसे दोशाला घर को चुल्की कहते हैं उसमें पशुओं की वृद्धि और धनका लाभ होता है ॥ ३०५ ॥ जो घर दक्षिण में विपक्ष नामक और पश्चिममें क्रूरसंज्ञक हो और जिसमें दोशाला हों वह घर शोभन नामका होता है उसमें धन धान्यकी वृद्धि होती है ॥३०६॥

विजयन्दक्षिणे भागेविजयंचैवपश्चिमे ॥ द्विशालञ्चैवकुम्भाख्यंपुत्रदारादिसंयुतं ॥३०७॥ धनञ्चपूर्वदिग्भागेधान्यञ्चैवतुपश्चिमे ॥ नन्दाख्यन्तद्द्विशालञ्च धनदंशोभनंस्मृतं ॥ ३०८ ॥ विजयंसर्वदिग्भागे द्विशालाख्यन्तदेवहि ॥ शङ्खाख्यन्नामतद्गेहंशुभञ्चनृणांभवेत् ॥ ३०९ ॥ विपुलंसर्वदिग्भागेद्विशालन्तत्प्रजायते ॥ तानिसंपुटसंज्ञानि धनधान्यप्रदानिच ॥ ३१० ॥ धनदंसर्वदिग्भागेसुवक्रं वामनोरमं ॥ कांतं नाम तुतद्गेहंसर्वेषांशोभनंस्मृतम् ॥ ३११ ॥ द्विशालानान्तद्गृहाणांभेदाश्चैवत्रयोदश ॥ फलपाकार्थमेतेषाम्मयाप्रोक्तंसुविस्तरात् ॥ ३१२ ॥ पूर्वयाम्यमथयाम्यपश्चिमंपश्चिमोत्तरमथोत्तरपूर्वकं ॥ प्राक्प्रतीचीमथदक्षिणोत्तरंवास्तुषड्विधमिदं द्विशालकं ॥ ३१३

जो दक्षिण और पश्चिम भागमें विजय नामका हो और जिसमें दोशाला हों उस घरको कुंभ कहते हैं वह पुत्र और स्त्री आदि से भरा रहता है।३०७। जो पूर्व में धन और पश्चिम में धान्य नामका हो वह दोशाला घर नंद नामका होता है उसमें धनकी वृद्धि रहती है और शुभदायी भी होता है ॥ ३०८ ॥ जो सब दिशाओं में विजय नामका हो और जिसमें दो शाला हों वह शंक नामका होताहै तथा मनुष्योंको शुभ फलदायक होता है।३०९। जो सब दिशाओं में विपुल हो और जिसमें दो शाला हो वह संपुट नामक घर धनधान्य को देता है ॥ ३१० ॥ जो सब दिशाओं में धनद, सुवक्र वा मनोरम हो वह घर कांत नामका होता है और वह सब घरों में शोभन कहा है ॥ ३११ ॥ दो शाला वाले घरों के ये १३ भेद इन घरों के फल पाक के लिये विस्तार पूर्वक कहे गये हैं ॥ ३१२ ॥ पूर्व दक्षिण, दक्षिणपश्चिम, पश्चिम उत्तर, उत्तरपूर्व, प्राक्पश्चिम और दक्षिण उत्तर इन भेदों से दो शालाका वास्तु छः प्रकार का होता है ॥ ३१३ ॥

॥ तीनशालावाले घर ॥

अथत्रिशालानि ॥ उत्तरद्वारहीनंयत्त्रिशालन्धनधान्यदं॥ हिरण्यनाभनामानंराज्ञांसौख्यविवर्द्धनं ॥ ३१४ ॥ प्राग्द्वार

शालहीनन्तुसुक्षेत्रन्नामतद्गृहम् ॥ वृद्धिदंपुत्रपौत्राणान्धन धान्यसमृद्धिदम् ॥ ३१५ ॥ याम्यशालाविहीनन्तत्रिशालं चुल्लिसंज्ञकं ॥ विनाशनंधनस्यापिपुत्रपौत्रादिनाशनं ।३१६। प्रत्यक्शालाविहीनन्तुपक्षघ्नंनामतद्गृहं ॥ पुत्राणान्दोषदश्चै ववैरञ्चपुरवासिनां ॥ ३१७॥ चत्वारोमीमयाप्रोक्ताभेदाश्चै वचतुर्दश ॥ तस्माद्विचार्यकुर्वीतगृहकर्मणिकोविदः ।३१८।

अब तीन शाला वाले घरों का वास्तु कहते हैं, उत्तर के द्वार से रहित हो वहतीन शाला का घर हिरण्यनाभि नामका होता है वह धन धान्यको देता है और राजाओं के सुखकी वृद्धि करता है ॥ ३१४ ॥ जो पूर्व के द्वारकी शाला से हीन होता है वह सुक्षेत्र नामका होता है उसमें पुत्र पौत्रोंकी वृद्धि और धन धान्यकी समृद्धि होती है ॥ ३१५ ॥ दक्षिणकी शाला से हीन तीन शाला वाला घर चुल्ही कहाता है उसमें धन और पुत्र पौत्रादिका नाश होताहै ॥ ३१६ ॥ पश्चिम शाला से हीन घर पक्षघ्न होता है वह पुत्रों को दोष का दाता और पुरवासियों से बैर कराता है ॥ ३१७ ॥ इस तरह चार प्रकार के तीन शाला वाले घर और चौदह भेद वर्णन किये गये हैं इनका अच्छी तरह विचार कर गृह निर्माण कर्ताको घर बनाना चाहिये ॥ ३१८ ॥

॥ चारशाला वाले घर ॥

अथचतुःशालानि ॥ अलिन्दानांह्यवच्छेदोनास्तियत्रस मन्ततः ॥ तद्वास्तुसर्वतोभद्रंचतुर्द्वारसमन्वितम् ॥ एकग्रामे चतुःशालेदुर्भिक्षेराज्यविप्लवे ॥ ३१९ ॥ स्वामिनोनीयमाना यांप्रतिशुक्रन्नदुष्यति ॥ नृपाणांविबुधानाञ्चगृहंसौख्यप्रदा यके ॥३२०॥ प्रदक्षिणान्तगैः सर्वैःशालाभित्तिरलिन्दकैः॥ विनापरेणद्वारेण नन्द्यावर्तमितिस्मृतं ॥ ३२१ ॥ श्रेष्ठंसुता रोग्यकरंसर्वेषांशुद्धजन्मनां ॥ द्वारालिन्दोगतस्त्वेकोनेत्रयो र्दक्षिणागतः ॥ ३२२ ॥ विहायदक्षिणद्वारंवर्द्धमानमितिस्मृ तम् ॥शुभदंसर्ववर्णानांवृद्धिदंपुत्रपौत्रदम् ॥३२३॥ पश्चिमो त्तरतोलिन्दः प्रागन्तौद्वौतद्वास्थितौ ॥ अन्यस्तन्मध्यविधृतः

प्राग्द्वारंस्वस्तिकंशुभम् ॥ ३२४ ॥ प्राक्पश्चिमावलिन्दौया वंतगौतद्भवौपरौ॥ सौम्यद्वारांविनातुस्याद्रुचकाख्यन्तुतत्स्मृतम् ॥ ३२५ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेसमगृहादिनिर्म्माणेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अब चार शाला वाले घरोंका वर्णन करते हैं–जिस घर में चारों ओर अलिंदोंका स्थापन नहो और जिसमें चार द्वारहों उस वास्तुको सर्वतोभद्र कहते हैं और एक गांवमें, चार शालाके घरमें, दुर्भिक्षके समय, राज्यके उपद्रवमें ॥ ३१९ ॥ यदि पति अपनी स्त्रीको संग शुक्रास्तमें लेजाय तो सन्मुख शुक्रका दोष नहीं होता क्योंकि राजा और देवताओंका घर सुखदायी होताहै ॥ ३२० ॥ जिसकी प्रदक्षिणाके अन्तमें सबओर शाला, भींत और अलिंद हो और पश्चिमका द्वार न हो उस घरको नन्द्यावर्त कहते है ॥ ३२१ ॥ वह शुद्ध जन्मवाले पुरुषोंको श्रेष्ठ तथा सुख और आरोग्यका देनेवाला कहाहै और जिसकी दक्षिण दिशामें एक द्वारका अलिन्द नेत्रभाग में हो ॥ ३२२ ॥ और दक्षिणमें द्वार नहो उस घरको बर्द्धमान कहते है वह सब वर्णोंको शुभफलदायक वृद्धिकारक पुत्र पौत्रोंको देताहै ॥ ३२३ ॥ जिसके पश्चिम और उत्तर में अलिंदहो और पूर्वदिशातक दो आलिंद उठे हुएहो और उनके बीचमें अलिंदहो और पूर्वको जिसका द्वारहो उसघरको स्वस्तिक और सुखदायी कहतेहै ॥ ३२४ ॥ जिस घरमें पूर्व और पश्चिम में दो अलिंद हों और घरके अन्ततक दो अलिंदहो और उत्तरको जिसका द्वार नहो उस घरको रुचक नामका कहते है ॥ ३२५ ॥ ॥ इति वास्तुशास्त्रे समगृहादिनिर्माणे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ ग्रहनिर्माण का समय ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामिगृहकालविनिर्णयं ॥ यथाकालंशुभं ज्ञात्वातदाभवनमारभेत् ॥ ३२६ ॥ मृदुध्रुवस्वातिपुष्यधानिष्ठाद्वितयेरवौ मूलेपुनर्वसौसौम्यवारेप्रारंभणंशुभम् ॥३२७॥ आदित्यभौमवर्जन्तुवाराः सर्वेशुभावहाः॥ द्वितीयाचतृतीया च षष्ठीचपञ्चमीतथा ॥ ३२८ ॥ सप्तमीदशमीचैवद्वादश्येकादशीतथा ॥ त्रयोदशीपञ्चदशीतिथयस्युः शुभावहाः ३२९

इससे आगे घरबनाने के समयको कहते है जिसने अनुसार शुभ मुहूर्त देखकर घरबनानेका प्रारंभ करे ॥ ३२६ ॥ मृदु नक्षत्र अर्थात् मृगसिर रेवती चित्रा और अनुराधा ध्रुव नक्षत्र अर्थात् तीनों उत्तरा और रोहिणी स्वाती धनिष्ठा श्रवण मूल पुनर्वसु इनपर सूर्यहो और सौम्यवार होय तो घरका प्रारंभ करना अच्छा होताहै ॥ ३२७ ॥ रविबार और मंगलवार छोडकर सब बार शुभदायी होतेहै और द्वितीया, तृतीया, षष्ठी, पंचमी, ॥ ३२८ ॥ सप्तमी, दशमी, द्वादशी, एकादशी, त्रयोदशी, और पूर्णिमा ये तिथि शुभदायी कहीं है ॥ ३२९ ॥

॥ अशुभ तिथियों का वर्णन ॥

दारिद्र्यंप्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थीधनहारिणी ॥ अष्टम्युच्चाटनञ्चैवनवमीशस्त्रघातिनी ॥ ३३० ॥ दर्शेराजभयंभूतेसुतदाराविनाशनम् ॥

प्रतिपदा दरिद्र कोदेती है, चतुर्थी धनका नाशकरती है अष्टमी उच्चाटन करतीहै और नवमी शस्त्रोंसे घात कराती है ॥ ३३० ॥ अमावस्याको राज भय, चतुर्दशीको पुत्र और स्त्रीका नाश होताहै ॥

वर्जित योगादि ।

धनिष्ठा पञ्चकेनैव कुर्यात्स्तंभसमुच्छ्रयं ॥ ३३१ ॥ सूत्रधार शिलान्यासं प्रकारादि समालभेत् ॥ यामित्रं द्विविधम्वर्ज्यंवेधोपग्रहकर्तरि ॥ ३३२ ॥ एकार्गलन्तथालत्तायुतिकञ्च संज्ञकाः ॥ पातन्तु द्विविधम्वर्ज्य व्यतीपातश्च वैधृतिः ॥ ३३३ ॥ कुलिकण्टक कङ्कालं यमघण्टन्तथैवच ॥ जन्मतृतीय पञ्चाङ्ग तारावर्ज्यानि भानिच ३३४॥ कुयोगावनसंज्ञश्च तथा त्रिस्पृक्खलन्दिनं ॥ पापलग्नानि पापांशाः पापवर्गास्तथैवच॥३३५॥ कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ॥ विवाहादिषु येवर्ज्यास्तेवर्ज्या वास्तुकर्मणि ॥ ३३६ ॥

धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्रोंमें स्तंभका स्थापन न करे ॥ ३३१ ॥ और सूत्रधार, शिलाका स्थापन और प्रकार आदिको करले दोप्रकारका यामित्र

वेध उपग्रह और कर्तरी योग येभी वर्जने योग्यहैं ॥ ३३२ ॥ एकार्गल लत्ता युति और क्रकच योग दो प्रकारका पात वैधृति येभी वर्जितहैं ॥ ३३३ ॥ कुलिक कंटक काल और यमघंट और जन्मसे तीसरा पांचवां और छठा तारा और नक्षत्र वर्जितहैं ॥ ३३४ ॥ कुयोग और तीन तिथियोंका जिस में स्पर्शहो ऐसा दुष्टदिन पाप लग्न और पापका नवांश और पापग्रहोंका वर्गयेभी वर्जितहैं ॥ ३३५ ॥ तिथि बारके कुयोग और तिथि नक्षत्रके कुयोग और तिथि बारका कुयोग जो विबाह आदिमें वर्जितहैं वे वास्तुकर्ममें भी वर्जितहैं ॥ ३३६ ॥

वास्तुचक्रं प्रवक्ष्यामि यच्चव्यासेन भाषितम् ॥ यस्मिन्नृक्षेस्थितोभानुः तदादौ त्रीणिमस्तके ॥ ३३७ ॥ चतुष्कमग्रपादेस्यात्पुनश्चत्वारि पश्चिमे॥पृष्ठे च त्रीणिऋक्षाणिदक्षकुक्षौ चतुष्ककं ॥ पुच्छे चत्वारि ऋक्षाणि कुक्षौ चत्वारिवामतः ॥३३८॥ मुखेभत्रयमेवस्युरष्टा विंशतितारकाः ॥

अवमें व्यासोक्त वास्तुचक्रको कहताहूं— जिस नक्षत्र पर सूर्य होय उससे लेकर तीन नक्षत्र मस्तकपर रक्खै ॥ ३३७ ॥ चार नक्षत्र अग्रपाद और चार नक्षत्र पश्चिम पादमें और तीन नक्षत्र पीठपर और चार नक्षत्र दाहिनी कुक्षिमें और चार नक्षत्र पूंछपर और चार नक्षत्र वाम कूक्षिमें रक्खै ॥ ३३८ ॥ और तीन नक्षत्र मुखपर होतेहै इस प्रकार अट्ठाईस तारा होते है

ताराओं का फल ।

शिरस्ताराग्नि दाहायगृहोद्वासोग्रपादयोः ॥ ३३९ ॥ स्थैर्य्यं स्यात्पश्चिमे पादेपृष्ठेचैवं धनागमः ॥ कुक्षौस्याद्दक्षिणे लाभः पुच्छे च स्वामिनाशनं ॥ ३४० ॥ वामकुक्षौ च दारिद्र्यंमुख पीडानिरन्तरं ॥

शिरका तारा अग्निका दाह करताहै अग्रपादमें घरसे निकलना ॥ ३३९ ॥ पश्चिम पादके नक्षत्रों में स्थिरता, पीठके नक्षत्रों में धनका आगम, दक्षिण कुक्षिके नक्षत्र में लाभ, और पुच्छ के नक्षत्रों में स्वामी का नाश होता है ॥ ३४० ॥ वाम कुक्षिके नक्षत्र में दरिद्रता और मुखके नक्षत्रों में निरंतर पीडा होती है ॥

पुनर्वसौ नृपादीनां कर्तव्यं सूतिका गृहम् ॥ ३४१ ॥ श्रवणाभिजितोर्मध्ये प्रवेशन्तत्र कारयेत् ॥ चरलग्ने चरांशेच सर्वथा परिवर्जयेत् ॥ ३४२ ॥ जन्मभाच्चोपचयभेलग्नेवर्गे तथैवच ॥ प्रारंभणं प्रकुर्वीतनैधनं परिवर्जयेत् ॥ ३४३ ॥ पापैस्त्रिषष्ठायगतैः सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥ निर्माणङ्कारयेद्धीमान्नष्टमस्थैःखलैर्मृतिः ॥३४४॥ मनुष्यलग्ने सौम्यानां दृग्योगे योगतस्तथा ॥ कुंभम्विहायान्यतरे लग्नेसौम्यग्रहान्विते ॥ ३४५ ॥ जलाशयादिवास्तूनां प्रारंभः शुभदः स्मृतः ॥ ३४६ ॥

पुनर्वसु नक्षत्रों में राजा आदिके सूतिका गृहको बनवाना चाहिये ३४१ श्रवण और अभिजित नक्षत्रों में सूतिका गृह में प्रवेश करवावै और चर लग्न और चरलग्न के नवांश को सर्वथा छोड़दे ॥ ३४२ ॥ जन्म की राशि से उपचय की लग्न और उपचय की राशि में प्रारम्भ और जन्म लग्न से आठवें लग्न को छोड़दे ॥ ३४३ ॥ पापग्रह । ३ । ६ ११ । में सौम्य ग्रह केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) और त्रिकोण (९ । ५ ।) में हो ऐसे लग्न में घरको बनवाना चाहिये और अष्टम लग्न में पाप ग्रह हों तो मृत्यु होती है ॥ ३४४ ॥ मनुष्य लग्न में सौम्यग्रहोंकीदृष्टि का योग होय तो कुम्भ से भिन्न किसी सौम्यग्रह से युक्त लग्न में ॥ ३४५ ॥ जलाशय आदि वस्तुओं का प्रारम्भ शुभ फलदायक होता है ॥ ३४६ ॥

योगों का वर्णन ।

अथयोगाः॥गुरुर्लग्नेरविः षष्ठेद्यूनेसौम्ये सुखेसिते॥ तृतीयस्थेर्केपुत्रेच तद्गृहं शतमायुषं ॥३४७॥ भृगुर्लग्नेबरेसौम्ये लाभस्थाने च भास्करे ॥ गुरुः केन्द्रगतोयत्र शतवर्षाणि तिष्ठति ॥३४८॥ हिबुके ज्येंबरे चन्द्रे लाभेच कुजभास्करौ आरंभः क्रियते यस्यअशीत्यायुः क्रमाद्भवेत् ॥३४९॥लग्ने भृगौपुत्रगेज्ये षष्ठे भौमे तृतीयगे ॥ रवौयस्य गृहारंभे सच तिष्ठेच्छतद्वयम् ॥ ३५० ॥ लग्नस्थौगुरुशुक्रौचरिपुराशिगते

कुजे ॥ सूर्य्ये लाभगते यस्य द्विशताब्दानि तिष्ठति ।३५१। स्वोच्चस्थोवाभृगुर्लग्ने स्वोच्चे जीवे सुखस्थिते ॥ स्वोच्चेलाभगतेमन्दे सहस्राणां समास्थितिः ॥ ३५२ ॥ स्वोच्चेस्वभवने सौम्यैर्लग्नस्थैर्वापि केन्द्रगैः ॥ प्रारंभः क्रियते यस्य शतद्वयं सतिष्ठति ॥ ३५३ ॥

गुरु लग्न में हो, सूर्य छटे हो और सौम्य ग्रह सातवें हो शुक्र, चौथे हो, तीसरे शनैश्चर हो ऐसे लग्न में बनाया हुआ घर सौ वर्ष तक बना रहता है ॥ ३४७ ॥ शुक्र लग्न में हो और दसवें घर सौम्यग्रह हो सूर्य लाभस्थान में हो, गुरु केन्द्रमें हो, तो उस लग्नमें बनाया हुआ घर सौ वर्ष रहताहै ॥ ३४८ ॥ चौथे गुरु हो दसवें चन्द्रमा हो लाभमेंमंगल और सूर्य हो ऐसे लग्नमें जो घर बनाया जाय उसकी अवस्था ८० अस्सी वर्ष की होती है ॥ ३४९ ॥ लग्न मे शुक्र हो, पंचम गुरु हो छटेमंगल हो तीसरे सूर्य हो ऐसे लग्न में बनायाहुआ २०० वर्ष तक रहता है ॥ ३५० ॥ लग्न में गुरु शुक्र हों, मंगल छटा हो और सूर्य लाभ में हो ऐसे लग्न में बनाया हुआ घर २०० वर्ष तक रहता है ॥ ३५१ ॥ अपने उच्चका शुक्र लग्न में हो और अपने उच्चका बृहस्पति सुख स्थान में हो और अपने उच्चका सुर्य लाभ में हो ऐसे लग्न में बनाया हुआ घर हजार वर्षतक रहता है ॥ ३५२ ॥ अपने उच्चके वा अपने अपने गृहके वा लग्न में स्थित अथवा केंद्र में स्थित सौम्य ग्रह हो ऐसे लग्नमें बनाया हुआ घर दोसौ वर्षतक रहता है ॥ ३५३ ॥

कर्कलग्न गते चन्द्रे केन्द्र स्थानेच वाक्पति ॥ मित्रस्वोच्चस्थितैः खेटैर्लक्ष्मीस्तस्यचिरम्भवेत् ॥ ३५४ ॥ इज्योत्तरात्रया हीन्दु विष्णु धातृजलोडुषु ॥ वरुणसहितेष्वेषुकृतंगे हंश्रियायुतं ॥ ३५५ ॥ द्विदैवत्वाष्ट्रवारीशरुद्रादितिवसूडुषु ॥ शुक्रेणसहितेष्वेषुकृतन्धान्यप्रदंगृहम् ॥ ३५६ ॥ हस्तार्यमत्वाष्ट्रदस्रचानुराधोडुभेषुच ॥ बुधेनसहितेष्वेषुधनपुत्रसुखप्रदम् ॥ ३५७ ॥

कर्क लग्न में चन्द्रमा, केन्द्र में वृहस्पति,मित्र स्थान में अथवा अपने उच्च के स्थान में अन्य ग्रह हों तो उस घर में बहुत काल तक लक्ष्मी का निवास

रहता है ॥ ३५४ ॥ पुष्य नक्षत्र, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद और उत्तरा फाल्गुन, श्लेषा, मृगाशिर, श्रवण, रोहिणी, जलके नक्षत्र, और शतभिषा इन नक्षत्रों में जो घर बनाया जाता है वह लक्ष्मी से युक्त रहता है ।।३५५।। बिशाखा, चित्रा,शतभिषा, आर्द्रा, पुनर्वसु, धनिष्ठा इन में से किसी नक्षत्र से युक्त शुक्रवार में जो घर बनाया जाता है वह सदैव अन्न से युक्त रहता है ।। १५६ ।। हस्त, मघा, चित्रा, अश्विनी और अनुराधा इन में से किसी नक्षत्र से युक्त बुधवार के दिन जो घर बनाया जाता है वह धन पुत्र और सुख से परिपूर्ण रहता है ॥ १५७ ॥

शत्रुक्षेत्रगतैः खेटैर्नीचस्थैर्वापराजितैः ॥ प्रारम्भेयस्यभवने लक्ष्मीस्तस्याविनश्यति ॥ ३५८ ॥ एकोपिपरभागस्थोदश मेसप्तमेपिवा । वर्णाधिपेबलैर्हीनेतद्गृहम्परहस्तगम् ।।३५९।। पापान्तरगतेलग्नेनचसौम्ययुतेक्षिते ॥ अष्टमस्थेऽर्कपुत्रेचअशी- त्यब्दाद्विहन्यते ॥ ३६० ॥ मन्देलग्नगतेचैवकुजेसप्तमसं- स्थिते ॥ शुभैरवीक्षितेवापिशतवर्षाणिहन्यते ॥ ३६१ ॥ लग्नगेशशिनिक्षीणेमृत्युस्थानेचभूसुते ॥ प्रारम्भः क्रियतेय- स्यशीघ्रन्तद्धिविनश्यति ॥ ३६२ ॥ दशापतौबलैर्हीनेवर्ण नाथेतथैवच ॥ पीडितर्क्षगतेसूर्येनविदध्यात्कदाचन।३६३। पितृमूलेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषुचयत्कृतं ॥ ३६४ ॥ कुजेनस हितेष्वेषुगृहंसन्दह्यतेग्निना ॥ ३६५ ॥ मूलञ्चेरवतीचैवकृति काषाढमेवच ॥ पूर्वाफाल्गुनिहस्तेचमघाचैवतुसप्तकं।३६६। एषुभौमेनयुक्तेषुवारेतस्यैववेश्मयत् ॥ अग्निनादह्यतेकृत्स्नं पुत्रनाशः प्रजायते ॥ ३६७ ॥

शत्रु भवन अर्थात् छठे घर में नीच के वा पराजित गृह पड़े हों ऐसे लग्नमें जिस घर के बनाने का आरंभ होता है उस में लक्ष्मी का नाश होता है ॥ ३५८ ॥ जिस लग्न में एक भी ग्रह परभाग में स्थित हो अथवा दसवें वा सातवें भवन में हो और वर्णाधिप बलहीन हो तो वह घर पराये हाथ में चला जाता है ।। ३५९ ।। जो लग्न पापग्रहों के अन्तर्गत हो और सौम्य

गृहों से युक्त और दृष्ट न हो और आठवें स्थान में शनैश्चर हो तो वह घर अस्सी वर्ष के भीतर गिर जाता है ॥ ३६० ॥ जो लग्न में शनैश्चर पड़ा हो और सातवें घर में मंगल पड़ा हो और लग्न में शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो ऐसे लग्न में प्रारंभ किया हुआ घर सौ वर्ष में नष्ट हो जाता है।३६१। जिस लग्न में चन्द्रमा क्षीण हो और मंगल अष्टम भवन में हो ऐसे समय में जिस घर के बनाने का प्रारंभ किया जाता है वह बहुत ही जल्द नष्ट हो जाता है ॥ ३६२ ॥ जो दशा का पति और वर्ण का स्वामी बलहीन हो तथा सूर्य पीडित नक्षत्र पर हो ऐसे लग्न में घर बनाने का प्रारंभ करना सर्वथा निषिद्ध है ॥ ३६३ ॥ मघा, मूल, पुष्य, पूर्वा फाल्गुन और रेवती तथा मंगल भी इन में युक्त हो तो ऐसे लग्न में प्रारंभ किया हुआ घर अग्नि से जल जाता है ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ मूल, रेवती, कृत्तिका, पूर्वाषाढ, पूर्वा-फाल्गुन हस्त और सातवां मघा इन नक्षत्रों से युक्त मंगल हो और मंगल ही बार हो तो ऐसे समय में प्रारंभ किया हुआ घर सब का सब अग्नि से जल जाता है और उस में पुत्रका नाश भी हो जाता है ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥

अग्निनक्षत्रगेसूर्य्येचन्द्रेवातत्रसंस्थिते ॥ निर्मितम्मन्दिरन्नूनमग्निनादह्यतेचिरात् ॥ ३६८ ॥ ज्येष्ठानुराधकेचैवभरणीस्वातिपूर्वभे ॥ धनिष्ठास्वपिऋक्षेषुशनिरितष्ठेद्दिनस्यच ॥ ३६९ ॥ कृपणोनामतः प्रोक्तोधनधान्यादिकेगृहे ॥ पुत्रेजातेथवातस्मिनगृह्यतेयक्षराक्षसैः ॥ ३७० ॥

अश्विनी नक्षत्र में जब सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति हो तब प्रारंभ किया हुआ घर बहुत ही शीघ्र अग्नि से जल जाता है ॥ ३६८ ॥ ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुन, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ और धनिष्ठा इन नक्षत्रों से युक्त शनैश्चर के दिन प्रारंभ किया हुआ घर ॥ ३६९ ॥ कृपण संज्ञक होता है ऐसे धनधान्य से युक्त घर में उत्पन्न हुए पुत्र को यक्ष और राक्षस ग्रस लेते है ॥ ३७० ॥

प्रासादेष्वेवमेवंस्याद्वापीकूपेषुचैवहि ॥ तस्माद्विचार्यकुर्वीतगृहारंभंशुभेप्सुना ॥ ३७१ ॥ नाशन्दिशंतिमकरालिकुलीरलग्नेमेषेघटेधनुषिकर्मसुदीर्घसूत्रम्॥कन्यारुषेमिथुनगेध्रुव

मर्थलाभंज्योतिर्विदः कलशसिंहवृषेषुसिद्धिं ॥ ३७२ ॥मध्या न्हेतुकृतम्वास्तुकर्त्तुर्वित्तविनाशनं ॥ महानिशास्वपितथास न्ध्ययोर्नैवकारयेत् ॥ ३७३ ॥

महल तथा वापी कूप आदि के बनाने में भी यही फल होता है इस लिये शुभ फल की कामना करने वाले को बिचार पूर्वकघर का प्रारंभ करना चाहिये ॥ ३७१ ॥

मकर वृश्चिक, और कर्क लग्न में घर बनाने से नाश होता है मेष, तुल, धन लग्न में बनाया जाय तो काम करने में दीर्घसूत्रता होती है कन्या, मीन, मिथुन में निश्चय ही अर्थ लाभ और कुंभ, सिंह और वृष में सिद्धि होती है ज्योतिर्विदों का मत है ॥३७२॥ मध्यान्ह में किया हुआ वास्तु बनाने वालों के धन को नाश कर देता है अर्द्धरात्रि में भी वैसा ही फल है और दोनों संधियों में घर बनाना कभी आरंभ न करै ॥ ३७१ ॥

॥ भावोंके फलोंका वर्णन ॥

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यातकोशहानिश्च शीतगौ ॥ मृत्युर्वि श्वम्भरापुत्रे दारिद्यं रविनन्दने ॥ ३७४ ॥

जीवे धर्मार्थकामाः स्युः पुत्रोत्पत्तिश्चभार्गवे ॥ चन्द्रजे कुशलाशक्तिर्यावदायुः प्रवर्तते ॥ ३७५ ॥ द्वितीयस्थेरवौहा निश्चन्द्रेशत्रुक्षयंभवेत् ॥ भूमिजेबन्धनम्प्रोक्तंनानाविघ्नानि भानुजे ॥ ३७६ ॥ बुधेद्रविणसंपत्तिर्गुरौधर्माभिवर्द्धनं ॥ यथाकामविनोदेनभृगौकामव्रजेत्फलम् ॥ ३७७ ॥ तृतीय स्थेषुपापेषुसौम्येष्वेवाविशेषतः ॥ सिद्धिः स्यादाचिरादेवयथा भिलषितंप्रति ॥ ३७८ ॥

लग्नमें सूर्य हो तो वज्रपात, चंद्रमा हो तो कोशकी हानि, मंगल हो तो मृत्यु, शनैश्चर हो तो दरिद्र होता है ॥ ३७४ ॥ वृहस्पति हो तो धर्म अर्थ काम, शुक्र हो तो पुत्रों की उत्पत्ति, बुध हो तो जन्मभर अच्छे कर्मों में प्रवृत्ति होती है ॥ ३७५ ॥ दूसरे स्थान में सूर्य हो तो हानि, चंद्रमा हो तो शत्रुओं का नाश, मंगल हो तो बन्धन और शनैश्चर हो तो अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं ॥ ३ ॥ बुध हो तो धन सम्पत्ति की वृद्धि वृहस्पति

हो तो धर्म की वृद्धि और शुक्र हो तो इच्छा पूर्वक फलों की सिद्धि होती हैं ॥ ३७७ ॥ तीसरे स्थानमें पापग्रह हों और विशेषकर सौम्यग्रह हों तो अल्पकाल में ही मनोवांछित सिद्धि होती है ॥ ३७८ ॥

चतुर्थस्थानगेजीवेपूजासंपद्यतेनृपात् ॥ चन्द्रजेचार्थलाभ स्याद्भूमिलाभश्चभार्गवे ॥ ३७९ ॥ वियोगः सुहृदांभानौम न्त्रभेदोमहीसुते ॥ बुद्धिनाशो निशानाथे सर्वनाशोर्कनन्द ने ॥ ३८० ॥ पंचमेतु सुराचार्ये मित्रंवसुधनागमः ॥ शुक्रे पुत्रसुखा वाप्ती रत्नलाभस्तथेन्दुजे ॥ ३८१ ॥ सुतदुःखं सहस्रांशौ शशांके कलहःस्मृतः ॥ भौमेकार्य विरोधःस्या त्सौरेबन्धुविमर्दनं ॥ ३८२ ॥

चौथ स्थानमें बृहस्पति हो तो राज्य में मान मिलता है बुध हो तो धन का लाभ और शुक्र हो तो भूमि का लाभ होता है ॥ ३७९ ॥ सूर्य हो तो मित्र का वियोग, मंगल हो तो गुप्त बात प्रकट होजाती है चन्द्रमा हो तो बुद्धि का नाश और शनैश्चर हो तो सर्वस्व नाश होता है ॥३८०॥ पंचम स्थानमें बृहस्पति हो तो मित्र और अन्न धन का आगमन होता है शुक्र हो तो पुत्र और सुख की प्राप्ति होती है बुध हो तो रत्नों का लाभ होता है ॥ ३८१ ॥ सूर्य हो तो पुत्रों का दुःख चन्द्रमा हो तो कलहमंगल, हो तो कार्य का वि- रोध, शनैश्चर होय तो भाइयों में लड़ाई होती है ॥ ३८२ ॥

षष्ठस्थानगतेसूर्ये रोगनाशं विनिर्दिशेत ॥ चन्द्रेपुष्टिः कुजेप्राप्तिः सौरेशत्रुबलक्षयः ॥ ३८३ ॥ गुरौमन्त्रोदयःप्रो क्तो भृगौ विद्यागमोभवेत ॥ सम्यग्ज्ञानार्थकौशल्यन्नक्षत्र पतिनन्दने ॥ ३८४ ॥ सप्तमस्थानगेजीवे बुधेदैत्यपुरोहि ते ॥ गजवाजिधरित्रीणांक्रमाल्लाभंविनिर्दिशेत ॥३८५॥ भास्करेकीर्तिभंगस्या त्कुजेविपदमादिशेत् ॥ हिमगौक्लेशआ यासः पतंगव्यंगताभयम् ॥ ३८६ ॥

छटे स्थान में सूर्य हो तो रोगनाश, चंद्रमा हो तो पुष्टि, मंगल हो तो प्राप्ति, शनैश्चर हो शत्रुओं के बलका नाश होता है ॥ ३८३ ॥ बृहस्पति हो तो मंत्रका उदय, शुक्र हो तो विद्याका आगम और बुध हो तो सुंदर

ज्ञान और अर्थ में कुशलता होती है ॥ ३८४ ॥ सातवें स्थान में वृहस्पति बुध और शुक्र हो तो क्रमसे हाथी घोडा, और पृथिवी का लाभ होता है सूर्य हो तो कीर्तिका नाश, मंगल हो तो विपत्ति होती है, चंद्रमा हो तो क्लेश और परिश्रम, तथा सूर्य हो तो शरीर के किसी अवयवका नाश और भय होता है ॥३८६ ॥

नैधनेच सहस्रांशौ विद्विषोजनितापदः ॥ हानिःशीतमयूखेच भौमेसौरेच रुग्भयं ॥ ३८७ ॥ बुधेमान धनप्राप्ति र्जीवेचाविजयो भवेत ॥ शुक्रेस्वजनभेदःस्या न्मंत्रज्ञस्यापिदेहिनः ॥ ३८८ ॥ वागीशेनवमस्थाने विद्या भोगादिनन्दनं ॥ बुधे विविधभोगानि जीवेच विजयोभवेत् ॥ ३८९॥ चन्द्रेधातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्चभास्करे ॥ कुजेचार्थक्षयो विद्या द्रविजे धर्मदूषणं ॥ ३९० ॥

अष्टमस्थान में सूर्य होतो वैरियोंसे दुःख होता है चंद्रमा होतो हानिमंगल और शनि होतो रोगका भय होताहै ॥ ३८७ ॥ बुध होतो मान और धनकी प्राप्ति, गुरु होतो विजय, शुक्र होतो मंत्रज्ञ मनुष्य को भी स्वजनों से भेद होताहै ॥ ३८८ ॥ नवमस्थानमें गुरु होतो विद्या भोग आदिकी प्राप्ति बुध होतो अनेक प्रकारके भोग और शुक्र होतो विजय होती है ॥ ३८९ ॥ चंद्रमा होतो धातुनाश, सूर्य होतो धर्महानि, मंगल होतो धनका नाश, शनैश्चर होतो धर्ममें दोष आता है ॥ ३९० ॥

दशमस्थानगेशुक्रे शयनासनसिद्धयः ॥ सुराचार्ये महत्सौख्यम्विजयंस्त्रीधनंबुधे ॥ ३९१ ॥ मार्तण्डेबसुहृद्दृष्टिश्चन्द्रेशोकाबिवर्द्धनं ॥ भौमेरत्नागमः प्रोक्तः कोणेकीर्त्तिविलोपनं ॥ ३९२ ॥ लाभस्थानेषु सर्वेषु लाभस्थानं विनिर्दिशेत् ॥ व्ययस्थानेषु सर्वेषु विनिर्दिश्योव्ययःसदा ॥ ३९३ ॥ स्वोच्चेपूर्णफलः प्रोक्तः पादोनंस्वर्क्षगोग्रहः ॥ स्वत्रिकोणेर्द्धफलदः पादंमित्रगृहाश्रितः ॥ ३९४ ॥ समर्क्षेरिपुराशौच

समकष्टफलौग्रहौ ॥ नीचस्थो निष्फलःप्रोक्तो वर्गस्थःफल दःशुभः ॥ ३९५ ॥ इति वास्तुशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः॥

दशम स्थानमें शुक्र होतो शयनासनकी सिद्धि, बृहस्पति होतो अत्यन्त सुख, बुध होतो विजय और स्त्री तथा धनकी वृद्धि होतीहै ॥ ३९१ ॥ सूर्य होतो मित्रोंकी वृद्धि, चंद्रमा होतो शोककी वृद्धि, मंगल होतो रत्नोंकी प्राप्ति और शनि होतो कीर्तिका नाश होताहै ॥ ३९२ ॥ लाभ अर्थात् ग्यारहवें स्थानमें संपूर्ण ग्रह होंतो लाभ और व्यय अर्थात् बारहवें स्थानमें संपूर्ण ग्रह होंतो सदाव्यय का सूचक है ॥ ३९३ ॥ अपने उच्चका ग्रह होतो पूर्ण फल होताहै अपनी राशिका ग्रह होतो पादोन कहाहै अपने त्रिकोणका होतो चौथाई फल देताहै ॥ ३९४ ॥

समराशि वा रिपुकी राशिके ग्रह हों तो समता और कष्ट फलको देते हैं. नीचराशिमेंस्थित ग्रह निष्फल कहे गये हैं और वर्गका हो तो श्रेष्ठफल का देनवाला कहाहै ॥ ३४५ ॥ इतिश्रीवास्तुशास्त्रे भाषाटीका सहिते तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्द्दशविधाः प्रोक्ताः गृहाश्चोत्तम मध्यमाः ॥ निन्दिताश्च प्रमाणंच कथयामिसमासतः ॥ ३९६ ॥ गृहन्तद्द्विविधं प्रोक्तं शरीरन्तुपृथग्विधं ॥ शरीरन्तुगृहन्नाम शय्याशयन चक्रके ॥ ३९७ ॥ शय्यामानं स्वदेहेन समंकार्यं सुखेप्सुना ॥ एकाशीत्यंगुलाशय्यानवत्यंगुलसम्मिता ॥ ३९८ ॥ तदर्द्धेनचविस्तीर्णा पादुकावुद्यतांगुलौ ॥ आसनन्तुप्रकर्त्तव्यं शय्याविस्तारमानकम् ॥ ३९९ ॥ विस्तारंपादहीनन्तुत द्विस्तारंप्रकल्पयेत् ॥ उपानहौ प्रकर्त्तव्यौ स्वपादप्रमितौ तथा ॥ ४०० ॥

उत्तम मध्यम और निंदितभेदसे तीन प्रकार के ग्रह चौदह तरह के होते हैं, उनका प्रमाण संक्षेप से कहाजाता है ॥३९६॥ वह ग्रह दो प्रकारके कहे हैं और शरीर भिन्न २ प्रकारको होता है गृह नाम और शरीरका होताहै और शयनके चक्रमें शय्याको गृह कहतेहैं ॥ ३९७ ॥ सुख चाहिने वाले मनुष्य को उचित्त है कि शय्या अपने देह के प्रमाण के समान बनावै

इक्यासी अंगुल की या नव्वह अंगुलके प्रमाण की शय्या होतीहै ॥ ३९८ ॥ और उसकी आधी उसकी चौड़ाई होती है और उसके पाये आधे अंगुल ऊँचे होतेहैं और शय्या की चौड़ाई के समानही आसन बनवाना चाहिये ॥ ३९९ ॥ और शय्या की चौड़ाई से पौन आसन की चौड़ाई बनवावै और चरणों के समान जूते बनवावै ॥ ४०० ॥

पादुकेन तथाकार्यं अन्यथा दुःखशोकदौ ॥ अष्टांगुलेन मानेन शय्यामानं प्रकल्पयेत् ॥ ४०१ ॥ अथवाह्यपरा प्रोक्तानृपाणाङ्काम्यमिच्छतां ।४०२। शतांगुलानृपाणान्तुमहती परिकीर्तिता ॥ ४०३ ॥ कुमाराणान्तुनवतिः साषड्नात्रुमंत्रिणां ॥ साद्वादशोना वलयपर्यंकोपरिकल्पिता ॥४०४॥

और खडाम भी चरणों के समानहीं बनवावै छोटी बडी बनवाने से कष्ठ और शोक होता है आठ अंगुल के मान से शय्या का प्रमाण होता है ॥ ४०१ ॥ अथवा सौन्दर्य को चाहने वाले राजाओं की शय्या और प्रकार की भी होती है ॥ ४०२ ॥ राजाओं की महती शय्या सौ अंगुल की होती है ॥ ४०३ ॥ राजकुमारों की शय्या नव्वह अंगुल की और मंत्रियों की शय्या चौरासी अंगुल की होती है उस से बारह अंगुल कम पर्यंक के ऊपर का वलय होता है ॥ ४०४ ॥

पुरोहितानाञ्च तथाहीना घृत्यंगुलैस्ततः (अर्द्धन्ततोष्टांशहीन) विष्टंभः परिकीर्त्तितः ॥ ४०५ ॥ आयामास्त्र्यंशमानन्तु पादोच्छ्रायन्तु निर्दिशेत् ॥ सर्वेषाञ्चैववर्णानामेकाशीतिमितास्मृता ॥ ४०६ ॥ सामंतानान्तुनवतिःसैकाशीतिमितातथा ॥ स्वदेहान्नातिर्दीर्घासानविस्तारा तथैवच ॥४०७॥ हीनारोगप्रदादीर्घादुःखदासुखदासमा ॥ पाषाणैर्निर्मितंयत्तुतद्गृहम्मन्दिरं स्मृतं ॥ ४०८ ॥

अथवा २८ अंगुल कम पुरोहितोंकी शय्या होतीहै उससे आधा और ८ अंश कम विष्टंभ कहा है ॥ ४०५ ॥ और तीस अंगुल की चौडाई और एक पादभर ऊँचाई कही है सम्पूर्ण वर्णों की शय्या ८१ अंगुल की कही गई है ॥ ४०६ ॥ और सामन्तों की शय्या ९० वा ८१ अंगुल की कही

और वह शय्या अपने देह से न लम्बी होती है और न चोड़ी होती है। ४०७। अपने शरीर से छोटी शय्या रोगकारक होती है और शरीर से लम्बी दुःख दायी और समान् शय्या सुखदायक होती है. पत्थरों से बनाये हुए घरः को मंदिर कहते हैं ॥ ४०८ ॥

पक्केष्टकैर्वास्तुनामभवनंहितमुत्तमम् ॥ अनिष्टकैः सुम-न्तुसुधारङ्कर्दमेनतु ॥ ४०९ ॥ मानस्यंवर्द्धितंकाष्ठैर्वेत्रैश्च-चन्दनंस्मृतं ॥ वस्त्रैश्चविजयंप्रोक्तंराज्ञांशिल्पिविकल्पितं ॥ ॥ ४१० ॥ कालमेतिचविज्ञेयमष्टमंतृणजातिभिः ॥ उत्तमा निचचत्वारिगृहाणिगृहमेधिनां ॥ ४११ ॥ सौवर्णराजतंता म्रमायसंचप्रकीर्त्तितं ॥ सौवर्णन्तुकरन्नामराजतंश्रीभवन्त-था ॥ ४१२ ॥

और पक्की ईंटों से बनाये हुए घर को भवन कहते हैं यह घर हितकारक और उत्तम होता है और कच्ची ईंटों से जो बना हो उसे सुमन और कीच वा गारे से बना हो उसे सुधार कहते हैं ॥ ४०९ ॥ काठ से जो घर बनाया हो उसको मानस्य और बेंतों के घर को चन्दन कहते हैं और कारीगरों से बनाया हुआ कपड़ा का घर विजय कहलाता है ॥ ४१० ॥ और जो आठवां घर तृणकी जातियों से बनाया जाता है उसे कालिमा कहते हैं और गृहस्थियों के चार स्थान हैं ॥ ११ ॥ जो सुवर्ण चांदी तांबे और लोहे से बनाये जाते हैं वे उत्तम होते हैं सुवर्ण के बने हुए को कर, और चांदी से बने हुए को श्रीभव कहते हैं, ॥ ४१२ ॥

ताम्रेणसूर्यमन्त्रन्तुचण्डनामतथायसम् ॥ देवदानवगंधर्व यक्षराक्षसपन्नगाः॥ ४१३ ॥ द्वादशैतप्रकारास्तुगृहाणांनिय-ताःस्मृताः ॥ जातुषंत्वानिलंनामप्रायुर्ववारिबन्धकम् । ४१४ । एवंसर्वासुजातीषुगृहाणिचचतुर्दश ॥ चत्वारश्चोत्तमायेचते-गृहावर्णपूर्वकाः ॥ ४१५ ॥ शुभदाब्राह्मणादीनांसर्वेषाम-पिशोभनाः ॥ उतमाः शुद्धकालेषुस्थाप्याःशुद्धाविधानतः१६

तांबे से बने हुए को सूर्यमंत्र और लोहे से बने हुए को चण्ड कहते हैं और देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस और पन्नग ॥ ४१३ ॥ ये घरों के पूर्वोक्त

बारह भेद कहे हैं । लाख के घर को आनिल और जिसके चारों ओरजल हो उसको प्राप्त कहते हैं ॥ ४१४ ॥ इस प्रकार सम्पूर्ण जातियों में १४ प्रकार के घर होते हैं चार जो पूर्वोक्त उत्तम घर हैं वे ब्राह्मण आदि वर्णों के क्रम से होते हैं ॥ ४१५ ॥ ब्राह्मण आदि का शुभ फलदायक होते हैं और सब वर्णों के लिये भी उत्तम घरों को शुभ काल में और शुद्ध विधि से प्रारम्भ करना उचित है ॥ ४१६ ॥

काष्ठादिकृतगेहेषुकालापेक्षांनकारयेत् ॥ तृणदारुगृहारंभेविकल्पंनैवकारयेत् ॥ ४१७ ॥ सौवर्णादिगृहारंभेमासदोषोनविद्यते ॥ पञ्चाङ्गशुद्धकालेतुनचैत्रसिंहपौषके ॥४१८॥ प्रवेशनञ्चकर्तव्यंमहोत्सवदिनेतथा ॥ पक्वेष्टकानिर्मितेतुशिल्पमानम्प्रवक्ष्यते ॥ ४१९ ॥ काष्ठादिनिर्मितेगेहेस्तंभमानंप्रचक्षते ॥ सौवर्णादिकेहस्तमानंजातुपाद्येनकिञ्चन ।४२०।

काष्ठादिसे बनाये हुए घरोंमें कालकी अपेक्षा नकरै तृण और काष्ठ के गृहारंभमें भी कदाचित् विकल्प नकरै ॥ ४१७ ॥ सुवर्णआदि के गृहारंभमें मासका दोष नहीं होता तथा पंचांगके शुद्ध कालमें प्रारंभ करना चाहिये चैत्र भाद्रपद और पौष इनमें प्रवेश न करै ॥ ४१८ ॥ और किसी बड़े उत्सवके दिन प्रवेश करै और पक्की ईंटोंसे बनाये हुए घरमें शिल्पके मानको कहतेहैं ॥ ४१९ ॥ काष्ठ आदिसे बनाये हुए घरमें स्तंभके मानको कहते हैं. सुवर्ण आदिके घर में हस्त प्रमाणको कहतेहैं और लाख आदिसे बनाये घरमें किंचित्‌भी मानको नहीं कहते ॥ ४२० ॥

पादुकोपानहौकार्यौअंगुलस्यप्रमाणतः ॥ मञ्चादिकञ्चासनञ्चअंगुलेनैवकारयेत् ॥४२१॥ प्रतिमापीठिकाचापिलिङ्गंवास्तम्भमेववा ॥गवाक्षाणांप्रमाणञ्चशिलामानन्तथैवच॥२२। खड्गचर्मायुधादीनांप्रमाणञ्चांगुलानिच ॥ विषमाः शुभदाः पुंसांसमाःसौख्यविनाशकाः ॥ ४२३ ॥

पादुका, उपानह, मंच और आसन आदि अंगुलके मानसे बनवाने चाहिये ॥ ४२१ ॥ प्रतिमा, पीठिका, लिंग और स्तंभ, गवाक्षोंका प्रमाण और शिलाका मान ॥ ४२२ ॥ खड्ग और चर्म और आयुध इनका प्रमाण अं-

गुलोंसेही होता है । विषम अंगुल और पुरुषोंको सुखदायक और सम अंगुल पुरुषों के सुखनाशक होतेहैं ॥ ४२३ ॥

अंगुलस्यप्रमाणन्तुकथयामिसमासतः ॥ नवाष्टसप्तषट्पूर्वाअंगुलाः परिकीर्तिताः ॥ ४२४ ॥ त्रिविधस्यापिहस्तस्य प्रत्येकङ्कर्मदर्शितम् ॥ ग्रामखेटपुरादीनांविभागोयमविस्तरात् ॥ ४२५ ॥ परिखाद्वाररथ्यश्चस्तम्भाः प्रासादवेश्मनाम् ॥ तेषान्निर्गममार्गेचसीमान्तेत्रांतराणिच ॥ ४२६ ॥ दिशान्तर विभागाश्चवस्त्रायोधनयोस्तथा ॥ अध्वनः परिमाणंचक्रोश-गव्यूतियोजनैः ॥ ४२७ ॥

अब संक्षेपसे अंगुलोंके प्रमाणका वर्णन करताहूं नौ, आठ, सात छः ये हैं पूर्व जिनके ऐसे अंगुल कहे हैं ॥ ४२४ ॥ तीन प्रकारके भी हाथका प्रत्येक कर्म दिखायाहै ग्राम खेट पुर आदिकोंका यह विभाग विना विस्तारसे हैं ॥ ४२५ ॥ महलोंके चारों ओर की खाई, द्वार, रथ्या (गली) और स्तम्भ और उनके निकलनेकी मार्गमें और सीमाके अन्तमें अन्तर ॥ ४२६ ॥ और दिशान्तरोंका विभाग, वस्त्र और आयोधनका विभाग, मार्गका परिमाण कोश, गव्यूति और योजनोंसे होताहै ॥ ४१७ ॥

खातचक्रकराशीचप्रासादायनमापनम् ॥ नवयावांगुलैर्हस्तेतस्यमानंप्रचक्षते ॥ ४२८ ॥ आयोधनानिचर्माणितथा-चंडायुधानिच ॥वापीकूपप्रमाणानितथाचगजवाजिनाम् २९ इक्षुयंत्रारघण्टाश्चहलयूपयुगध्वजाम् ॥ अतोयानिचनावश्च-शिल्पिनांवाप्युपस्करम् ॥ ४३० ॥

खात क्रकच इनकी राशि प्रासादका आंगन और आयत इनको नौ जिसमें यव हों ऐसे अंगुलके हाथ से नापकर बनवावै ॥ ४२८ ॥ आयोधन, चर्म और चंडायुध वापी कूप और हाथी और घोडोंका प्रमाण ॥ ४२९ ॥ इक्षुयन्त्र (कोल्हू) आरघण्ट, हलयूप, युग, ध्वजा और जिनमें जल नहो ऐसी नाव और कारीगरी के बनाये हुए समान ॥ ४६० ॥

पादुकेत्वदर्शीछत्रंधर्मोद्यानानिचैवहि ॥ मात्राष्टयवहस्ते-

ननचदंडांश्चमापयेत् ॥ ४३१ ॥ जालन्धरेहस्तसंख्यावेधेच-
दंडकास्तथा ॥ मध्यदेशक्रोशसंख्याद्वीपान्तरेतुयोजनम् ३२
चतुर्विंशत्यंगुलैस्तुहस्तमानंप्रचक्षते ॥ चतुर्हस्तोभवेद्दण्डाः
क्रोशस्तद्द्विसहस्रकम् ॥ ४३३ ॥ चतुष्क्रोशंयोजनंतुवंशोद्द-
शकरैर्मितः ॥ निवर्त्तनंविंशतिकरैः क्षेत्रंतच्चचतुष्करैः ४३४
शतवेश्मानिदेशाश्चगृहादीनान्निवर्त्तनम् ॥ एकाशीतिपदेनै-
वसर्वस्थानंचमापयेत् ॥ ४३५ ॥

पादुक, वदशी, छत्र, धर्मके उद्यान इनका प्रमाण आठ जौंके हाथ से करै और दण्डोंको न नापै ॥ ४३१ ॥ जालन्धर में हस्तकी संख्या और वेध में दण्डकी और मध्य देशमें क्रोशकी संख्या और द्वीपान्तर में योजनकी संख्या होतीहै॥३२॥चौवीस अंगुल हाथकाप्रमाण होता है, चार हाथका दण्ड और दो सहस्र हाथका क्रोश होताहै ॥ ४३३ ॥ चार कोस का योजन और दश हाथका एक वंश होताहै वीस हाथका निवर्तन और चौवीस हाथ का क्षेत्र होताहै ॥ ४३४ ॥ सौ घरोंका स्थान और गृह आदिकोंका निवर्तन इन सबका स्थान इक्यासी पदोंके वास्तुसे मापकर बनवाना चाहिये ॥ ४३५ ॥

प्रासादाद्विविधाः प्रोक्ताश्चलाः स्थिरतरास्तथा ॥ मण्डपा
श्चचतुष्षष्टिः प्राकारादेवताश्रयाः ॥ ४३६ ॥ विशेषणापि-
येछात्रास्तथायेचाष्टमंडपाः ॥ चतुष्षष्टिपदेनैवसर्वानेतान्प्र-
मापयेत ॥ ४३७ ॥ नगरग्रामकोटादिस्थाविराणिचभूभृताम्
स्थपतिस्थास्थितयातिप्रविभागेनमापयेत् ॥ ४३८ ॥ स्निग्धा-
दिभूभागसमुत्थितानांन्यग्रोधाविल्वद्रुमखादिराणाम् ॥ शमी
वटोदुम्बरदेवदारुक्षीरस्वदेशोत्थफलद्रुमाणाम् ॥ ४३९ ॥

प्रासाद दो प्रकार के होते हैं एक चल और दूसरे अत्यन्त अचल और चौंसठ प्रकार के मण्डप और देवताओंके आश्रित परकोटा ॥ ४३६ ॥ और विशेष करके छत्री और आठ प्रकारके मण्डप इन सबकी कल्पनाभी ६४ पद के वास्तु सेही करना चाहिये ॥ ४३७ ॥ नगर, ग्राम, कोट और राजाओंके स्थावर गृह इनको प्रधान कारीगर के यहां अकस्मात आये हुए संन्यासी

के हाथके प्रमाणसे मापै ॥ ४३८ ॥ स्निग्ध आदि भूमिके भागमें उत्पन्न जो वड़, बेल खैर, छोंकर पाकड़, गूलर, देवदारु, दूध, के वृक्ष और अपने देश में उत्पन्न हुए फल वृक्ष ॥ ४३९ ॥

उपोषितः शिल्पिजनस्तुयेषांमध्यात्सुतीक्ष्णेनकुठारकेण ॥ छिन्द्याततोदिक्पतितोत्तरस्यांशुभेविलग्नेपरिगृह्यशंकुम् ४४० करप्रमाणंपरतश्चतस्रस्तदर्द्धमानेनततोनुगृह्य ॥ नीत्वान्य-सेत्तानिगृहेचतावद्यावत्प्रतिष्ठानसमश्चशङ्कोः ॥ ४४१ ॥ नन्देतिशुक्लाकथितेशकोणेहुताशनाख्येसुभगेतिचान्या ॥ सुमङ्गलीनैर्ऋतिभागसंस्थाभद्रंकरीमारुतकोणयाता । ४४२ ।

इन सबको निराहर कारीगर बीचमें पैनी कुल्हाड़ी से काटै और फिर दिशाके पतिसे उत्तर दिशामें शुभ लग्नमें खूंटीको पकड कर घरमें ॥ ४४० ॥ और उस के चारों ओर चार हाथ भर वा उस के आधे प्रमाणसे भूमिको ग्रहण करिके काटे हुए उन पूर्वोक्त वृक्षोंको लेजाकर घरमें तबतक रखदे जबतक खूंटीकी प्रतिष्ठाकी समानता हो ॥ ४४१ ॥ ईशानकोण की शिला को शुक्ला और अग्निकोण की शिला को सुभगा, नैर्ऋतकोणकीको सुमंगली और वायुकोणकी को भद्रंकरी कहते हैं ॥ ४४२ ॥

वृषाश्वपुन्नागपदाङ्कितानांनन्दादिकानांक्रमशःशिला-नाम् ॥ अखण्डितानांसुदृढीकृतानांसुलक्षणानांग्रहणंनिरुक्तम् ॥ ४४३ ॥ कूर्मश्चशेषश्चजनार्दनःश्रीर्ध्रुवश्चमध्येभवनस्य-संस्थाः ॥ निवेशनीयाः क्रमशः शिलानाम्प्रमाणमेतन्मुनि-भिःप्रदिष्टम् ॥ ४४४ ॥ शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टंवर्णानु-पूर्व्यणेतथांगुलानाम् ।अथैकविंशंचनविश्वनन्दाविस्तारकेष्या समितंतदर्द्धम् ॥ ४४५ ॥

वृष, अश्व, पुरुष, और नाग इनके पदोंसे अंकित जो अखंडित, सुदृढ और शुभ लक्षणी नन्दादि शिला हैं उनका ग्रहण करना कहाहै ॥ ४४३ ॥ और उन शिलाओंके मध्यमें क्रमसे कच्छप, शेष, जनार्दन, श्री, और ध्रुव इन चारोंको भवनके वीचमें स्थितिके लिये स्थापन करै यह मुनियोंका कहा हुआ प्रमाण है ॥ ४४४ ॥ और शिलाओंका प्रमाण वर्णोंके क्रमसे यह है

कि इक्कीस, चौदह, तेरह, और ९ इतने अंगुलोंका विस्तार वर्णों के क्रमसे जानना चाहिये और इनसे आधा व्यास होता है ॥ ४४५ ॥

तदर्द्धमानंत्वथपिण्डिकाम्यादूर्द्धाधिकान्यूनतरानकार्या॥ प्रमाणहीनासुतनाशकारिणीव्यङ्गाव्ययभ्रष्टविवर्णदेहा॥४६॥ धनार्त्तिदाप्रस्तरगेहमानेकार्याशिलाशिल्पिजनानुकूला ॥ पाषाणगेहेकर्तव्याशिलापाषाणसंभवा ॥ शैलजेशैलजा- पीठश्चैष्टकेचैष्टकःस्मृतः ॥ ४७ ॥ शिलान्यासादिको- भद्रेमूलपादोविधीयते ॥ पक्केष्टनिर्मितेचैवइष्टकानाञ्च- कारयेत् ॥ ४८ ॥

और उस से आधा प्रमाण पिण्डिकाका होता है वह ऊपरको अधिक बनाना उचित है अत्यन्त न्यून न बनानी चाहिये और प्रमाणसेहीन होतो पुत्रके नाशको करतीहै और व्यंग, भ्रष्ट, और मैली अधिक खर्च कराती है ॥ ४४६ ॥ और धनकीभी नष्टताको करती है और विस्तारके घरका जो प्रमाण हो उसके समान शिल्पि जनोंके अनुकूल शिला बनानी पत्थरके घर में शिला पत्थर की ही बनवाना चाहिये शिला के घर में शिलाओं से और ईंटों के घर में ईंट काही बनाना कहा है ॥ ४४७ ॥ भद्रनाम के घर में मूल पाद शिलाका और पक्की ईंटों के घर में ईंटों का बनवाना चाहिये ॥ ४४८ ॥

इष्टकानिर्मितेगेहेप्रमाणमिहलक्षयेत् ॥ अपरेषांगृहाणांतु शिलामानंनचिन्तयेत्॥ ४९ ॥ आधारभूतातुशिलाप्रकल्प्या दृढामनोज्ञापरिमाणयुक्ता ॥ सल्लक्षणाचापरिमाणमानानचा धिकान्यूनतरानकृष्णा॥ ५० ॥ द्वाराधिपादीन्पतयोगजाश्चाः संपूजनीयाबलिभिःसमंत्रैः॥ स्नानार्थमानीयसुतीर्थतोयन्ततो पहारैः प्रतिपूज्यकुंभम् ॥ ५१ ॥ ध्रुवोशिलायास्तुततः खनि त्वाकुंभंप्रतिष्ठाप्यशरांगुलीयम् ॥ विप्रादिवर्णानुगतःप्रशस्तस्त दर्द्धमानंतुतदर्द्धमानम् ॥ ५२ ॥

ईंटोंके बनाये हुए घरमें वास्तु कर्म में शिला का मान देखा जाता है और अन्य घरोंमें शिलाके मानका बिचार नहीं किया जाता ॥ ४९ ॥ और

आधार की जो शिलाहै वह ऐसी होना चाहिये जो दृढ और मनोहर, परिमाणसे युक्त उत्तम लक्षण वाली परिमाणके मानसे न अधिक और न अत्यन्त न्यून हो और जिसका रंग काला हो ॥ ४५० ॥ द्वारके अधिप आदि स्वामी गज अश्व इनका बलिदान और मंत्रोंसे भली प्रकार पूजन करै फिर स्नान के लिये सुन्दर तीर्थके जलको लाकर पूजाकी सामग्रियोंसे कुंभका पूजन करके ॥ ५१ ॥ शिलाके ध्रुव भागमें पांच अंगुल खोदकर उस कुंभका स्थापन करै और वह कुम्भ ब्राह्मण आदि वर्णोंके अनुसार आधे आधे न्यून प्रमाण से श्रेष्ट होताहै ॥ ५२ ॥

जलाक्षतव्रीहिसपञ्चगव्यमध्वाज्यजातंपरिपूर्य्यसम्यक् ॥ शिलाविन्यासकालेतुसंभारांश्चोपकल्पयेत् ॥ ५३ ॥ समुद्रेयानिरत्नानिसुवर्णरजतंतथा ॥ सर्वबीजानिगन्धाश्चशरादर्भास्तथैवच ॥ ५४ ॥ शुक्लाः सुमनसः सर्पिः श्वेतञ्चमधुरोचनाः ॥ आमिषञ्चतथामद्यंफलानिविविधानिच ॥ ५५ ॥ नैवेद्यार्थञ्चपक्कान्नंवस्त्राण्याभरणानिच ॥ श्वेतंपीतंतथारक्तंकृष्णंवर्णक्रमेणच ॥ ५६ ॥ गन्धादींश्चैववस्त्रञ्चपुष्पाणिचतथैवच ॥ वास्तुविद्याविधानज्ञैः कारयेत्सुसमाहितः ॥५७॥

इतिवास्तुशास्त्रेगृहादिनिर्माणेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और उस कुंभको जल अक्षत व्रीहि पंचगव्य मधु घृत आदिसे भलीप्रकार पूर्ण करिके और शिलाके स्थापन समयमें सामग्रियों को इकट्ठी करै ॥५३॥ समुद्र में जितने रत्नहों उनका और सुवर्ण चांदी सर्व बीज गंध शर कुशा ॥ ५४ ॥ सफेद पुष्प, घी, श्वेत मधु, गोरोचन, मांस, मदिरा, अनेक प्रकार के फल ॥ ५५ ॥ नैवेद्यके लिये पक्वान्न वस्त्र और ऐसे भूषण जो सफेद, पीले, लाल, कालेरंग के हों ॥ ५६ ॥ गन्ध आदि वस्त्र और पुष्प इनको वास्तुविधानके कुशल पुरुषोंसे संग्रह करवावे ॥ ५७ ॥ इति वास्तुशास्त्रे भाषा टीकायां गृहादि निर्माण वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

प्रोक्तंयद्भवतासम्यक्प्रासादानांयथाक्रमम् ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिवास्तुदेहस्यलक्षणम् ॥ ५८ ॥ पुरासभगवान्वास्तुपुरुषः परिकीर्तितः॥पूर्वोत्तरमुखोवास्तुपुरुषः परिकल्पितः ५९

देवैःसेन्द्रादिभिस्तस्मिन्कालेभूमौनिपातितः अवाङ्मुखोनिप तितईशान्यांदिशिःसंस्थितः ॥ ६० ॥ शिरोभागेस्थितोवह्नि मुखेआपस्तनेयमः । उत्तरस्यापवत्सश्चसव्यमार्ग समाश्रितः ॥ ६१ ॥ पर्जन्याद्यास्तथानासादृक्छ्रुवोरःस्थलांसगाः ॥ सप्ताद्याःपंचचभुजेविन्यस्यापुरुषोत्तमे ॥ हस्तेसवितासावि- त्रीतथोथगृहक्षतः ॥ ६२ ॥ पार्श्वेजठरेविवस्वाँश्चआस्थितः परितस्सदा ॥ ऊरूजानूजंघास्फिचोयमाद्यैः परिवेष्टिताः ॥ एतेदक्षिणपार्श्वस्थावामपार्श्वे तथैवच ॥ ६३ ॥

जो आपने प्रसादोंकाक्रम कहा वह हमने अच्छी तरह सुना अब वास्तु देहके लक्षणको सुनना चाहतेहैं ॥ ५८ ॥ पहिले वह भगवान् वास्तुपुरुष आपने कहा और पूर्वोत्तर मुख वास्तुपुरुष की रचना आपने कही ॥ ५९ ॥ और इन्द्र आदि देवताओंने उस कालमें उसे भूमि में नीचे को मुख करके गिरा दिया और ईशान दिशामें स्थित हुआ ॥ ६० ॥ उसके शिरो भागमें अग्नि स्थितहै, मुखमें जल, स्तनमें यम, उत्तर भागमें स्थित आपवत्स वामस्तन में स्थित रहताहै ॥ ६१ ॥ और पर्जन्य आदि देवता नासिका, नेत्र, कान वक्षः स्थल और कन्धोंमें स्थित रहते हैं और सप्त आदि पांच पुरुषोत्तम की भुजामें और हाथमें सूर्य सावित्री इनका हाथमें वितथ और गृहक्षत ॥ ६२ ॥ इनके पसबाड़े और पेटके चारों तरफ विवस्वान् स्थितरहताहै और ऊरू,जानु, स्फिक ये यमदिशा आदिसे घिरे रहतेहैं ये दक्षिणपार्श्व और वामपार्श्व दोनों में स्थित रहतेहैं ॥ ६३ ॥

शेषादण्डजयन्तौचमेढ्रेब्रह्मात्हृदिस्थितः ॥ पादेसमाश्रित इतिपितृभिःपरिवारितः ॥ चत्वारिंशत्पञ्चयुक्ताः परितो- ब्रह्मणस्तथा ॥ ६४ ॥ चतुःषष्टिपदेवास्तौदेवाब्रह्मादय- स्तथा ॥ कोणेतेषांप्रकर्तव्यास्तिर्यक्कोष्ठगताद्विजाः ॥६५॥ चतुःषष्टि पदोवास्तुः प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः ॥ ब्रह्माचतु ष्पदोह्यत्रकोणाद्यर्द्धपदाःस्मृताः ॥ ६६ ॥ षोडशकोणगाः

सार्द्धपदाश्चाथोभयस्थिताः ॥ विंशतिर्द्धिपदाश्चैवचतुःषष्टिपदे स्मृताः ॥ ६७ ॥

शेष देवता तथा दण्ड और जयन्त ये शिश्नेन्द्रिय में स्थित रहते हैं हृदय में ब्रह्मा रहता है और चरणों में पितरों सहित वास्तुपुरुष रहता है और पैतालीस कोष्ठ चारों तरफ ब्रह्माके होते हैं ६४ चौंसठ पदके वास्तु ब्रह्मा आदिक देवता रहते हैं और उनके कोण में तिरछे कोष्ठोंमें द्विज रहते हैं ॥ ६५ ॥ ब्रह्माने चौंसठ पदका वास्तु प्रासाद में कहाहै ब्रह्मा वास्तु में चतुष्पद कहाहै और कोण में आधे २ पद कहे हैं ६६ और सोलह कोणोंमें डेढ पद दोनों भागों में स्थित होतेहैं और बीस दोदो पदके देवता चौंसठ पदके वास्तु में कहे हैं ॥ ६७ ॥

जीर्णोद्धारेतथोद्यानेतथागृहनिवेशने ॥ नवप्रासादभवनेप्रासादपरिवर्तने ॥ ६८ ॥ द्वाराभिवर्तनेतद्वत्प्रासादेषुगृहेषुच ॥ वास्तूपशमनं कुर्य्यात्पूर्वमेवविचक्षणः ॥ ६९ ॥ वास्तुमण्डलकोणेषुईशानादिक्रमेणच॥ शंकूनांरोपणंशस्तंप्रादक्षिण्येनमार्गतः ॥ ७० ॥ विशंतुभूतलेनागालोकपालाश्चसर्वशः ॥ अस्मिन्गृहेवतिष्ठन्तुआयुर्बलकराःसदा ॥ ७१ ॥

जीर्णोद्धारमें, उद्यानमें गृह के प्रवेश में, नवीन प्रासाद और भवन में तथा प्रासादके परिवर्तन में ॥ ६८ ॥ द्वारके बनवाने और प्रासाद गृहों में बुद्धिमान् मनुष्य पहिलेही वास्तुशान्ति करावै ॥ ६९ ॥ और वास्तुमण्डल के कोणोंमें ईशान दिशा आदिके प्रदक्षिणक्रमसे शंकुओंका रोपण अर्थात् खूंटी गाडना श्रेष्ठ होता है ॥ ७० ॥ नाग भूतल में प्रवेश करो और समस्त लोकपाल जो आयु और बलके देनेवाले हैं वे सदैव इस घर में टिको इस मंत्र को पढकर वास्तु के कोणमें शंकुओं को रखै ॥ ७१ ॥

प्रासादारामवापीषुकूपोद्यानेषुचैवहि ॥ तन्नामपूर्विकारोप्याकोणेशंकुचतुष्टयम् ॥ ७२ ॥ अग्निभ्योप्यथसर्पेभ्योयेचान्येतत्समाश्रिताः ॥ तेभ्योबलिम्प्रयच्छामिपुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ एकाशीतिपदंकुर्य्याद्रेखाभिःकनकेनच ॥

पश्चात्पिष्टेनचालिख्यसूत्रेणालोड्यसर्वतः ॥ ७४ ॥ दश-पूर्वायतारेखादशचैवोत्तरायतोः ॥ सर्वावास्तुविभागेषुवि-ज्ञेयानवकानव ॥ ७५ ॥ शान्तायशोवतीकान्ताविशालाप्राणवाहिनी ॥ सतीचसुमनानन्दासुभद्रासुस्थिता-तथा ॥ ७६ ॥

प्रासाद, आराम, वापी, कूप और उद्यान में नामोच्चारणपूर्वक कोणों में ४ शंकुओं की स्थापना करै ॥ ७२ ॥ अग्नि सर्प और जो अन्यदिशा में देवता स्थित हैं उनके लिये पवित्र और उत्तम ओदनकी बलिको देताहूं ॥ ७३ ॥ सुवर्णकी रेखाओंसे वास्तु में इक्यासीं पद करै फिर सूत्रको चारों तरफ रखकर चूनसे रेखा खींचे ॥ ७४ ॥ दशरेखा पूर्व को उत्तर को लम्बी करै संपूर्ण वास्तुओं के विभागोंमें ये नौ नवक जानने ॥ ७५ ॥ शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, सुमना:, नन्दा, सुभद्रा और सुस्थिता ॥ ७६ ॥

पूर्वापरागताह्येताउदग्याम्याश्रितास्तथा ॥ हिरण्यासु व्रतालक्ष्मीर्विभूतिर्विमलाप्रिया ॥ ७७ ॥ जयाकालावि शोकाचतथेन्द्रादशमीस्मृता ॥ एकाशीतिपदेह्येताःशिराश्च-परिकीर्तिताः ॥ ७८ ॥ श्रियायशोवतीकान्तासुप्रियापि-पराशिवा ॥ सुशोभासधनाज्ञेयातथेभानवमीस्मृता ॥७९॥ पूर्वापरातथाह्येताश्चतुष्पाष्टिपदेस्थिता ॥ धन्याधराविशा-लाचस्थिरारूपागदानिशा ॥ ८० ॥ विभवाप्रभवाचान्या सौम्यासौम्याश्रिताःशिराः॥पदस्याष्टांशकोभागस्तत्प्रोक्तंकर्म-संज्ञकम् ॥ ८१ ॥

ये दश रेखा पूर्व पश्चिम के गत होती है और उत्तर और दक्षिण के आश्रित ये होती हैं कि हिरण्या, सुव्रता, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, ॥ ७७ ॥ जया, काला, विशोका और दशमी इन्द्रा कही है इक्यासी पदके वास्तु में ये शिरा कही हैं ॥ ७८ ॥ श्रिया, यशोवती, कान्ता, सुप्रिया, पुरा

शिवा, सुशोभा, सधना, और नवीं इभा ॥ ७९ ॥ ये नौ शिरा पूर्वसे पश्चिम तक चौंसठ पदके वास्तुमें होती हैं धन्या, धरा, विशाला, स्थिररूपा, गदा, निशा, ॥ ८० ॥ विभवा, प्रभवा, और सौम्या ये उत्तरादिशा में नौ शिरा होती हैं पदके आठ अंशको कर्म संज्ञकभाग कहते हैं ॥ ८१ ॥

पदहस्तसंख्ययासम्मितोनिवेशोङ्गुलानि॥विस्तीर्णवंशव्यासोर्द्धशिरामानंप्रचक्षते ॥ ८२ ॥ संपाताअपिवंशानांमध्यमानिसमानिच ॥ पदानांपातितान्विद्यात्सर्वाणि भयदान्यपि ॥ ८३ ॥ नतानिपीडयेत्प्राज्ञः शुचिभांडैश्चकीलकैः ॥ स्तंभैश्चशल्यदोषैश्चगृहस्वामिषुपीडनम् ॥ ८४ ॥ तस्मिन्नवयवेतस्यबाधाचैवप्रजायते ॥ कण्डूयतेयदङ्गंवागृहस्वामीतथैवच ॥ ८५ ॥

पद के हाथ की संख्या से जो निवेश होता है उसै अंगुल कहते हैं और विस्तार किये वंश का जो ऊर्द्धभाग उतना शिराका प्रमाण कहते हैं ॥८२॥ और वासों का जो सम्पात उसका भी मध्यम और समभाग जो हो वह भी शिराका मान जानना और उस के मध्य में जो पद हो उन सब को भय के दाता जानै ॥ ८३ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उन पदों को शुद्ध भाण्ड और कीलों से पीडित न करै और न स्तम्भ और शल्य के दोषों से पीडित करै तौ गृह के स्वामी को पीडा ॥ ८४ ॥ उसी अवयव में होती है जिस अवयव में वास्तु पुरुष के हो— और जिस वास्तु के अंग में खुजली करै उसी अंग में घर के स्वामी के खुजली होती है ॥ ८५ ॥

होमकालेचयज्ञादौतथाभूमिपरीक्षणे ॥ अग्नेर्वाविकृतिर्यत्र तत्रशल्यंविनिर्दिशेत् ॥ ८६ ॥ धनहानिर्दारुमयेपशुपीडास्थिसंभवे ॥ रोगस्यापिभयम्प्रोक्तन्नागदन्तोपिदूषकः ।८७। वंशानीमानिवक्ष्यामिबहूनपिपृथक्पृथक् ॥ वायुंयावत्तथारोगात्पितृभ्यः शिष्यतस्तथा ॥ ८८ ॥ मुख्याद्भृङ्गस्तथाशोकाद्वितथंयावदेवतु ॥ सुग्रीवाददितिंयावद्भृङ्गात्पर्जन्यमेवच ॥ ८९ ॥ एतेवंशाः समाख्याताः क्वचिद्दुर्जय

एवतु ॥ एतेषांयस्तुसंपातः पदमध्येसमन्ततः ॥ ९० ॥ एतत्प्रवेशमाख्यातंत्रिशूलङ्कोणकञ्चयत् ॥ स्तम्भन्यासेषु वर्ज्यानितुलाबन्धेषुसर्वदा ॥ ९१ ॥

होम के समय और यज्ञ तथा भूमिकी परीक्षा में जहां अग्नि का विकार हो जाय वहां शल्य अर्थात् विघ्न की संभावना होती है ॥ ८६ ॥ काष्ठ के वास में धन की हानि, अस्थि के वांस में पशुओं में पीडा और रोग का भय कहा है, और दांत भी दूषित है ॥ ८७ ॥ इस से इन बहुत प्रकार के वांसों को पृथक् २ कहता हूं कि रोग से वायुपर्यंत और शिखी से पितरों तक ॥ ८८ ॥ मुख्य से भृंगतक शोक से वितथपर्यंत, सुग्रीव से अदिति पर्यंत, और भृंग से पर्जन्यपर्यंत ॥ ८९ ॥ ये वांस शास्त्रकारोंने कहे हैं और कहीं दुर्जयभी कहा है इनका जो पद के मध्य में चारों तरफका संपात है ॥ ९० ॥ उसको प्रवेश कहते हैं वह त्रिशूल वा कोण के आकारका जो होता है वह स्तंभों को रखने और तुला के रखने में सदैव निषिद्ध हैं ॥९१॥

सर्वत्रवास्तुनिर्दिष्टः पितृवैश्वानरायतः ॥ एकाशीतिपदे ह्यस्मिन्देवतास्थापनेशृणु ॥ ९२ ॥ रेखाणाञ्चफलन्तत्रकथयामिसमासतः ॥ वर्णानुपूर्व्येणतथाअङ्गस्पर्शनकंपरम्॥९३॥ विप्रः स्पृष्ट्वातथाशीर्षञ्चक्षुः क्षत्रियकस्तथा ॥ विशश्चोरूच शूद्रश्चपादास्पृष्ट्वासमारभेत ॥ ९४ ॥ अङ्गुष्ठकेनवाकुर्यान्मङ्गुल्यास्तथैवच प्रदेशिन्यामपितथास्वर्णरौप्यादिधातुना ॥ ९५ ॥ मणिनाकुसुमैर्वापितथादध्यक्षतैः फलैः ॥ शस्त्रेणशत्रुतोमृत्युर्बन्धोलोहेनभस्मना ॥ ९६ ॥ अग्नेर्भयन्तृणेनापिकाष्ठादिलिखितेनच ॥ नृपाद्भयन्तथावक्रेखण्डेशत्रुभयंभवेत ॥ ९७ ॥

संपूर्ण कर्मों में बास्तु पुरुष दक्षिण और अग्निकोण में लंबा कहा है इक्यासी पद के वास्तु में देवताओं की स्थापना को सुनो ॥ ९२ ॥ और उस में रेखाओं के फलको भी संक्षेप से कहता हूं और वर्णों के क्रम से श्रेष्ठ अंग के स्पर्शको कहता हूं ॥ ९३ ॥ ब्राह्मण शिरका स्पर्श करके, क्षत्रिय नेत्रका स्पर्श करके, वैश्य जंघाओं का स्पर्श करके और शूद्र चरणों का स्पर्श

करके वास्तुके पूजन का प्रारंभ करै ॥ ९४ ॥ और अंगूठे से वा मध्यमा वा प्रदेशिनी से अथवा सुवर्ण चांदी आदि धातु से पूजन करै ॥ ९५ ॥ अथवा मणि, पुष्प दही, अक्षत, फलों से पूजनकरै और शस्त्र से पजन करैं तो शत्रु से मृत्यु होती है और लोंहसे बंधन और भस्म से ॥ ९६ ॥ अग्नि का भय और तृण और काष्ठ आदिके लिखने से राजा से भय होता है और टेढा और खंडित होने से शत्रु से भय होता है ॥ ९७ ॥

विरूपाचर्मदन्तेनचांगारेणास्थिनापिवा ॥ नशिवायभवेद्रेखा स्वामिनोमरणन्तथा ॥ ९८ ॥ अपसव्यक्रमेवैरंसव्येसंपदमा दिशेत ॥ तस्मिन्कर्मप्रारंभेक्षुतन्निष्ठीवितन्तथा ॥ ९९ ॥ वाचस्तुपरुषास्तत्रयेचान्येशकुनाधमाः ॥ तान्विवर्ज्यप्रकुर्वीत वास्तुपूजनकर्म्मणि ॥ ५०० ॥

कुरूप चर्म, दांत, कोयला, और अस्थिसे बनाई हुई रेखा कल्याण कारक नही होती और स्वामीकी मृत्युको करती है ॥ ९८ ॥ अपसव्य क्रम से करै तो वैर और दक्षिण क्रमसे करै तो संपदा होतीहै और वास्तुकर्म के प्रारंभमें छींक और थूक इनको वर्जदे ॥ ९९ ॥ और कटुवचन और बुरे शकुनों को छोड कर वास्तुकर्मका प्रारंभ करै ॥ ५०० ॥

॥ वर्ग फल ॥

अकचटतपयशवर्गाइत्यष्टदिक्षुच ॥ प्राचीप्रभृतिषुवर्णा स्तत्परंकारयेत्फलम् ॥ १ ॥ एतेवर्णाःप्रश्नकालेमध्येपद्मैकम क्षरम् ॥ तेनशल्यंविजानीयाद्दिशितस्यांचवेश्मनः ॥ २ ॥ एतेभ्योवापरम्बाह्यप्रश्नेद्व्यक्षरंभवेत् ॥ तदाशल्यंनजानीयाद् गृहमध्येविनिश्चयः ॥ ३ ॥ एकाशीतिपदंकुर्य्याद्वास्तुवित्स र्ववास्तुषु ॥ आदौसंपूज्यगणपन्दिक्पालान्पूजयेत्ततः ॥४॥

अ क च ट त प य श ये वर्ग आठोंदिशाओंमें पूर्वदिशासे लेकर स्थित हैं उसके अनन्तर फलको कहे ॥ १ ॥ वर्ण प्रश्नके कालमें मध्यमें एक अक्षर जो होताहै उससे उसी दिशाके विषै घरमें विघ्न को जानै ॥ २ ॥ और इस से परै बाह्य देशमें यदि दो अक्षरका प्रश्न हो तो गृहके मध्यमें विघ्न नजाने यह शास्त्रका निश्चयहै ॥ ३ ॥ वास्तुका ज्ञाता पुरुष संपूर्ण वास्तुओंमें इक्या-

सी पदके वास्तुको करै प्रथम गणेशजीका पूजन करके फिर दिक्पालोंका पूजन करै ॥ ४ ॥

धरित्र्यांकलशंस्थाप्यमातृकाः पूजयेत्ततः ॥ नान्दीश्राद्धन्ततः कुर्यात्पुण्यानभ्यर्चयेत्ततः ॥ ॥ ५ ॥ अग्निसंस्थापनार्थन्तुमेखलात्रयसंयुतम् ॥ कुण्डंकुर्याद्विधानेनयोन्याकारंविशेषतः ॥ ६ ॥ स्थण्डिलंवाप्रकुर्वीतमतिमान्सर्वकर्मसु ॥ पदस्थान्पूजयेत्सर्वान्पञ्चत्रिंशत्तथैवच ॥ ७ ॥ शिखाचैकपदंप्रोक्तःपर्जन्यश्चतथैवच ॥ जयन्तोद्विपदःसूर्य्यःसत्यंभृशौद्विकोष्ठकौ ॥ ८ ॥

भूमिपर कलशस्थापन करके मातृकाओंको पूजन करै फिर नान्दीमुख श्राद्ध करने के पीछे पवित्र ब्राह्मण और देवता आदिका पूजन करै ॥ ५ ॥ और अग्निकी स्थापना के लिये तीन मेखलाओंसे युक्त विशेष कर योनि के आकार कुण्ड बनावै ॥ ६ ॥ और सब कामोंमें स्थण्डिल करना बुद्धिमानको उचितहै और पदस्थ सम्पूर्ण पैंतीस देवताओं का पूजन करै ॥ ७ ॥ शिखा देवता एक पदका कहाहै और पर्जन्य भी एकही पदका होताहै. जयन्त दो पदका और सूर्यभी दो पदका सत्य भ्रंश ये दोनों दो कोष्टके होतेहैं ॥ ८ ॥

पदैकमन्तरिक्षस्तुवायुश्चैकपदःस्मृतः ॥ ९ ॥ पूषाचैकपदोह्यस्मिन्द्विपदोवितथस्तथा ॥ द्विपदौदाक्षिणाशास्थौगृहक्षतयमावुभौ ॥ १० ॥ गन्धर्वमृगराजौतुद्विपदौपरिकीर्तितौ ॥ मृगःपितृगणश्चैवदौवारिकश्चैकपादकः ॥ ११ ॥ सुग्रीवपुष्पदन्तौचद्विपदावरुणस्तथा ॥ असुरश्चतथाशोकौद्विपदाः परिकीर्तिताः॥ १२ ॥ पापोरोगस्तथासर्पस्त्रयश्चैकपदामताः। सुखभल्लाटसौमाख्यास्त्रिपदास्तुत्रयःस्मृताः ॥ १३ ॥

और अन्तरिक्ष ३ एक पदका और वायु भी एक पदका कहाहै ॥ ९ ॥ और पूषा एक पदका और वितथ दो पदका होताहै और दक्षिण दिशा में स्थित ग्रहक्षत और यम ये दोनों दो पदके होतेहैं ॥ १० ॥ गन्धर्व और मृगराज येभी दो पदके कहेहैं. मृग और पितृगण और दोवारिक ये एक पद के होतेहैं ॥ ११ ॥ सुग्रीव पुष्पदन्त और वरुण ये दो पदके, असुर अशोक

येभी दो पदके कहेहैं ॥ १२ ॥ पाप, रोग और सर्प ये तीनों एक पदके कहे है मुख भल्लाट और सौम ये तीनों भी एक २ पदके कहेहैं ॥ १३ ॥

सर्पश्चाद्विपदः प्रोक्तोह्यदितिश्चतथैवच ॥ दितिश्चैक-पदाप्रोक्ताद्वात्रिंशद्बाह्यतःस्थिताः ॥ १४ ॥ ईशानादिचतु-ष्कोणेसंस्थितान्पूजयेद्बुधः ॥ आपश्चैवाथसावित्रोजयोरु-द्रस्तथैवच ॥ १५ ॥ तदन्तगाश्चैकपदानीशानादिषुवि-न्यसेत् ॥ अर्यमात्रिपदः पूर्वेसविताचतथैकपात् ॥ १६ ॥

सर्प और अदिति ये दोनों दोदो पदके होते हैं और दिति एक पदकी कही है और बत्तीस देवता कोष्ठों से बाहिर स्थितहैं ॥ १४ ईशान आदि चारों कोणों में जो स्थित हैं बुद्धिमान् मनुष्य को उनका पूजन करना चाहिये जल और सावित्र, जय रुद्र ॥ १५ ॥ और इन के अन्तमें स्थित जो हैं इन एक पदमें ईशान दिशाओं में स्थापित करै. अर्यमा तीनपद का और सविता एक पदका होता है ॥ १६ ॥

विवस्वांस्त्रिपदोयाम्येइन्द्रश्चैकपदस्तथा ॥ नैर्ऋतेपश्चि-मेमित्रस्त्रिपदःपरिकीर्तितः ॥ १७ ॥ वायव्येराजयक्ष्माच· एकपादः प्रकीर्तितः ॥ उत्तरेत्रिपदापृथ्वीधरापश्चैकपात्त-था ॥ १८ ॥ मध्येनवपदोब्रह्मापीतशुभ्रश्चतुर्भुजः ॥ आब्र-ह्मन्ब्राह्मणइतिमन्त्रोयंसमुदाहृताः ॥ १९ ॥ अर्यमा-कृष्णवर्णश्चअर्यम्णाचबृहस्पतिः ॥ सवितारक्तवर्णस्तुउप. यामगृहीतकम् ॥ २० ॥ विवस्वाञ्छुक्लवर्णश्चविस्वा. नादित्यमन्त्रः ॥ इन्द्रोरक्तेन्द्रासुत्रामामन्त्रोयंसमुदा. हृतः ॥ २१ ॥

विवस्वान् तीन पदका दक्षिण दिशा में होता है और इन्द्र एक पदका नैर्ऋत में और मित्र एक पदका पश्चिम में कहा है ॥ १७ ॥ वायव्य कोण में एक पदका राजयक्ष्मा कहा है उत्तर में त्रिपदा पृथ्वी और एकपाद धराप कहे हैं ॥ १८ ॥ मध्य में नौ पदका ब्रह्मा पीला श्वेत और चतुर्भुजी कहा है उसकी पूजाका " आब्रह्मन्ब्राह्मणः " यह मंत्र कहाहै ॥ १९ ॥ अर्यमा

काले रंगका और " अर्यम्णा बृहस्पतिः " यह उसका मंत्र है. सविता (सूर्य) रक्त वर्ण और " उपयाम गृहीत. यह उसका मंत्र है ॥ २० ॥ विवस्वान् सफेद रंगका और " विवस्वानादित्य " यह उसका मन्त्र है. इन्द्र रक्त और " इंद्र सुत्राम " यह उसका मंत्र है ॥ २१ ॥

मित्रः श्वेतश्च तन्मित्रं वरुणस्याभिचक्षेत्विति ॥ राजयक्ष्मारक्तवर्णोह्यभिगोत्राणिमन्त्रतः ॥ २२ ॥ पृथ्वीधरोरक्तवर्णःपृथिवीछन्दमन्त्रतः ॥ आपवत्सःशुक्लवर्णोभवामेतिचमन्त्रतः ॥ २३ ॥ आपः शुक्लवर्णश्चतद्बाह्येआपोअस्मान्मातरेतिच ॥ सावित्राग्नेयदिग्भागेशुक्लवर्णैकपात्तथा ॥ २४ ॥ उपयामगृहीतोसिसवितासीतिमन्त्रतः ॥ जयन्तःश्वेतोनैर्ऋत्येममर्माणितेतिमन्त्रतः ॥ २५ ॥

मित्र श्वेत और " तन्मित्रंवरुणस्याभिचक्षे " यह उसका मंत्र है और राजयक्ष्मा रक्तवर्ण और " अभिगोत्राणि " यह उसका मंत्र है ॥ २२ ॥ पृथ्वीधर रक्तवर्ण और " पृथ्वीछन्द " यह उसका मंत्र है, आपवत्स सफेद रंग और " भवाम " यह उसका मंत्र कहा है ॥ २३ ॥ और उसके बाह्य देश में आप शुक्लवर्ण और " आपोअस्मान्मातरः " उसका मंत्र है और सविता से अग्निकोण के दिग्भागमें शुक्लवर्णका एकपाद है ॥ २४ ॥ और " उपयाम गृहीतोसि " और " सवितासि " ये उसका मंत्र हैं और " जयन्त श्वेत मर्माणि " इस मंत्र से कहा है ॥ २५ ॥

रुद्रोरक्तश्चवायव्येसुत्रामाइतिमन्त्रतः ॥ ईशानेरक्तवर्णश्चतमीशानेतिवैशिखी ॥ २६ ॥ पर्जन्यःपीतवर्णश्चमहाइन्द्रेतिवैतथा ॥ जयन्तः पीतवर्णश्चधन्वनागाइतिस्मृतः ॥ २७ ॥ कुलिशायुधः पीतवर्णोमहाइन्द्रेतिवैतथा ॥ सूर्योरक्तः सूर्यरश्मिर्हरिकेतिचमन्त्रतः ॥ २८ ॥ सत्यश्च शुक्लोव्रतेनदीक्षामाप्नोतिमन्त्रतः ॥ भृशःकृष्णोमंत्रस्यभद्रंकर्णेभिरेवच ॥ २९ ॥ अन्तरिक्षः कृष्णवर्णोवयंसोमश्चइत्यपि ॥ वायुर्धूम्रस्तथावर्णआवायोरितिमन्त्रतः ॥३०॥

रुद्र रक्त वायव्य दिशा में " सुत्रामा " इस ऋचा से है. ईशान

में रक्त वर्णका " शिखी तमीशानम् " इस मंत्र से कहा है ॥ २६ ॥ पीत वर्णका पर्जन्य " महा इन्द्र " मंत्र से कहा है जयंत पीतवर्णका " धन्वना-गा " इस मंत्र से कहाहै ॥ २७ ॥ कुलिशायुध पीत वर्णका " महाइन्द्र " इस मंत्र से कहा है। सूर्य रक्त वर्ण का " सूर्यरश्मिहरिक " इस मंत्र से कहा है ॥ २८ ॥ सत्य शुक्लवर्णका " व्रतेनदीक्षामाप्नोति " इस मंत्र से है. भृश कृष्णवर्णका और इसकामंत्र " भद्रंकर्णेभिः " है ॥२९॥ अन्तरिक्ष कृष्ण वर्ण का और " वयंसोम " यह उसका मंत्र है वायु धूम्रवर्णका और " आवायो ,, यह उसका मंत्र है ॥ ३० ॥

पूषाचरक्तवर्णश्चपूषन्तवइतीरितः ॥ शुक्लवर्णश्चवितथं सवितापथमेतिच ॥ ३१ ॥ गृहक्षतः पीतवर्णः सवितात्वे तिमन्त्रतः ॥ यमः कृष्णवपुर्याम्येयमायत्वामखायच॥३२॥ गन्धर्वोरक्तवर्णश्चपृतद्वोवेतिमन्त्रतः भृङ्गराजःकृष्णवर्णोमृत्युः सुपर्णेतिवातथा ॥ ३३ ॥ मृगः पीतश्चतद्विष्णोर्मन्त्रेणानि र्ऋतिःस्थितः ॥ पितृगणारक्तवर्णाः पितृभ्यश्चेतिपूजयेत् ३४

पूषा रक्तवर्णका और "पूषन्तव" यह उसका मन्त्र है वितथ शुक्लवर्ण का " सविता प्रथम " यह मन्त्र है ॥ ३१ ॥ गृहक्षतका पीतवर्ण और "स-वितात्वा० यह उसका मंत्र कहा है और यम दक्षिणमें कृष्णशरीर "यमाय-त्वामखायच " यह मंत्र है ॥ ३२ ॥ गन्धर्व रक्तवर्णका और " पृतद्वोवः० " यह मंत्र है भृंगराज कृष्णवर्णका है और "मृत्यु सुपर्ण" यह मंत्र है ॥ ३३ ॥ मृग पीतवर्णका है तद्विष्णोः इस मंत्रसे नैर्ऋत दिशामें स्थित है. पितरों के गण रक्तवर्ण के हैं और "पितृभ्यश्च" यह मंत्र है ॥ ३४ ॥

दौवारिकोरक्तवर्णोद्रविणोदाः पिपीपति ॥ शुक्लवर्णश्च सुग्रीवः सुषुम्नः सूर्यरश्मिना ॥ ३५ ॥ पुष्पदन्तोरक्त वर्णोनक्षत्रेभ्येतिमन्त्रतः ॥ वरुणः शुक्लइतरोमित्रास्यवरुणा-स्यतः ॥ ३६ ॥ आसुरः पीतरक्तश्चयेरूपाणीतिमन्त्रतः ॥ शोकः कृष्णवपुर्मन्त्रमासवेस्वाहेत्यावाहयेत् ॥ ३७ ॥ पापयक्ष्मापीतवर्णः सूर्यरश्मीतिमंत्रतः रक्तवर्णस्तथारोगः शिरोमेइतिकोणके ॥ ३८ ॥

दौवारिक का रक्तवर्ण है और द्रविणोदाः पिपीषति यह उसका मंत्रहै. सुग्रीव शुक्ल वर्ण काहै और सुषुम्नःसूर्य्यरश्मि यह मंत्रहै ॥ ३५ ॥ पुष्पदन्त का रक्तवर्णहै और "नक्षत्रेभ्यः" यह मंत्रहै। वरुणका शुक्ल वर्णहै और "इतरो "मित्रास्यत वरुणास्यत" यह मंत्रहै ॥ ३६ ॥ आसुर का पीतरक्त वर्ण है और ये रूपाणि यह मंत्र है शोक कृष्णवर्ण का है और उसका "आसवे स्वाहा" मंत्रहै ॥ ३७ ॥ पापयक्ष्मा पीत वर्णका है सूर्यरश्मि यह मंत्र है कोणमें स्थित रोग रक्तवर्ण है उसका 'शिरामे' मंत्र है ॥ ३८ ॥

द्विपदोहिवायुकोणेरक्तानमोस्तुसर्पेभ्यश्च ॥ मुख्योरक्तवपुः कार्यइषेत्वाइतिपूजयेत ॥ ३९ ॥ भल्लाटकःकृष्णवर्णोबण्महाँअसिमन्त्रतः ॥ ४१ ॥ सोमःश्वेतश्चोत्तरेचवयंसोमेतिमन्त्रतः ॥ ४० ॥ सूर्य्यः कृष्णवपुः पूज्य उदुत्यंजातवेदसम ॥ अदितिःपीतवर्णातुउतनोहिर्बुन्ध्यमन्त्रतः ॥ ४१ ॥ दितिःपीताअदितिर्द्यौमन्त्रेणेशानकोणके ॥ ईशानादिक्रमेणैवस्थाप्याःपूज्याःस्वमन्त्रतः ॥ ४२ ॥

वायुकोण में द्विपद का रंग रक्त है उसकी पूजाका मंत्र "नमोस्तु सर्पेभ्यः" यह है. मुख्य रक्त शरीर बनाना और "इषेत्वा" इस मत्र से पूजे । ३९ ॥ भल्लाटक कृष्णवर्ण "बण्महाँअसि" इस मंत्र से पूजे ! श्वेतवर्ण का सोम उत्तरमें स्थित होताहै उसका "वयं सोम" इस मंत्रसे पूजन करना चाहिये ॥ ४० ॥ सर्प कृष्णवर्णका होताहै उसका "उदुत्यं जातवेदसं" इस मंत्र से पूजन करै। अदिति पीतवर्णकी है उसकी "उतनोहिर्बुन्ध्यन"इसमंत्रसे पूजा करनी चाहिये॥ ४१ ॥ दिति पीतवर्णकी होती है उसकी पूजा "अदितिर्द्यौ" इस मंत्रसे ईशानकोणमें करनी और ईशान आदि क्रमसे ही इनका स्थापन और पूजन अपने २ मंत्रसे करना चाहिये ॥ ४२ ॥

नाममन्त्रेणवास्थाप्याः पूज्याश्चैवयथाक्रमात् ॥ भूर्भुवःस्वेतिमन्त्रेणप्रणवाद्येननामकैः ॥ ४३ ॥ ईशानेचरकीस्थाप्याधूम्रवर्णाथबाह्यगाः ॥ ईशावास्येतिमंत्रेणस्थाप्याःपूज्याः प्रयत्नतः ॥ ४४ ॥ विदारिकारक्तवर्णाअग्निदूतेतिमन्त्रतः॥ पूतनापीतहरितानमः स्वस्त्यायमंत्रतः ॥ ४५ ॥ पापराक्ष-

सीक्ष्णाभावायव्यैरितिमन्त्रतः ।। बाहिरेवचपूर्वादिक्रमेणचत-
तोर्चयेत् ॥ ४६ ॥

अथवा नाम मंत्रसेही स्थापन और पूजन क्रमपूर्वक करै अथवा ॐकार है आदि में जिसके ऐसे "भूर्भुवः स्वः" इस मंत्रसे नाम लेलेकर पूजन करै ॥ ४३ ॥ रेखाओंसे बाह्य देशमें ईशानकोण के विषै चरकी स्थापना करै और उसका स्थापन और पूजन यत्न पूर्वक इशावास्य इस मंत्रसे करै ॥४४॥ विदारिका रक्तवर्ण होतीहै उसका अग्निन्दूतम् इस मंत्रसे पूजन करै. पूतना पीली और हरी होतीहै उसका "नमस्स्तुत्याय" इसमंत्रसे पूजन करै ॥४५॥ पापराक्षसी काले रंगकी होतीहै उसका पूजन 'भावाय' इस मंत्रसे करै तदनन्तर बहिर्देश में पूर्वादि क्रमसे उसका पूजन करै ॥ ४६ ॥

रक्तकृष्णस्कंधघटीएह्यत्रमयमंत्रतः ॥ अर्यमादक्षिणेकृष्ण
अर्यम्णाचबृहस्पतिः ॥ ४७ ॥ पश्चिमेरक्तवर्णस्तुजंभकःपरि
कीर्तितः ॥ सरोभ्योभैरवंमंत्रंसमुच्चार्यप्रपूजयेत ॥ ४८ ॥ पि
लिपिच्छकःपीतवर्णःकारंभमरेतिमंत्रतः ॥ भीमरूपस्तथेशा
नेयमायत्वेतिरक्तकः ॥ ४९ ॥ त्रिपुरारिःकृष्णवर्णस्त्र्यंबकेत्व
ग्निकोणके ॥ अग्निजिह्वस्तुनैर्ऋत्येअसुन्वंतेतिपीतकः ५० ।

स्कन्ध, घटि, रक्त और कृष्णवर्ण "एह्यत्रमय,, इस मंत्रसे पूजा करनी चाहिये अर्यमा दक्षिणमें कृष्णवर्णकाहै और "अर्यम्णाच बृहस्पति,, इस मंत्रसे दक्षिण दिशामें पूजा करना चाहिये ॥ ४७ ॥ पश्चिममें रक्त वर्णका जम्भक कहाहै उसका पूजन 'सरोभ्योभैरवं,, इस मंत्रसे करै ॥ ४८ ॥ पिलिपिच्छिक पीत वर्णका है उसका पूजन "कारंभमर,, इस मंत्रसे करै ईशान में भीम रूप रक्त वर्णका है उसका पूजन "यमायत्वा,, इस मंत्रसे करै ॥ ४९ ॥ त्रिपुरारिका कृष्णवर्ण है उसका त्र्यम्बक इस मंत्रसे अग्निकोण में पूजनकरै नैर्ऋतमें पीतवर्णका अग्निजिह्व है उसका पूजन "असुन्वन्त,, इस मंत्रसे करै ॥ ५० ॥

करालारक्तवर्णातुवातोहत्वाहणास्थितः ॥ हेतुकः पूर्वदिक्
कृष्णोहेमन्तेऋतुनातथा ॥५१॥ अग्निबेतालकेयाम्येकृष्णो
ग्निदूतमित्यपि ॥ कालाख्याः पश्चिमेकृष्णोवरुणस्योत्तंभनं

तथा ॥ ५२ ॥ एकपादः पीतवर्णः कुविदांगेतिचोत्तरे ॥ ईशानपूर्वयोर्मध्येगन्धमाल्यश्चपीतकः ॥ ५३ ॥ गन्धद्वारेतिमन्त्रेणपूज्यमानोन्तरिक्षके ॥ नैर्ऋत्यांबुद्धिमध्यस्थोज्वालास्यःश्वेतरूपधृक् ॥ ५४ ॥

कराल रक्त वर्णका है और उसका पूजन " वातोहत्वाहणास्थितः " इस मंत्रसे करै । हेतुक पूर्व दिशामें कृष्णवर्णका है उसका पूजन "हेमन्ते ऋतुना" इस मंत्रसे करै ॥ ५१ ॥ अग्निवेताल दक्षिण दिशामें है उसका पूजन दक्षिण दिशामें " अग्निदूतम्,, इस मंत्रसे करै । काल पश्चिम दिशामें कृष्णवर्ण का है उसका " वरुणस्योत्तम्भनमसि " इस मंत्रसे पूजन करै ॥ ५२ ॥ एकपाद उत्तरमें पीत वर्णकाहै और उसका " कुविदांग " इस मंत्रसे पूजनकरै । ईशान और पूर्व दिशाके बीचमें पीत वर्णका गंधमाल्य होताहै ॥ ५३ ॥ उसका पूजन अन्तरिक्ष में " गंधद्वारा ,, इस मंत्रसे करै । नैर्ऋति दिशामें बुद्धि के मध्यमें स्थित श्वेतरूपधारी ज्वालास्यहै ॥ ५४ ॥

महीद्यौरितिमंत्रेणपूजनीयोविधानतः ॥ येवाह्यदेवताःप्रोक्ताःप्रासादेतान्प्रपूजयेत ॥ ५५ ॥ दुर्गदेवालयेचैवशल्योद्धारे तथैवच ॥ विशेषेणैवपूज्याश्चचतुःषष्टिपदंतथा ॥ ५६ ॥ कलशेस्थापयेद्देवंवरुणंवरुणीततः॥ कलशंपूरयेत्तीर्थवारिणासर्वबीजकैः ॥ ५७ ॥ सर्वौषधैःसर्वरत्नगन्धैश्चविविधस्तथा ॥ पल्लवैःपञ्चकाषायैर्मृदाशुद्धोदकेनवा ॥ ५८ ॥

इसका विधिसे पूजन " महीद्यौः ,, इस मंत्रसे करै जो बाह्य देवता कहे हैं उनका पूजन प्रसाद में करै ॥ ५५ ॥ दुर्ग और देवालय या शल्योद्धार में विशेष रीतिसे पूजन करै और चतुष्षष्ठिहै पद जिसमें ऐसे वास्तु को बनावै ॥ ५६ ॥ और कलश वरुणदेव को स्थापन करै और उस कलशमें तीर्थो का जल और सब प्रकार के बीज भरै ॥ ५७ ॥ सर्वौषधि, सर्वरत्न, और अनेक प्रकारके गन्ध पंच कषाय और पल्लव और मिट्टी ये भरै वा शुद्ध जल, भरै ॥ ५८ ॥

ग्रहाणाम्पूजनन्तत्रकारयेद्वेदिकोपरि ॥ मुरामांसीवचाकुष्ठं शैलेयंरजनीद्वयम् ॥ ५९ ॥ शठीचम्पकमुस्ताचसर्वौषधिगः

णः स्मृतः ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधसम्भवाः॥ ६० ॥ पञ्चभङ्गाइमेप्रोक्ताः सर्वकर्मसुशोभनाः ॥ तुलसीसहदेवीच विष्णुक्रान्ताशतावरी ॥ ६१ ॥ मूलान्येतान्निगृह्णीयाच्छता लाभेविशेषतः ॥ वटीर्वटोदुम्बरस्यवेतसस्यतथैवच ॥ ६२ ॥ अश्वत्थश्चैवमूलश्चपञ्चकाषायकाः स्मृता ॥ अश्वस्थानाद्ग जस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् ॥ ६३ ॥ राजद्वारप्रवेशाच्च मृदमानीयनिक्षिपेत् ॥

और वहां बेदीके ऊपर ग्रहोंका पूजन करै पुरा, जटामांसी वच, कूट, चन्दन, दोनों हलदी, ॥ ५९ ॥ शठी, चम्पा, नागरमोथा ये सर्वो-षिधी और पीपल, गूलर, पाकर आम और बड इनके पत्ते ॥ ६० ॥ पंचप-ल्लव कहेहैं और ये सब कामों में श्रेष्ठ होते हैं तुलसी सहदेवी, विष्णुक्रांता शतावर, ॥ ६१ ॥ यदि ये औषधि न मिलैं तो वड, गूलर, वेंत, ॥ ६२ ॥ पीपल, और मूल ये पांच जड़ ले इनको पंच कषाय कहतेहैं घुडसाल, हाथी शाला, बांबी, दो नदियोंका संगम ॥ ६३ ॥ और राजद्वार का प्रवेश इन से मिट्टी मंगाकर कलशमें डाले ॥

सर्वेसमुद्राः सरितःसरांसिजलदानदाः ॥६४॥ आयान्तु यजमानस्यदुरितक्षयकारकाः ॥ ६५ ॥ शिक्ष्यादिपंचचत्वा-रिंशद्दोषांस्तत्रप्रपूजयेत् ॥६६॥ वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैःप्रणवव्या-हृतिभिस्तथा ॥ होमस्त्रिमेखलेकार्यः कुण्डेहस्तप्रमाणके ॥ ६७॥ यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत्समिद्भिःक्षीरवृक्षकैः ॥ पालाशैः खादिरैर्वापामार्गोदुम्बरसम्भवैः ॥ ६८ ॥

संपूर्ण समुद्र, नदी, तलाव, और जल देनेवाले नद ॥ ६४ ॥ ये सब य-जमानके पापनाशक कलशमें आओ ॥ ६५ ॥ और कलशमें शिखी आदि पैंतालीस दोषोंका पूजन करै॥ ६६ ॥ और वह पूजन वेदके मंत्र वा प्रणवादि व्याहृतियोंसे करै और हाथभर के तीन मेखलावाले कुण्डमें होम करै ॥६७॥ और जौ कालेतिल, ढाककी लकडी, क्षीरवृक्ष, ढाक, और गूलर इनसे हवन करै ॥ ६८ ॥

कुशदूर्वामयैर्वापिमधुसर्पिःसमन्वितैः ॥ कार्यस्तुपञ्चभि-

र्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापिवा ॥६९॥ होमान्तेभक्ष्यभोज्यैश्चवा-स्तुदेशेबलिंहरेत् ॥ नमस्कारान्तयुक्तेनप्रणवाद्येनसर्वतः ॥ ७० ॥ वेदोक्तेनैवमन्त्रेणसंपूज्या देवताः क्रमात् ॥ ततो व्याहृतिभिर्होमः स्विष्टकृद्धोममेवच ॥ ७१ ॥ पूर्णाहुतिश्च जुहुयात्संस्रवप्राशनन्ततः ॥ वास्तुमंडलदेवेभ्योबलिन्दद्या द्विधानतः ॥ ७२ ॥ घृतान्नंशिखिनेदद्यात्पर्जन्यायचसो-त्पलम् ॥ जयन्तादिवास्तुमन्डलदेवेभ्योबलिन्ततः ॥७३॥

अथवा शहद मिलीहुई कुशा और दूवसे घृत मिलाकर हवन करै अथवा पंचबिल्व और बेलगिरीसे हवनकरै ॥ ६९ ॥ होमके अन्तमें भक्ष्य और भो-ज्योंसे वास्तुदेशमें नमस्कारान्त और प्रणवादि मंत्रसे बलिदान दे ॥ ७० ॥ क्रमसे वेदोक्तमंत्रोंसे देवताओंका पूजन करै फिर व्याहृतियोंसे हवन करै और स्विष्टकृत् होम करै ॥ ७१ ॥ फिर पूर्णाहुतिका हवन करै और संश्रवका प्रा-शन अर्थात् श्रुवाके घीका भक्षण करै और विधिसे वास्तुमण्डलदेवताओंको बलि दे ॥ ७२ ॥ शिखीको घृतान्न दे और पर्जन्यको घृतान्न और कमलकी बलिदे फिर जयन्तआदि वास्तुमण्डलदेवताओंको बलि दे ॥ ७३ ॥

कुलिशायुधायपञ्चरत्नंपौष्टिकसंभवम् ॥ कौशंसूर्यायधू म्ररक्तवितानापूपसक्तवैः ॥७४॥ सत्यायघृतगोधूमंमत्स्यान्न ञ्चभृशायच ॥ अन्तरिक्षायशष्कुलीमांसंवापिचशाकुनम् । ७५॥ वायसेसक्तवः प्रोक्ताः पूष्णेलाजाःस्मृताबुधैः ॥ वि तथायचणकान्नमध्वन्नञ्चगृहक्षते ॥७६॥ यमायपिशिता-न्नन्तुगन्धर्वायगंधौदनम् ॥ भृंगराजायमेषस्यजिह्वायाश्च बलिंहरेत ॥७७॥ मृगाययावकन्दद्याद्बलिन्नीलपदस्तथा ॥ पितृभ्यःकृशरान्नञ्चतथादौवारिकायच ॥ ७८ ॥

कुलिशायुधको पंचरत्न और पुष्टिके पदार्थ दे सूर्यको कुशा और धूम्र, रक्त चंदोबा, मालपूआ और सत्तू दे ॥ ७४ ॥ सत्यको घी और गेंहू दे और भृशको मत्स्य और अन्न दे अन्तरिक्षको शष्कुलि (पूरी] और पक्षियोंका मांस दे ॥ ७५ ॥ वायसको सत्तू और पूषाको खील बुद्धिमान मनुष्योंने व-र्णनकी हैं वितथको चणकान्न और गृहक्षतको मध्वन्न ॥ ७६ ॥ यमको मांस

गन्धर्वको गन्धौदन, और भृंगराजको मेंढ की जिह्वाकी बलि दे ॥ ७७ ॥ मृगको और नीलपदको जौकी बलि दे, पितर और दौवारिकको खिचडी की बलि दे ॥ ७८ ॥

दंतकाष्ठकृष्णापिष्टंदंतधावनमेवच ॥ सुग्रीवायअपूपञ्च यावकन्तुतथैवच ॥७९॥ पुष्पदंतायपायसंवरुणायतथैवच ॥ कुशस्तम्भञ्चयमञ्चपैष्टंहैरण्मयन्तथा ॥ ८० ॥ असुरायसुरा प्रोक्ताशोषायचघृतौदनम् ॥गोधायावैयक्ष्मणेचरोगायघृतमोद नम् ॥८१॥ अहयेफलपुष्पाणिनागकेशरइत्यपि ॥ मुख्याय घृतगोधूमंभल्लाटेमुद्गमोदनम् ॥ ८२ ॥ सोमायपायसघृतंना गेपौष्टिकशालकम् ॥ ॥ अदित्यैपौलिकादित्यैपूरिकाया वलिःस्मृत: ॥ ८३ ॥

सुग्रीव को दांतन, मिस्सी, दांत और काष्ठ पूडे और जौ की बलिदे ॥ ७९ ॥ पुष्पदन्त और वरुण को पायस की वलि दे, यम को कुशा का स्तंभ, पिठी और सुवर्ण की वलि दे ॥ ८० ॥ असुर को मदिरा की, और शोष को घृतौदन की वलि देवै, पापयक्ष्मा को गोह की और रोग को घी और ओदन की वलि दे, ॥ ८१ ॥ अहि को फल पुष्प और नागकेसर की वलि दे,मुख्य को घी और गेहूं की और भल्लाट को मूंग तथा औदन की वलिदे ॥ ८२ ॥ सोम को पायस की, नाग को पुष्टि के पदार्थ और शालीचांवल की, अदिति को रोटियों की, और दिति को पूरियों की वलि दे ॥ ८३ ॥

अद्भ्योपिक्षीरञ्चतथासाबित्रेचकुशौदनम् ॥ लड्डुकंमरि चञ्चैवजयायघृतचंदनम् ॥ ८४ रुद्रायपायसगुडमर्यम्णेशर्क रान्वितम् ॥ पायसञ्चसबित्रेतुगुडापूपबलिःस्मृतः ॥८५॥ बिबस्वतेतथादेयंरक्तचंदनपायसम् ॥ इंद्रायसघृतंदेयंहरिता लौदनंतथा ॥ ८६ ॥ घृतौदनञ्चमित्रायआममांसंमधुस्तथा राजयक्ष्मणेचपृथ्वीधरायचामितौजसे ॥ ८७ ॥ मांसानि कूष्माण्डमितिआपबत्सायवेदधि ॥ ब्रह्मणेपञ्चगव्यंचयबांति लाक्षतन्दधि ॥ ८८ ॥

जलोंको दूध, सविता को कुशोदन और जयको लड्डू और मिर्च, रुद्र-को घी और चंदन ॥ ८४ ॥ अर्यमा को पायस और गुड तथा खांड मिली हुई खीर दे । सविता को गुड और अपूपों की बलि ॥ ८५ ॥ विवस्वान् को रक्तचंदन और पायसकी बलि दे, इन्द्रको घी मिली हुई हडताल और ओदनकी बलि दे, ॥ ८६ ॥ मित्रको घृतौदन कच्चे मांस और शहत की बलि-दे, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और मितौजस इन को ॥ ८७ ॥ मांस और कूष्माण्डकी बलि दे और आपवत्सको दधिकी बलि दे ब्रह्माको पंचगव्य, जौ, तिल, अक्षत, और दही की बलि दे ॥ ८८ ॥

विविधान्भक्ष्यभोज्यांश्चफलानिविविधानिच ॥ एवंदत्त्वाबलिंसम्यग्दद्यात्तेभ्योहिरण्मयम् ॥ ८९ ॥ प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैर्नाममन्त्रेणमन्त्रवित् ॥ सर्वेभ्योपिहिरण्यञ्चब्रह्मणे गांपयस्विनीम् ॥ ९० ॥ अथवापायसंदद्यात्सर्वेभ्यश्चसदीपकम् ॥ ततोबाह्यस्थितानान्तुबलिंदद्याद्विधानतः ॥ ९१॥

अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य और अनेक प्रकार के फल सम्पूर्ण देवताओं को दे इस पूर्वोक्त रीति से भली प्रकार बलि देकर सब देवताओं को सुवर्ण दे ॥ ८९ ॥ और ये संपूर्ण प्रणव जिनकी आदि में और चतुर्थीविभक्ति जिन के अन्त में ऐसे नाम मंत्रों से मंत्रके ज्ञाता को देवे और सब देवताओं को सुवर्ण की दक्षिणा दे और ब्रह्मा को दूध देती हुई गौ दे ॥ ९० ॥ अथवा सब देवताओं को दीपक और खीर दे फिर विधिपूर्वक बाह्य में स्थित देवताओं को बलि दे ॥ ९१ ॥

चरक्यैमाषभक्तञ्चसघृतंपद्मकेशरम् ॥ हविश्चैवतथाग्नेये वितानकाविदारिके ॥ ९२ ॥ माषभक्तंसरुधिरं हरिद्राभक्तमेवच ॥ नैर्ऋत्याञ्चपूतनायैमाषभक्तेनसंयुतम् ॥ ९३ ॥ रुधिरास्थिपीतरक्तम्बलिंदेव्यैनिवेदयेत् ॥ वायव्येपापराक्षस्यैमत्स्यमांससुरासवम् ॥ ९४ ॥ ततः प्रागादितोदिक्षुस्कंदायरुधिरंसुराः ॥ अर्यम्णेमाषभक्तञ्चदक्षिणेविनिवेदयेत् ॥ ९५ ॥ जंभकायतथामांसंरुधिरंपश्चिमेन्यसेत् ॥ पिलिपिच्छकायोत्तरेचअसृग्यमबलिः स्मृतः ॥ ९६ ॥

चरकी को उड़दों का भात और घी सहित पद्मकेशर और दही दे और अग्निकोण में विदारिका को चंदोवा ॥ ९२ ॥ माष का भक्ततथा रुधिर और हरिद्राभक्त दे और नैर्ऋतमें पूतना को माषभक्त से मिले हुए ॥९३। रुधिर अस्थि और पीत रक्त की बलि पूतना को दे और वायव्य में पापराक्षसी को मत्स्य का मांस और सुरासव ॥ ९४ ॥ फिर पूर्व आदि दिशाओं में स्कंध को रुधिर और सुरा दे, दक्षिण में अर्यमाको उरद का भात दे,॥९५॥ पश्चिम में जंभक को मांस और रुधिर दे, उत्तर में पिलिपिच्छ को रुधिर की बलि दे ॥ ९६ ॥

इत्येतेषान्देवतानांबलिन्दद्याद्विधानतः ॥ प्रासादादौ तथैतेषांबलिंदद्यात्प्रयत्नतः ॥ ९७ ॥ भीमरूपायईशानेक पोतकसुराबलिः ॥ बसारुधिरमांसानांकृशरायास्तथैवच ॥९८ ॥ आग्नेयादितिसन्धारीत्रिपुरान्तकरूपधृक् ॥ अग्नि· जिह्वस्तुनैर्ऋत्येदुग्धंसैंधवसंयुतम् ॥ ९९ ॥ मांसञ्चरुधिर· न्देयन्तस्मैदिक्पालिनेनमः ॥ करालिकेपक्वमांसंरुधिरंसैन्धव- म्पयः ॥ ६०० ॥

इस तरह इन देवताओंको विधिपूर्वक बलि दे, और ऐसेही प्रासाद आदिमें इनको भली प्रकारसे बलि दे ॥ ९७ ॥ ईशान मेंभीम रोगको कपोत और सुराकी बलि दे, और चर्बी, रुधिर, मांस और खिचडी की बलि भीदे ॥९८॥ आग्नेयमें अदिति सन्धारि त्रिपुरान्तक रूपधृक् और नैर्ऋतमें अग्निजिव्ह को सैन्धव नमक मिले हुए दूध की बलि दे ॥ ९९ ॥ और मांस रुधिर की बलि उस दिक्पाल को नमस्कार है यह कह करदे करालिकको पकाया हुआ मांस, रुधिर, सैन्धव, और दूध की बलि दे ॥ ६०० ॥

हेतुकेपूर्वदिग्भागेबलिः स्यात्पायसह्यसृक् ॥ अग्निवेता लिकेयाम्येरुधिरंमांसमेवच ॥ १ ॥ कालाख्ये पश्चिमेदद्या द्बलिंमांसोदनस्यच ॥ एकपादेउत्तरस्यांकृशरायाबलिस्तथा ॥ २ ॥ आग्नेयपूर्वयोर्मध्येगन्धमाल्यैर्वितानकम् ॥ नैर्ऋ- त्यपश्चिमान्तस्थोज्वालास्यः परिकीर्तितः ॥ ३ ॥ तस्मैद- ध्यक्षतयुतंमोदकानिचदापयेत् ॥ दिक्पालानाम्बलिन्दत्वा

क्षेत्रपालबलिन्ततः ॥ ६०४ ॥ आगमोक्तेनमन्त्रेणवेदमन्त्रेणवैतथा ॥ नमोभगवतेक्षेत्रपालायत्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाधिदेवायनिर्जितायभारभासुरित्रिनेत्रायस्वाङ्गकिङ्किणिज्वालासुखभैरवरूपिणेतुरुमुरुमुरुलललषषषषकेङ्कारदुरितदिङ्मुखमहाबाहोअद्यकर्त्तव्येवास्तुकर्मणिअमुकंयजमानं पाहिपाहिआयुष्कर्ताक्षेमकर्ताभवअमुंपशुंदीपसहितंमुण्डंमाषभक्तबलिंगृह्ण गृह्णस्वाहा॥६०५॥ इतिबलिंदत्वा॥नैर्ऋत्यान्दिशिभूतेभ्योसन्ध्याकालेविशेषतःबलिंदद्याद्विधानेनमन्त्राविन्नक्तभुग्यमी॥ पुरोहितस्तथायाज्यंगुडौदनमथापिवा॥६०६॥कुल्माषेणतुसम्मिश्रैर्यावकापूपसंयुतः ॥ बहुपक्वान्नसंयुक्तैर्बालक्रीडनकैस्तथा ॥ ६०७ ॥ फलैश्चदाडिमोबीजैः कालपुष्पैर्मनोरमैः मात्रानानाशनमिताबलिकर्मणिचोदिताः ॥ ६०८ ॥

हेतुकको पूर्व दिशा में पायस और रुधिर की बलि दे अग्नि वैतालिक को दक्षिण में रुधिर और मांस की बलि दे ॥ १ ॥ पश्चिम में कालाख्य को मांसौदन की बलि दे, उत्तर में एकपाद को खिचडी की बलि दे ॥ २ ॥ अग्नि और पूर्वके मध्य में वितानक को गन्धमाल्य दे, नैर्ऋत और पश्चिम के बीच में ज्वालास्य देवता होता है ॥ ३ ॥ उसको दही और अक्षतों से युक्त मोदक दे दिक्पालों को बलि देकर फिर क्षेत्रपालको आगमोक्तमंत्र वा वेदोक्त मंत्रसे बलि दे ॥ ४ ॥ क्षेत्रपाल की बलिका मंत्र यह है " नमो भगवते-क्षेत्र पालायसे''लेकर गृह्ण गृह्ण स्वाहा " तक मंत्र पढकर बलि दे ॥ ५ ॥ सायंकाल के समय नैर्ऋत दिशा में भूतों को शास्त्रोक्त विधि से बलि दे और रात्रिमें भोजन करे संयम से रहे और पुरोहित यजमान गुडौदन ॥ ६ ॥ कुल्माष जिनमें मिलाहो ऐसे जौ और बहुत से पक्वान्न जिनमें मिले हों और बालकों के खिलौने, ॥ ७ ॥ फल, अनार के बीज और सामयिक मनोहर फूल इनका थोडा थोडा बलिदान दे ॥ ८ ॥

॥ बलिदान के मंत्र ॥

मन्त्राः ॥ देव्योदेवामुनीन्द्राभूर्भुवनपतयोदानवाः सर्व

सिद्धा यक्षारक्षांसिनागागरुडमुखखगागुह्यकादेवदेवाः ॥ डाकिन्योदेववेश्याहरि दधिपतयो मातरोविघ्ननाथाः प्रेता भूताः पिशाचाः पितृवननगराद्याधिपाः क्षेत्रपालाः ॥ ९ ॥ गन्धर्वाः किन्नरास्सर्वेजटिलाः पितरोग्रहाः ॥ कूष्माण्डाः पूतनारो गाज्वरावैतालिकाः शिवाः ॥ ६१० ॥ असृक्प्लुताश्चापि शुनाभक्षमांसान्यनेकशः ॥ लंबक्रोडास्तथाह्रस्वा दीर्घाः शुक्लास्तथैवच ॥ ६११ ॥

उनके मंत्र ये हैं कि देवी, देवता, मुनींद्र, त्रिभुवन पति, दानव, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग, गरुडादिपक्षी गुह्यक, देव, डाकिनी, देवताओंकी वेश्या, हरि, समुद्रके पति, मातर, विघ्ननाथ, प्रेत,भूत, पिशाच, पितृगण, और नगर आदिके अधिपति और क्षेत्रपाल ॥ ९ ॥ गन्धर्व, किन्नर, जटाधारी पितर, ग्रह, कूष्माण्ड, पूतना रोग, ज्वर, वैतालिक शिव ॥ १० ॥ रुधिर से युक्त पिशुन मंसाहारी लम्बक्रोड और दीर्घ शुक्ल ॥ ११ ॥

खंजाःस्थूलास्तथैकाक्षानानापक्षिमुखास्तथा॥व्यालास्या उष्ट्रवक्त्राश्चअवक्त्राः क्रोडवर्जिताः ॥ ११२ ॥ धमनाभास्तमालाभाद्विपाभामेघसन्निभाः ॥ गवलाभाः क्षितिनिभाअशनिस्वनसन्निभाः ॥ ६१३ ॥ द्रुतगाश्चमनोगाश्चवायुवेग समाश्चये ॥ बहुवक्त्राबहुशिराबहुबाहुसमन्विताः ॥ ६१४॥

पक्षियोंके समान मुख वाले उष्ट्रमुख, मुख हीन, क्रोडहीन, ॥ १२ ॥ धमन वा तमाल हाथी वा मेघके समान कान्ति वाले,बगलेके समान, क्षितिके तुल्य, और वज्रके समान शब्द वाले, शीघ्रगामी पवनके समान जिनका वेग और वायुके तुल्य वेग वाले,अनेक मुख, अनेक शिर, अनेक भुजावाले ॥१४।

बहुपादाबहुदृशःसर्प्पाभरणभूषिताः ॥ विकटामुकुटाःकेचित्तथावैरत्नधारिणः ॥ १५ ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशाविद्युत्सदृशवर्चसः॥ कपिलाहुतभुग्वर्णाः प्रमथाबहुरूपिणः १६ ॥ गृह्णन्तुबलयस्सर्वेतृप्तायान्तुबलिर्नमः ॥ आचार्यस्तुततोनीत्वाकलशंमन्त्रमन्त्रितम् ॥ १७ ॥ स्वयम्प्रत्यङ्मुखोभूत्वा-

प्राङ्मुखंयजमानकम् ॥ स्वशाखोक्तेनमन्त्रेणआगमोक्तेनवा-
तथा ॥ १८ ॥ स्नापयेत्कुम्भतोयेनमंत्रैः पौराणिकैस्तथा ॥
वैदिकैर्वातथामन्त्रैः सवस्त्रस्थः कुटुंबवान् ॥ १९ ॥ सदार
पुत्रमेतस्ययजमानस्यऋत्विजाः ॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चतुयेच
सिद्धाः पुरातनाः ॥ २० ॥

बहुत चरण वाले, बहुत नेत्रवाले, सर्पोंके आभूषणों से भूषित, विकट रूप, मुकुटके धारी, और रत्नधारी ॥ १५ ॥ जिनका कोट सूर्यके समान तेज है और बिजली के समान दमक है जिनका कपिल रंग है और अग्निके समान वर्ण है और जो प्रमथ और बहु रूप धारी हैं ॥१६ ॥ ये सब बलिको ग्रहण करो और तृप्त होकर जाने बालेके प्रति नमस्कार है ॥ बलिके पीछे के कृत्य। येहैंकि आचार्य मत्रोंसे अभिमंत्रित किये हुए कलशको लेकर ॥ १७ ॥ पश्चिमको मुख करके पूर्वाभिमुख बैठे हुए यजमानको अपनी शाखामें कहे हुए मंत्रसे अथवा वेदोक्त मंत्रसे ॥ १८ ॥ और पौराणिक मंत्रोंसे, और वेद-मंत्रोंसे वस्त्र और कुटुम्ब सहित उक्त यजमानको घटके जलसे स्नान करवावै ॥ १९ ॥ स्त्री और पुत्रसहित यजमानको ऋत्विजभी स्नान करावै देवता और जो पुरातन सिद्ध हैं वे भी यजमानका अभिषेक करें ॥ २० ॥

* अभिषेक के देवता *

ब्रह्माविष्णुश्चशम्भुश्चसाध्याश्चसमरुद्गणाः ॥ आदित्या-
वसवोरुद्राअश्विनौचभिषग्वरौ ॥ ६२१ ॥ अदितिर्देवमाता-
चस्वाहासिद्धिः सरस्वती ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः श्रीश्चसिनीवा-
लीकुहूस्तथा ॥ ६२२ ॥ दितिश्चसुरसाचैवविनताकद्रुरेवच ।
देवपत्न्यश्चयाः प्रोक्तादेवमातरएवच ॥ ६२३ ॥ सर्वास्त्वा-
माभिषिञ्चन्तुशुभाश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥ नक्षत्राणि मुहूर्त्ताश्च-
याश्चाहोरात्रसन्धयः ॥ ६२४ ॥ सम्वत्सरादिनेशाश्चकला
काष्ठाक्षणालवाः ॥ सर्वेत्वामभिषिञ्चन्तुकालस्यावयवाः
शुभाः ॥ ६२५ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, साध्य, मरुद्गण, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार ॥ ६२१ ॥ माता अदिति, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी,

द्युति, श्री, सिनीवाली, कुहू ॥ ६२२ ॥ दिति, सुरसा, विनता, कद्रु, देवताओं की पत्नी, देवताओं की माता ॥ ६२३ ॥ ये सब हे यजमान आपका अभिषेक करो । मङ्गलीक अप्सराओं के गण, नक्षत्र, मुहूर्त, अहोरात्रि की संधि, ॥ ६२४ ॥ सम्वत्सर दिन के स्वामी, कला, काष्ठा, क्षण, लव और शुभफल दायक काल के भाग हे यजमान ये सब आपका अभिषेक करो ॥ ६२५ ॥

एतेचान्येचमुनयोवेदव्रतपरायणाः ॥ सशिष्यास्तेभिषिंचन्तुसदानाश्चतपोधनाः॥ २६ ॥वैमानिकाः सुरगणाः सर्वैः सागरैः सह ॥ मुनयश्चमहाभागानागाः किम्पुरुषाः खगाः ॥२७॥ वैखानसामहाभागाद्विजावैहायनाश्चये । सप्तर्षयः सदाराश्चध्रुवस्थानानियानि च ॥ २८ ॥ मरीचिरत्रिःपुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ भृगुः सनत्कुमारश्चसनकोथसनन्दनः ॥ २९ ॥ सनातनश्चदक्षश्चजैगीषव्योभगन्दनः एकतश्चद्वितश्चैवत्रितोजाबालिकश्यपौ ॥ ३० ॥ दुर्वासादुर्विनीतश्चकण्वः कात्यायनस्तथा ॥ मार्कण्डेयोदीर्घतपाः शुनःशेफोविदूरथः ॥ ३१ ॥ और्वः संवर्तकश्चैवच्यवनोत्रिः पराशरः ॥ द्वैपायनोयवक्रीतोदेवराजः सहानुजः ॥ ३२ ॥ पर्वतास्तरवोवल्ल्यः पुण्यान्यायतनानिच ॥ प्रजापतिर्दितिश्चैवगावोविश्वस्यमातरः ॥ ३३ ॥ वाहनानिचदिव्यानिसर्वेलोकाश्चराचराः ॥ अग्नयः पितरस्ताराजीमूताःखंदिशोजलम् ॥ ३४ ॥ एतचान्येचबहवोवेदव्रतपरायणाः ॥ सेन्द्रादेवगणाःसर्वेपुण्यश्रवणकीर्तनाः ॥ ३५ ॥ तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तुसर्वोत्पातानिबर्हणे ॥ यथाभिषिक्तोमघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥ ३६ ॥

ये सब देवता और अन्य वेदव्रतिपरायण मुनि हैं वे शिष्यों सहित दानी और तपोधन अपने यजमान आपका अभिषेक करो ॥ ६२६ ॥ विमान में बैठेहुए देवगण, सशब्द समुद्र महाभागी मुनि, नाग, किंपुरुष, पक्षी ॥६२७

महाभगी, वैखानस, आकाशगामी पक्षी, सस्त्रीक सप्त ऋषि और जो ध्रुव. स्थानहै ॥ ६२८ ॥ मरीच, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, भृगु, सनतकुमार, सनक, सनंदन, ॥ ६२९ ॥ सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, भगन्दन, एकत, द्वित, त्रित, जाबालि, कश्यप, ॥ ६३० ॥ दुर्वासा, दुर्विनीत, कण्व, कात्याय, और दीर्घ मार्कण्डेय, शुनःशेफ, यशस्वी, विदूरथ, ॥ ६३१ ॥ और्व, संवर्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन, यवक्रीत, और अनुजों सहित देवराज, ६३२ पर्वत, वृक्ष, वल्ली, और पुण्य स्थान प्रजापति, दिति, और विश्व की माता गौ ॥ ६३३ ॥ दिव्य वाहन, चराचर लोक, अग्नि, पितर, तारा, मेघ, आकाश, दिशा, जल, ॥ ६३४ ॥ और वेदव्रत में परायण अन्य बहुत से ऋषि, इन्द्र सहित देवगण और सब यशस्वी महात्मा ॥ ६३५ ॥ सम्पूर्ण उत्पातों की शान्ति के लिये जलों से आपका इस तरह अभिषेक करो जैसे प्रसन्न मन से इन्होंने इन्द्र का अभिषेक किया है ॥ ६३६ ॥

इत्येतैश्चार्थकल्पाभिः सहितैः समरुद्गणैः ॥ अभिषेकंप्रकुर्वीतमन्त्रैः पौराणिकैस्तथा ॥ ३७ ॥ ततः शुद्धोदकैः स्तानंयजमानस्यकारयेत् ॥ वास्तुमण्डलमध्येतुब्रह्मस्थानेप्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ सुरूपांपृथिवींदिव्यरूपाभरणसंयुताम् ॥ स्त्रीरूपांप्रमदावेशधारिणींसुमनोहराम् ॥ ३९ ॥ महाव्याहृतिपूर्वेणपूजयेत्तांधरांपुनः॥धारयेतिचमन्त्रेणसंप्रार्थ्यचपुनः पुनः ॥ ४० ॥ सर्वदेवमयोवास्तुवास्तुदेवमयंपरम् ॥ ततः स्वनाममन्त्रेणध्यात्वातत्रचपूजयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थके जाननेमें समर्थ इन देवताओंका नाम लेलेकर मरुद्गण सहित पौराणिक मंत्रोंसे अभिषेक करो ॥ ३७ ॥ तदनन्तर शुद्धजलोंसे यजमान का अभिषेक कराकै फिर वास्तुमण्डल में ब्रह्माके स्थानमें उस पृथ्वीका पूजनकरै ॥ ३८ ॥ जो दिव्य रूपवती, आभूषणों को धारण कियेहुए स्त्रीरूप है और प्रमदावेष धारिणी और मनोहर है॥ ३९ ॥ महाव्याहृत्यादि मंत्रसे पृथ्वीका पूजन करै और "धारय" इस मंत्रसे बार बार प्रार्थना करके ॥ ६४० ॥ वास्तु सर्व देवरूप है और वास्तु देवतारूप है फिर अपने नाममंत्रसे ध्यान करके पूजन करै ॥ ४१ ॥

ततश्चतुर्मुखंदेवंप्रजेशंचाह्वयेत्ततः ॥ गन्धादिभिश्चतं-

पूज्यप्रणम्यचपुनः ॥ ४२ ॥ वास्तुपुरुषनमस्तेस्तुभूमिशय्यारतप्रभो ॥ मद्गृहेधनधान्यादिसमृद्धिंकुरुसर्वदा ॥ ४३ ॥ वाचयित्वाततः स्वस्तिकर्कस्थंपरिगृह्य च ॥ सूत्रमार्गेणतोयस्यधाराप्रदक्षिणेनच ॥ ४४ ॥ पातयेत्तेनमार्गेणसर्वबीजानि चैवहि ॥ सर्वबीजजलैरेवतन्मार्गेणापिसञ्चरेत् ॥ ४५ ॥

फिर प्रजाके पति चतुर्मुख ब्रह्मदेवका आवाहन करै फिर गन्धआदि से उसका वारम्वार पूजन और प्रणाम करिके कहै कि ॥ ४२ ॥ हे वास्तुपुरुष, हे भूमिशय्या में रत, हे प्रभो ! आपको नमस्काररहै मेरे घरमें धनधान्य आदि की सदैव समृद्धिकरिये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर स्वस्तिवाचन कराकर कर्क को लेकर सूत्रमार्ग से दाहिनी ओर को जलकी धार ॥ ४४ ॥ यजमानसे गिरावै और उसी जलके साथ सब बीजोंको गिरवावै और सर्व बीजके जलोंकोभी उसी मार्गसे गिरवावै और यजमानभी उसी मार्गसे गमन करै ॥ ६४५ ॥

इतिवास्तुविधानन्तुकृत्वातांस्नानमण्डपात् ॥ ४६ ॥ समानीयाशिलान्तत्रसूत्रधारोगुणान्वितः ॥ ४७ ॥ तत्रदिक्साधनंकुर्याद्गृहमध्येसुसाधिते ॥ ईशानादिक्रमणवस्वर्णकुद्दालकेनतु ॥ ४८ ॥ खनित्वाकोणभागेतुमध्येचैवविशेषतः नाभिमात्रेतथागर्तेशिलानांस्थापनंशुभम् ॥ ४९ ॥

इस तरह वास्तुविधानको करके गुणोंसे युक्त सूत्रधार उस शिलाको शिलामण्डपसे भली प्रकार आकर ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सुसाधित घरके बीचमें दिशाका साधन करै अर्थात् शिलास्थापनके देशका निश्चय करै ईशान आदि दिशाओंके क्रमसे सुवर्णकी कुदाली से ॥ ४८ ॥ कोणभागमें और विशेष बीचके भागमें खोदकर नाभिपर्यन्त गढेमें शिलाको स्थापन करना शुभ कहा है ॥ ४९ ॥

शिलास्थापन समयके शकुन ॥

सूत्रच्छेदेभवेन्मृत्युः कीलेचावाङ्मुखेगदः॥ स्कन्धाच्च्युतेशिरोरोगंकराद्गृहपतेः क्षयः ॥ ६५० ॥ गृहेशस्थपतीनाञ्च स्मृतिलोपोथमृत्युदः॥भग्नेकीर्तिवधःकुम्भेकुलस्योत्सर्गवर्जिते

॥ ६५१ ॥ सूत्रेप्रसार्य्यमाणेतुगर्दभोयदिरौतिचेत् ॥ तत्रास्थि शल्यंजानीयाच्छ्वशृगालाद्यैर्लङ्घितम् ॥ ६५२ ॥ रविर्दीप्ता दिशियातुतत्रचेत्परुषोरवः ॥ संस्पृष्टाङ्गसमानेचतस्मिञ्छल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ६५३ ॥ शिलाविन्यासकालेतुवासन्तेद्विरदा दयः ॥ तस्मिंस्तद्देहसंभूतमस्थिशल्यंविनिर्दिशेत् ॥ ६५४ ॥

शिलास्थापन के समय सूत्र टूटने से मृत्यु, कीलका के अधोमुख होनेसे रोग, कंधेसे गिरै तो शिरका रोग, हाथसे गिरै तो स्वामीका नाश होता है ॥ ६५० ॥ यदि स्वामी और स्थपतिको इनके स्मरणका लोप होजाय तो मृत्यु देताहै, यदि विसर्जन से पहिले कलश टूटजाय तो कुलकी कीर्ति का नाश होता है ॥६५१॥ यदि सूत्रके फैलाने के समय गधा रेंकै तो उस स्थानमें आपत्ति समझे और कुत्ता तथा शृगाल सूत्रको लांघ जांय तोभी दुःख होताहै ॥६५२॥ सूर्यसे प्रकाशित दिशा में कठोर शब्द होतो जिस अंगसे सूत्रका स्पर्श होय उसके समान अंगमें विघ्न होताहै ॥६५३॥ शिला के स्थापन के समय हाथी शब्द करै तो उस वास्तुमें देहमें उत्पन्न हुए अस्थिमें शल्यको कहै ॥ ६५४ ॥

कुब्जंवामनकंभिक्षुंवैद्यंरोगातुरानपि ॥ दर्शनंसूत्रकाले तुवर्जयेच्छ्रियमिच्छता ॥ ६५५ ॥ श्रुतौहुलहुलानाञ्चमेघा नाङ्गर्जितेनच॥ गर्जतामपिसिंहानांस्वनितंधनदम्भवेत्६५६ सूत्रेप्रसार्य्यमाणेतुदीप्तोग्निर्यदिदृश्यते ॥ पुरुषोघोटकारूढोभ वेद्राज्यमकण्टकम् ॥ ६५७ ॥ शंखतूर्य्यादिनिर्घोषैवस्तुभिर्वि पुलंगृहम्॥योषिताङ्कन्यकानाञ्चक्रीडनंवित्तवर्द्धनम् ।६५८।

सूत्रके रखने के समय कुब्ज, बामन, भिक्षु, वैद्य, रोगी, इनके दर्शन लक्ष्मी चाहनेवालों को उचित नहींहै ॥ ६५५ ॥ हुलहुल शब्दका सुनना, मेघकी गरजन और सिंह का जो शब्द ये सूत्र रखने के समय में हों तो धनके देनेवाले होतेहैं ॥ ६५६ ॥ सूत्रके फैलाने के समय जो जलती हुई अग्नि अथवा घोडेका सवार दीखे तो निष्कंटक राज्य होताहै ॥ ६५७ ॥ शंख, तुरई आदि बाजोंका शब्द हो तो घरमें सदा वस्तु भरी रहती हैं और

स्त्री और कन्याओंकी जो क्रीडा सूत्र रखने के समयमें हो तो धनकी वृद्धि होतीहै ॥ ६५८ ॥

प्रारम्भेचशुभागेहगोपनेमृत्युरोगदा ॥ स्तम्भाद्यारोपणेमध्याप्रवेशेवृष्टिरुत्तमा ॥ ६५९ ॥ दारूणाञ्छेदनेचैवदुःखशोकामयप्रदा ॥ परीक्षासमयेचैवनतुसौख्यप्रदास्मृता ॥६६०॥ छत्रध्वजपताकानान्दर्शनेनिधिसंभवः ॥ पूर्णकुम्भेतुसंप्राप्तिःस्थैर्य्यङ्कलकलध्वनौ ॥ ६६१ ॥ गृहकोणेषुसर्वेषुपूजांकृत्वा विधानतः ॥ ईशानमादितः कृत्वाप्रादक्षिण्येनविन्यसेत् ॥ ६६२ ॥ अनेनैवविधानेनस्तंभद्वारादिरोपणम् ॥ वास्तुविद्याविधानन्तुकारयेत्सुसमाहितः ॥ ६६३ ॥

ये सब घरके प्रारम्भ में शुभहैं और गृहके छावने में मृत्यु और रोग को देते है और स्तंभ आदिके रखनेमें मध्यमें और प्रवेशके समय वर्षा का होना उत्तम है ॥ ६५९ ॥ काष्ठके छेदनमें दुःख शोक रोगको देताहै और परीक्षाके समयमें भी सुखदायी नहीं कहेहैं ॥ ६६० ॥ यदि सूत्र रखनेके समय छत्रध्वजा पताकाओंका दर्शन होयतो खजाना मिलै यदि घट जलसे पूर्णरहे तो प्राप्ति और कलकल शब्द होय तो स्थिरता होती है ॥ ६१ ॥ घरके सब कोणोंमें विधिपूर्वक पूजा करके ईशान दिशामें प्रदक्षिण क्रमसे सूत्रको रक्खें ॥ ६२ ॥ और इसी विधिसे स्तंभ और द्वारआदि का आरोपण करना चाहिये और अच्छी तरह सावधानीसे वास्तुविद्या की विधिको करै ॥ ६६३ ॥

नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णानाम्नीयथाक्रमम् ॥ नन्दायाम्पद्ममालिख्यभद्रासिंहासनन्तथा ॥ ६६४ ॥ जयायान्तोरणंछत्रंरिक्तायाङ्कूर्म्ममेवच ॥पूर्णायाञ्चचतुर्बाहुविष्णुंसंलेखयेद्बुधः ॥ ६६५ ॥ ॐभूर्भुवः स्वरितितथासर्वानावाहनंस्मृतम् ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चईशानश्चसदाशिवः ॥ ६६६ ॥ एतेपंचैव पञ्चेषुभूतानांवाहयेत्पुनः ॥ स्नपनञ्चततः कुर्य्याद्विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ ६६७ ॥

नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, और पूर्णा नामकी जो शिलाहैं उनमें से नन्दामें पद्मको लिखें भद्रामें सिंहासन, ॥ ६३ ॥ जयामें तोरण, रिक्तामें छत्र और कर्म और पूर्णामें चतुर्भुज विष्णुको लिखे ॥ ६६५ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः०- इस मंत्रको पढकर सबका आवाहन करै । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान और सदाशिव ॥ ६६ ॥ इन पाचों का आवाहन करै और इन पांचों में फिर भूतोंका आवाहन करै फिर शास्त्रोक्त विधिसे पांच कलशोंसे स्नान करावै ॥ ६७ ॥

पञ्चभिः कलशैर्युक्तास्तासान्नामान्यतः शृणु ॥ पद्मश्चैवमहापद्मंशंखञ्चाविजयन्तथा ॥ ६६८ ॥ पंचमंसर्वतोभद्रम्मन्त्रेणावाहयेत्तुतम् ॥ अग्निर्मूर्द्धेतिचमृदायज्ञयज्ञेतिवारुणैः ॥ ६६९ ॥ अश्वत्थेतिकषायेणपल्लवेनजलेनच ॥ गायत्र्याचगवाम्मूत्रैर्गन्धद्वारेतिगोमयैः ॥ ६७० ॥ आप्यायस्वेतिक्षीरेणदधिक्राव्णेतिवैदधि ॥ घृतवतीतिघृतेनचमधुवातेतिवैमधु ॥ ६७१ ॥ पयः पृथिव्यामितिचपञ्चगव्येनसंस्नपेत् ॥ देवस्यत्वेतिचकुशैः काण्डात्काण्डाच्चदूर्वया ॥ ६७२ ॥ गन्धद्वारेतिगन्धेनपञ्चगव्येनवैतथा ॥ याओषधीरोषधीभिर्याः फलिनीतिफलोदकैः ॥६७३॥ नमस्तेतिवृषशृंगमृदाधान्यमसीतिच॥ धान्यादीञ्जिघ्रमितिचकलशेनतथैवच ॥ ६७४ ॥ ओषधयइत्यक्षतैश्चयवोसीतियवोदकैः ॥ तिलोसीतितिलैः पंचनद्येतिचनदीजलैः ॥ ६७५ ॥ इमम्मेगङ्गेतिचतथातीर्थानामुदकेनच ॥ नमोस्तुरुद्रेभ्योमृदानगदंतिसमुद्भवात् ॥ ६७६ ॥ स्योनापृथिवीचमृदासीतायांमधुमिश्रिता ॥ हिरण्यगर्भइतिवासुवर्णोदकसंभवैः ॥ ६७७ ॥ रूपेणेवेतिरौप्येणपदस्यायेतिवस्त्रजैः ॥ संस्नाप्यतीर्थपयसाततः शुद्धोदकेनच ॥ ६७८ ॥

उन कलशों के नाम ये हैं पद्म, महापद्म. शंख, विजय, ॥ ६८ ॥ और सर्वतोभद्र । मंत्रसे उनका आवाहन करै । "अग्निमूर्द्धा" इस मंत्रसे मृत्तिका द्वारा, "यज्ञेनयज्ञं" इस मंत्रसे जलको पढकर जलोंसें ॥ ६९ ॥ "अश्वत्थ"

इस मंत्रसे पंच कषायोंसे, और पत्तोंके जलसे गायत्रीको पढकर गौमूत्र से "गंधद्वारा" इस मंत्रको पढकर गोमयसे, ॥ ६७० ॥ "आप्यायस्व" इस मंत्रको पढकर दूधसे और दाधिक्राव्णः इस मंत्र द्वारा दहीसे, "घृतंमि" इस मंत्रको पढकर घृतसे, "मधुवाता" इस मंत्र द्वारा मधुसे, ॥ ७१ ॥ "पयः पृथिव्यां" इस मंत्र द्वारा पंचगव्यसे, "देवस्यत्वा" इस मंत्र द्वारा कुशाओंसे "काण्डात्काण्डात्" इस मंत्रको पढकर दूबसे, ॥ ७२ ॥ "गंधद्वारा" इस मंत्रको पढकर गंधसे, तथा पंचगव्यसे, "याओषधी" इस मंत्रसे औषधियों से, "याःफलिनी" इस मंत्रको पढकर फलके जलोंसे, ॥ ७३ ॥ "नमस्ते" इस मंत्रको पढकर बैलके सींग की मृत्तिकासे, "धान्यमसि" इस मंत्र द्वारा धान्यके जलोंसे, "आजिघ्रकलशम्" इस मंत्र द्वारा कलशके जलोंसे, ॥७४॥ "औषधयः" इस मंत्र द्वारा अक्षतसे, "यवोसि" इस मंत्र से जौके जलोंसे "तिलोसि" इस मंत्र द्वारा तिलोंसे, 'पंचनद्यः' इस मंत्र द्वारा नदीके जलोंसे ॥ ६७५ ॥ 'इमंमेगंगे' इस मंत्रको पढकर तीर्थके जलोंसे, 'नमोस्तुरुद्रेभ्यः'०- इस मंत्रको पढकर पर्वत और गजशालाकी मिट्टीसे ॥ ७६ ॥'स्योनापृथिवी' इस मंत्रको पढकर हल अथवा मधुमिश्रित मिट्टीसे 'हिरण्यगर्भ, इस मंत्रको पढकर सुवर्णके जलोंसे, ॥ ७७ ॥ 'रूपेणेव' इस मंत्रको पढकर चांदी के जलोंसे, 'पदस्याय' इस मंत्रको पढकर वस्त्रके जलोंसे तथा तीर्थके जलोंसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलोंसे स्नान करावै ॥ ७८ ॥

संमार्ज्यशुभ्रवस्त्रेणगन्धेनालिप्यसर्वतः ॥ ब्रह्मादीन्पूजयेत्तत्रनाममन्त्रेणवातथा ॥ ६७९ ॥ उपचारैः षोडशाभिर्मूलमध्यशिरः स्वपि ॥ स्नपनञ्चाभिषेकन्तुवेदमन्त्रैश्चकारयेत् ॥ ६८० ॥ आब्रह्मन्निर्तिनन्दायाभद्रंकर्णेतिवैतथा ॥ जातवेदसेतितथायमायत्वेतिमन्त्रकैः ॥ ६८१ ॥ पूर्णादर्वीतिपूर्णार्थक्रमेणापिसमाचरेत् ॥ मूलमध्येपिचतथानामभिर्मतमंत्रकैः ॥ ६८२ ॥ ब्रह्मजज्ञानमितिचविष्णोरराटमेवच ॥ नमस्तेरुद्रइतिचइमन्देवेतिसंजपेत् ॥ ६८३ ॥ शीर्षेचावामनङ्कार्यन्तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ इदंविष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधेपदम् ॥ ६८४ ॥ समख्येदेव्याधियाइतिचत्र्यंब-

कंयजामहेतिच ॥ मूर्द्धानंदिवेत्यृचयासंपूज्यचयथाविधि ॥ ६८५ ॥ तेभ्योहिरण्यंदत्वाचवस्त्रालङ्कारवाससी ॥ ततस्तुपुण्यघोषेणाशिलान्यासेप्रकल्पयेत ॥ ६८६ ॥

तदनन्तर सफेद वस्त्र से अंग पोंछकर सब अंगों में गंधादि लेपन करै फिर वास्तु मण्डल में नाग मंत्रोंसे ब्रह्माआदि का षोडशोपचारसे पूजन करै और मूल, मध्य, तथा शिर के ऊपर स्नान औग अभिषेक वेदोक्त मंत्रों से करावै ॥ ६७९ ॥ ६८० ॥ 'आब्रह्मन्' 'भद्रंकर्णेभिः' 'जातवेदसे' और यमायत्वा०–इन मंत्रों को पढकर नंदा भद्रा जया रिक्ता से स्नान करावै ॥ ८१ ॥ और 'पूर्णादर्वि' इस मंत्र को पढकर पूर्णा शिला को क्रम से स्नान करावै मूल और मध्य में उसी प्रकार नामके मंत्रों से स्नानकरावै ॥ ८२ ॥ और 'ब्रह्मजज्ञानं' 'नमस्ते रुद्र' 'विष्णोरराट' 'इमंदेवा' इन मंत्रोंको अच्छी तरह जपै ॥ ८३ ॥ और शिरके ऊपर 'तद्विष्णोः परमं पदम्' 'इदंविष्णुर्विचक्रमे' 'त्रेधानिदधे पदम्' इन मंत्रों से विष्णु का ॥ ८४ ॥ और 'समख्ये देव्याधिया' और 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मंत्र से शिवका आवाहन करै और 'मूर्द्धानंदिवो' इस ऋचासे विधिवत् पूजा करके ॥ ६८५ ॥ सुवर्ण, वस्त्र, अलंकार और वस्त्रोंकी भेट करके और पुण्यशब्दको करके शिला के स्थापन को करै ॥ ८६ ॥

ततस्सुलग्नेसंप्राप्तेपञ्चवाद्यानिवादयेत् ॥ नन्दांप्रगृह्यचशिलान्तत्राधारशिलान्न्यसेत् ॥ ६८७ ॥ तत्रोपरिन्यसेत्सप्तकलशमन्त्रमन्त्रितम् ॥ सर्वौषधिजलोपेतंपारदाज्यमधुप्लुतम् ॥ ६८८ ॥ पिहितंरत्नगर्भञ्चतेजोराशिभिरन्वितम् ॥ सदाशिवस्वरूपीचध्यात्वापञ्चोपचारकैः ॥ ६८९ ॥ संपूज्यदीपंविन्यस्यवामभागेथगर्तकैः ॥ ततोपरिन्यसेन्नन्दांसंपूज्यचयथाविधि ॥ ६९० ॥

फिर शुभ लग्न आनेपर पांच प्रकार के बाजे बजवावै नंदानाम की शिलाको उठाकर आधार शिलाका स्थापन करै ॥ ८७ फिर उस शिलापर मंत्रों को पढकर ऐसे सातकलशों को रक्खै जो सर्वौषधि, जल, पारा, घी, और मधु इन से युक्त ॥ ८८ ॥ वस्त्राच्छादित और जिनमें रत्नपडाहुआ हो

और तेजसमूह से युक्त सदाशिवके स्वरूपका ध्यान कर पंचोपचारों से पूजन कर ॥ ८९ ॥ वाम भाग में किये हुये गढे में दीपकको रखकर उसके ऊपर नंदानामकी शिलाको रखदे ॥ ६९० ॥

नाभिर्मेतिचमन्त्रेणास्थिरोभवेतिवैतथा ॥ प्रार्थनञ्चततः कुर्यादागमोक्तेनमन्त्रवित ॥ ६९१ ॥ नन्देत्वन्नन्दनीपुंसान्त्वातत्रस्थापयाम्यहम् ॥ प्रासादेतिष्ठसंत्दृष्टायावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥ ६९२ ॥ आयुष्कामाश्रियंदेहिदेववासिनिनंदिनि ॥ अस्मिन्रक्षात्वयाकार्याप्रासादेयत्नतोमम ॥६९३॥ महापद्मंन्यसेत्तत्रपूजयेद्रत्नगर्भितम् ॥ तत्रभद्राञ्चसंस्थाप्यपूजयेन्नाममंत्रकैः ॥ ६९४ ॥ भद्रंकर्णेतिऋचयास्थापयेद्वारुणैस्तथा ॥ भद्रेत्वंसर्वदाभद्रंलोकानांकुरुकाश्यपि ॥६९५॥ आयुर्दाकामदादेविसुखदाचसदाभव ॥ त्वामत्रस्थापयाम्यद्यगृहेस्मिन्भद्रदायिनि ॥ ६९६ ॥

फिर नाभिर्मा तथा " शिरो भव ' इन मंत्रोंसे मंत्रज्ञ शास्त्रोक्त विधि से प्रार्थना करे ॥ ९१ ॥ हेनन्दे तू पुरुषको आनंद देने वाली है मैं तेरा यहां स्थापन करताहूं इस प्रासाद में प्रसन्न होकर उस समय तक ठहर जबतक चंद्रमा सूर्य और तरागण हैं ॥ ९२ ॥ हेनंदिनि ' हेदेववासिनि ' आयु कामना और लक्ष्मी को दे और इस मेरे प्रासादमें मेरी यत्नसे रक्षा कर । ९३ । उस शिलापर महापद्मको रक्खै और उस पद्मपर भद्रानाम की शिलाको रखकर नाम के मंत्रोंसे पूजन करै ॥ ९४ ॥ अथवा ' भद्रंकर्णेभिः ' इस ऋचासे वा वरुण के मंत्रोंसे स्थापन करै हे भद्रे ! हे काश्यपि ! तू सदैव लोकोंमें कल्याणकर ॥ ६९५ ॥ हे देवि । तू आयु, कामना और सुखकी दाता सदा रह हेभद्र दायिनी तेरा इस घर में आज स्थापन करता हूं ॥ ९६ ॥

आधारोपरिविन्यस्यकलशंशंखसंज्ञकम् ॥ कोणेसंपूज्यविधिवज्जयांसंस्थापयेत्ततः ॥ ९७ ॥ गर्गगोत्रसमुद्भूतांत्रिनेत्राञ्चचतुर्भुजाम् ॥ प्रासादेस्थापयाम्यद्यजयाञ्चारुविलोचनाम् ॥ ९८ ॥ नित्यंजयायभूत्यैचस्वामिनोभवभार्गवि ॥

जातवेदसेतिमंत्रेणपूर्वोक्तेनचमंत्रतः ॥ ९९ ॥ आधारोपरि-
विन्यस्याविजयंकलशन्ततः ॥ रिक्तांसंस्थापयेत्तत्रमंत्रेणानेन-
मंत्रवित् ॥ ७०० ॥ त्र्यम्बकंयजामहेतितथावारुणमंत्रकैः ॥
स्थापयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तांरिक्तार्तिहारिणाम् ॥ १ ॥ रिक्तेत्वं-
रिक्तदोषघ्नेसिद्धिभुक्तिप्रदेशुभे ॥ सर्वदासर्वदेर्षिघ्नितिष्ठा-
स्मिंस्तत्रनन्दिनि ॥ २ ॥ आधारेविन्यसेन्मध्येसर्वतोभद्र-
संज्ञकम् ॥ पूर्णरत्नान्वितंपुष्टंसर्वमंत्राभिमंत्रितम् ॥ ३ ॥
ताञ्चसंपूज्यविधिवद्ध्यात्वातत्रसदाशिवम् ॥ तत्रोपरिन्यसे-
त्पूर्णानन्दप्रदायिनीम् ॥ ७०४ ॥

आधार के ऊपर शंख नाम वाले कलशको रखकर और कोण स्थान का विधि पूर्वक पूजन करके जया नामकी शिलाका पूजन करके स्थापना करै ॥ ९७ ॥ गर्गगोत्र से उत्पन्न त्रिनेत्र और चतुर्भुजी सुंदर नेत्रवाली जयाका इस प्रासादमें आज मैं स्थापन करताहूं ॥ ९८ ॥ हेभार्गवी, तू सदैव घर के स्वामी की जय और ऐश्वर्यको बढ़ातीरह फिर जातवेदसे इस और पूर्वोक्त मंत्रसे अभिमंत्रित ॥ ९९ ॥ विजयनामके कलशको आधारके ऊपर रखकर इस मंत्रसे रिक्तानामकी शिलाका स्थापन करै ॥ ७०० ॥ कि " त्र्यम्बकं यजामहे " इस से और वरुणके मंत्रसे रिक्तार्तिहारिणी रिक्ताका स्थापन और प्रार्थना करै ॥ ७०१ ॥ हे रिक्ते तू रिक्त दोषकी नाशक है और हे शिवे तू सिद्धि और भुक्तिकी दाता है । हे सब दोषोंकी नाशक, हे नंदिनि, इस स्थान में तू सर्वदा रह ॥ २ ॥ आधारके बीचमें पूर्ण रत्नोंसे युक्त, पुष्ट और संपूर्ण मंत्रोंसे अभिमंत्रित सर्वतोभद्र नामके कलशको रक्खे ॥ ३ ॥ और पूर्ण नाम की शिलाका पूजन करके उसके ऊपर सदा शिवका ध्यानकरके उस कलश के ऊपर पूर्ण आनंदकी दाता पूर्णा नामकी शिलाको रक्खै ॥ ४ ॥

पूर्णेत्वंसर्वदापूर्णालोकानांकुरुकाश्यपि ॥ आयुर्दाकाम-
दादेविधनदासुतदातथा ॥ ५ ॥ गृहाधारावास्तुमयीवास्तु-
दीपेनसंयुता ॥ त्वामृतेनास्तिजगतामाधारञ्चजगत्प्रिये ६
पूर्णादर्वीतिमन्त्रेणइमंमेदेवेतिवैतथा ॥ ७ ॥ मूर्द्धानन्दिवेति

चतथाशान्तिमन्त्रै स्तथैवच ॥ सहस्रशीर्षेतिषोडशभिरग्निमी-लेतिवैतथा ॥ ८ ॥ इषेत्वोर्ज्जेत्यग्नआयाहीतितथापुनः पुनः ॥ शन्नोदेवीतिमंत्रेणस्थापयेत्प्रयतःशुचिः ॥ ९ ॥

हे पूर्णे, हे काश्यपि, तू लोकोंको सदैव पूर्णकर और तू आयु कामना, धन, और सुतकी दाताहो ॥ ५ ॥ और तू घरकी आधार वास्तुरूप है और वास्तुदीपक से युक्तहै हे जगत्प्रिये, तेरे विना जगत्का आधार नहीं ॥ ६ ॥ " पूर्णादर्वि " इस मंत्रसे और इमम्मेदेवा इस मंत्रसे ॥ ७ ॥ और 'मूर्द्धानंदिव' इस मंत्रसे और शांतिके मंत्रोंसे और 'सहस्रशीर्षा' इन १६ मंत्रोंसे और 'अग्नि मीले, इस मंत्रसे ॥ ८ ॥ और 'इषेत्वोर्जे' इस मंत्रसे "अग्न आयाहि" इस मंत्रसे और वारम्बार "सम्यक् देवी" इस मंत्रसे शुद्धहुवा यजमान आधार शिलाका स्थापन करै ॥ ९ ॥

मृदादिनादृढीकृत्यप्रादक्षिण्येनसर्वतः ॥ ईशानादिक्रमेणैवस्थाप्याः सर्वार्थसिद्धये ॥ १० ॥ आग्नेयाचैववर्णानामाग्नेयादिक्रमेणच ॥ सर्वेषामपिवर्णानांकेचिदिच्छन्तिसूरयः ११ यान्तुदेवगणास्सर्वेपूजामादायपार्थिवीम् ॥ इष्टकामससमृद्ध्यर्थम्पुनरागमनायच ॥ १२॥ ततस्तुप्राङ्मुखोभूत्वाआचार्याय निवेदयेत् ॥ दक्षिणाब्रह्मणेदद्याद्यथावित्तानुसारतः ॥७१३॥

उस शिला को मिट्टी आदि से दृढकरके प्रदक्षिण आदि संपूर्ण दिशाओं में ईशान आदि के क्रमसे संपूर्ण अर्थकी सिद्धिके लिये अन्यशिलाओं का भी स्थापन करै ॥ ७१० ॥ और कोई पण्डित यह मानते हैं कि सब वर्णोमें आग्नेयी शिलाओंका आग्नेयआदि क्रमसे स्थापन करै ॥ ११ ॥ और कहै हे देवगण इस पार्थवी पूजाको लेकर इष्टकार्यकी सिद्धि और फिर आगमन के लिये जावो ॥ १२ ॥ फिर पूर्वाभिमुख होकर यजमान पूजाकी सामग्री आचार्य के अर्थ निवेदन करै और अपने धनकी शक्ति के अनुसार ब्रह्माको दक्षिणा दे ॥ १३ ॥

उदङ्मुखायततःक्षमस्वेतिपुनःपुनः ॥ गांसवत्सांस्वर्णयुतांतथावासोयुगान्विताम् ॥ १४ ॥ यज्ञान्तेआप्लुतान्वस्त्रानाचार्यायनिवेदयेत् ॥ दैवज्ञञ्चततस्तोष्यस्थपतीन्वैष्णवानपि ॥ १५ ॥ दक्षिणाञ्चतयोर्दद्याद्घृतच्छायांविलोकयेत्॥

रक्षाबन्धोमंत्रपाठस्त्र्यायुषञ्चसमाचरेत् ॥१६॥ ऋत्विग्भ्यो- दक्षिणान्दद्याच्छिष्टेभ्यश्चस्वशक्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च· दद्याद्वित्तानुसारतः ॥१७॥ शिल्पिवर्गांस्तुसन्तोष्यदानमानै स्तथैवच ॥ १८ ॥ सम्प्राप्नोतिनरोलक्ष्मींपुत्रपौत्रधनान्वि- ताम् ॥७१९॥ ॥ इतिशिलान्यासेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्माको यह कहै कि क्षमाकरो और सुवर्णसे युक्त, तथा दो वस्त्रोंसे युक्त सवत्सा गौ ॥ १४ ॥ यज्ञके अन्तमें आचार्यको दे फिर ज्योतिषी, स्थपति और वैणव इनको सन्तुष्ट करके ॥ ७१५ ॥ दक्षिणा दे और घृत में अपने मुखकी छायाको देखै फिर रक्षाबन्धन, फिर मंत्रपाठ, त्र्यायुष करै अर्थात् स्रुवेसे भस्मको लगावै ॥ १६ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार ऋत्विज और शिष्टों को दक्षिणा दे और अपने धनके अनुसार दीन, अन्धे और कृपणों को भी कुछ दे ॥ १७ ॥ और दान मानसे कारी- गरों को भी सन्तुष्ट करै ॥ १८ ॥ इससे मनुष्य पुत्रपौत्रोंसे युक्त लक्ष्मी को प्राप्त होता है ॥ ७१९ ॥ इति शिलान्यासे भाषाटीकासहिते पंचमोऽध्या- यः ॥ ५ ॥

अथातःसंप्रवक्ष्यामिप्रासादानांविधानकम् ॥ देवोरुद्रस्त- थाविष्णुर्ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ २० ॥ प्रतिष्ठाप्याःशुभेस्था नेअन्यथातेभयावहाः ॥

अब प्रासादों की विधि का वर्णन करताहूं रुद्रदेवता और देवताओं में उत्तम ब्रह्मा आदि ॥ २० ॥ इनका शुभस्थान में स्थापन करना उचित है नहीं तो ये भयके दाता होते हैं ॥

॥ मन्दिर आदि के बनाने का फल ॥

गर्तादिलक्षणाधात्रीगन्धास्वादेनयाभवेत् ॥ २१ ॥ वर्णै नचसुरश्रेष्ठसामहीसर्वकामदा ॥ पितामहस्यपुरतःकुलान्यष्टौ तुयानितु ॥ ७२२ ॥ तारयेदात्मनासार्द्धंविष्णोर्मन्दि- कारकः ॥ अपिनः सत्कुलेकश्चिद्विष्णुभक्तोभविष्यति ॥ ७२३ ॥ येध्यायंतिसदाभक्त्याकरिष्यामोहरेर्गृहम् ॥ तेषां विलीयतेपापंपूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ ७२४ ॥ सुरवेश्मनि-

यावन्तोद्विजेन्द्राः परमाणवः ॥ तावद्वर्षसहस्राणिस्वर्गलोके-महीयते ॥ ७२५ ॥ प्रासादेमृन्मये पुण्यंमयैतत्कथित-म्पुरा ॥ तस्माद्दशगुणंपुण्यंकृतेशैलमयेभवेत् ॥ ७२६ ॥ ततोदशगुणंलोहेताम्रेशतगुणंततः ॥ सहस्रगुणितंरौप्येत-स्माद्रौक्मेसहस्रकम् ॥ ७२७ ॥ अनन्तंफलमाप्नोतिरत्नचि-त्रेमनोहरे ॥

गर्तआदि का चिन्ह जिसमें हो और स्वाद उत्तम हो ॥ २१ ॥ और जिसका वर्ण श्रेष्ठ हो वह पृथिवी सब कामनाओं की देने वाली होती है । ॥ २२ ॥ अपने सहित उन सब को विष्णु का मन्दिर बनवानेवाला अपने पूर्वके आठ कुलों को तारता है । हमारे कुल में कोई विष्णु का भक्त हो ॥ २३ ॥ ऐसा और हम विष्णुका मंदिर बनवावैंगे ऐसा जो सदैव भक्ति से ध्यान करते हैं उनके भी सौ जन्मों के किये पाप नष्ट होजाते हैं ॥ २४ ॥ हे द्विजेन्द्रो देवमंदिर में जितने परमाणु होते हैं उतने सहस्रवर्षपर्यन्त मंदिर के बनाने वाला स्वर्ग लोक में बसता है ॥ २५ ॥ यह पुण्य मिट्टी से बनाये हुए मंदिरमें होता है और उससे दश गुना पुण्य पत्थरके बनाये हुएमें होताहै ॥ २६ ॥ उससे भी दशगुना लोहे से बनायेमें और उससे भी सौ गुना चांदी के और उससे भी हजार गुना सुवर्ण के मंदिर में होता है ॥ २७ ॥ रत्नज-टित मनोहर मन्दिर के बनाने से अनन्त फल होता है ॥

कनिष्ठंमध्यमंश्रेष्ठंकारयित्वाहरेर्गृहम् ॥७२८॥ स्वर्गञ्च वैष्णवंलोकंमोक्षञ्चलभतेक्रमात् ॥ बाल्येचक्रीडमानायेपांसु भिर्भवनंहरेः ॥ ७२९ ॥ वासुदेवस्यकुर्वन्तितेपितल्लोकगा मिनः ॥ याभूमिः शस्यतेगेहेसाप्रासादविधौतथा ॥७३०॥ योविधिर्गृहनिर्माणेशिलान्यासस्यकर्मणि ॥ प्रासादादिषुस ज्ञेयश्चतस्रस्तुशिलास्तथा ॥ ७३१ ॥ नन्दाभद्राजयापूर्णा आग्नेयादिषुविन्यसेत् ॥ चतुष्षष्टिपदोवास्तुप्रसादादिषुविन्य सेत् ॥ ७३२ ॥ ब्रह्माचतुष्पदोह्यत्रशेषःस्वस्वपदेस्थिताः ॥ वास्तुपूजाविधिश्चात्रगृहस्थापनकर्मवत् ॥ ७३३ ॥ संपूज्य वास्तुंविधिवच्छिलान्यासंततश्चरेत् ॥ आदावेवसमासेनशिला

लक्षणएतस्य ॥ ७३४ ॥ शिलान्यासविधानन्तुप्रोच्यतेत
दनन्तरम् ॥ शिलावापीष्टकावापिचतस्रोलक्षणान्विताः७३५
प्रासादादौविधानेनन्यस्तव्याः सुमनोहराः ॥ चतुरस्राःसमाः
कृत्वासमन्ताद्धस्तसंमिताः ॥ ७३६ ॥ विस्तारस्यत्रिभागेन
बाहुल्येनसुसंमिताः ॥ शिलानामिष्टकानाञ्चप्रमाणंलक्षणंस्मृ
तम् ॥ ७३७ ॥ नन्दाद्यधिष्ठिताज्ञयाशिलावाप्यथवेष्टका ॥
शिलारूपाण्यथोविन्द्यान्नन्दाद्याश्चेष्टकाःस्मृताः ॥७३८ ॥

छोटा, वडा, मझोला कैसा ही हो विष्णु के मंदिर बनाने से ॥ २८ ॥ स्वर्गलोक विष्णुलोक और मोक्ष की प्राप्ति होती है बालकपन में खेलते हुए बालक जो धूल से हरि मंदिर बनवाते हैं ॥ २९ ॥ वेभी उसी के लोक में जाते हैं जो भूमि घर के बनाने में उत्तम कही है वही प्रासाद में भी श्रेष्ठ है ॥ ७३० ॥ और जो विधि घर के बनाने और शिला के स्थापन करने में है वही प्रासाद आदि में भी जाननी चाहिये और चार शिला ॥ ३१ ॥ नन्दा भद्रा जया पूर्णा नाम की आग्नेय आदि दिशाओं मे प्रासाद में भी स्थापन करै और प्रासाद आदि में वास्तु ६४ पदका होता है ॥ ३२ ॥ और चौसठ वास्तु में ब्रह्मा चतुष्पद होता है और शेषदेवता अपने अपने पदमें स्थित होते हैं और इस में वास्तु पूजा की विधि भी वैसी ही है जैसी गृहस्थापन कर्म में होती है ॥ ३३ ॥ प्रथम वास्तु का विधिपूर्वक पूजन करके फिर शिला का स्थापन करै प्रथम शिला उत्तम लक्षण की होनी चाहिये ॥ ३४ ॥ तदनन्तर शिला स्थापन बिधि को कहते हैं शिला वा ईंट कुछ हो वह चारों लक्षणों से युक्त होनी चाहिये॥ ७३५ ॥ उसे मनोहर चौकोन, समतल युक्त चारों ओर से हाथभर की बनवाकर प्रासाद आदिमें विधि पूर्वक लगावै ॥ ३६ ॥ वहुत करके चौड़ाई के तृतीयांश के तुल्य शिला और ईंटों का प्रमाण और लक्षण कहा है ॥ ७३७ ॥ नंदाआदि शिलाओं के अधिष्ठान शिला अथवा ईंट होती हैं और शिलाओं के रूप तथा नंदा आदि ईंट को जानना उचित है ॥ ३८ ॥

शुभशिलाओं के लक्षण ।

सम्पूर्णाः सुनलाःस्निग्धाः सुसमालक्षणान्विताः ॥ कुशदु-

र्णाङ्किताधन्याः सध्वजछत्रचामराः ॥ ७३९ ॥ सकुशास्तरणोपेताः कूर्ममत्स्यफलान्विताः ॥ दर्पणहस्तिवज्राङ्काप्रशस्तद्रव्यलाञ्छिताः ॥ ७४० ॥ शस्तपक्षिमृगाङ्काश्चवृषाङ्कास्सर्वदाहिताः॥ स्वस्तिकावेदिकायुक्तानन्दावर्ताङ्कलाञ्छिताः ॥ ७४१॥ पद्मादिलक्षणोपेताः शिलाः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ तथागोवाजिपादाङ्काः शिलाधन्याः सुखावहाः ॥ ७४२ ॥

जो शिला समधरातल, सचिक्कण शुभ लक्षणों से युक्त हों तथा जिनपर कुशा, दूब, ध्वजा, छत्र और चमरके चिन्ह हों वे शुभ होतीहैं जो कुशा के आस्तरणसे युक्त,कच्छप, मत्स्य, और फलसे युक्त और जिनमें दर्पण, वज्र और हाथी अथवा उत्तम द्रव्यका चिन्ह हो ॥ ७४० ॥ और जिनमें पक्षी और मृगका चिन्हहो अथवा बैलका चिन्हहो वे सदा हितकारी होतीहैं तथा जो सथिया, वेदी और नंदावर्तके चिन्हसे युक्त ॥ ४१ ॥ पद्मआदि लक्षणों से युक्तहों वे शिला संपूर्ण अर्थकी सिद्धिको देतीहै और जिनपर गौ और घोड़ेके चरणका चिन्हहो वह सुखकी दाता होती है ॥ ४२ ॥

अशुभ शिलाओं के लक्षण ।

क्रव्यादमृगपादाङ्का नशस्ताः पक्षिणस्तथा ॥ दिङ्मुखावहुदीनाश्च दीर्घह्रस्वाः क्षतान्विताः॥ ७४३ ॥ विवर्णाःस्फुटिताभग्नाः संत्याज्यालक्षणच्युताः ॥ प्रशस्तप्राणिरूपाङ्काः प्रशस्तद्रव्यलांछिताः ॥ ७४४ ॥ यथोक्तलक्षणोपेताःशिला नित्यंसुखावहाः ॥

मांसाहारी पशु पक्षियों के चरणों से चिन्हित दिङ्मुख बहुत दीनबहुत बड़ी वा छोटी और गढ़ोंसेयुक्त शिला श्रेष्ठ नहीं होती ॥ ४३ ॥ कुरूप, ॥ ४४ ॥ और जो शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्तहों ऐसी शिला सदैव सुखदायी होती हैं ॥

ईंटोंका लक्षण ।

इष्टकानांसमासेनलक्षणंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ७४५ ॥ एकवर्णाः सुपक्काश्चबहुजीर्णाश्चवर्जिताः ॥ अप्यङ्गारान्वितानेष्टाः कृष्णवर्णाः सशर्कराः ॥ ७४६ ॥ भग्नाश्चविभ्रमाहीनावर्ज्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ सुप्रमाणारक्तवर्णाश्चतुरस्रामनोरमाः ॥ ७४७ ॥

अब संक्षेप से ईंटों के लक्षण सुनो ॥ ४५ ॥ जो एक रंग की हों और अच्छी तरह पकी हों वे श्रेष्ठ होती है और जो बहुत पुरानी हों वा पककर भुरभुरी होगई हों वे वर्जित हैं जो अंगारों से युक्त काले रंगकी और कंकरीली होती हैं वे अच्छी नहीं होती ॥ ४६ ॥ अथवा खंडित कामकी नहीं होती हैं और योग्य प्रमाण वाली लाल रंग की चौकोन और मनोरम ईंटें श्रेष्ट होती हैं ॥ ४७ ॥

नन्दाद्यागृहमानेनअंगुलैः परिकालिताः ॥ शिलान्यासः प्रकर्तव्यः प्रासादेतुशिलामये ॥ ७४८ ॥ इष्टकानान्तुविन्यासः प्रासादेचेष्टकामये ॥ तस्याः पीठम्प्रकुर्वीतताबदेव प्रमाणतः॥ ७८९॥ आधारनामातुशिलासुदृढासुमनोहरा॥ शैलजेशैलजः पीठश्चैष्टकेचेष्टकः स्मृतः ॥ ७५० ॥

नंदा आदि शिला गृहका मान अंगुलों के अनुसार और शिलाओं से बनेहुये प्रासाद में शिलाओंका न्यास करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और ईंटोंसे बने हुये प्रासाद में ईंटोंका न्यास और उसी प्रमाण केअनुसार उसकी पीठ भी होनी चाहिये ॥ ४९ ॥ आधार नामकी शिला बहुत दृढ और मनोहर हो तथा पत्थर के मंदिर में पत्थर और ईंटकेमें ईंटका पीठ कहाहै ॥५०॥

शिलान्यासादिकोभद्रेमूलपादोविधीयते ॥ गर्तान्विधाय कोणेषुचतुर्वेदिसमन्वितान् ॥ ७५१ ॥ तत्रोपरिचशुक्लानांतण्डुलानांञ्चपूरणम् ॥ आग्नेयादिक्रमेणैव तासांस्थानानिकल्पयेत् ॥ ७५२ ॥ तत्राधारशिलां यस्यस्थिरोभवतिमन्त्रतः ॥ प्रतिष्ठाप्यचतुर्ष्वेवकोणेषुचनिधायच ॥ ७५३ ॥ तेषांक्रमेणतन्मध्यकेलशस्थापयेत्क्रमात् ॥ पद्मश्चैवमहाप

द्मः शङ्खोमकरकस्तथा ॥ ७५४ ॥ चत्वारः कलशाह्येते दिव्यामंत्रेणमंत्रिताः ॥ पल्लवैस्सर्वगन्धैश्चसर्वौषधिभिरन्विताः ॥ ७५५ ॥ रत्नैः समुद्रजैर्युक्ताश्चाष्टधातुभिरन्विताः ॥ पुण्यतीर्थोदकैर्युक्ताः कृत्वोदुम्बरसंभवाः ॥ ७५६ ॥ तत्रोपरिन्यसेन्नन्दांशुलग्नेचशुभेदिने ॥ संस्नाप्यपूर्णतोयेनास्त्राय फडितिमन्त्रतः ॥ ७५७ ॥ पुनः स्नात्वाथमन्त्रेणसंमार्ज्य परिपूरयेत॥ ॐनन्दायैनमःगन्धादिउपचारान्प्रदापयेत् ७५८

शिलाओंका न्यास भद्रनामके मंदिर में मूलपाद कहलाता है चार वेदियों से युक्त गर्तों को चारों कोनोंमें बनाकर ॥ ५१ ॥ उनके ऊपर सफेद चांवल भरै और आग्नेय आदि क्रमसे उनके स्थानोंकी कल्पना करै ॥ ५२ ॥ और वहां आधारशिलाको रखकर और "स्थिरो भव" इस मंत्रसे उसकी प्रतिष्ठा करके चारों कोनोंमें शिलाओंको रख उनके मध्य में और उनके रखनेके क्रमसे कलशका स्थापन करै और पद्म महापद्म शङ्ख और मकर ॥ ५४ ॥ इन सुंदर चार कलशों को मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके इनपर पंचपल्लव, पंचगंध, और सर्वौषधिरक्खै ॥ ७५५ ॥ समुद्रसे उत्पन्न रत्न, अष्टधातु पवित्र तीर्थोंके जल और गूलरके पत्ते उन पर रक्खै ॥ ५१ ॥ उन कलशोंके ऊपर शुभदिन और शुभ-लग्नमें नंदानामकी शिलाका स्थापन करै और पूर्णजलसे अस्त्राय फट्" इस मंत्रको पढ़कर स्नान कराकर ॥ ७५७ ॥ फिर स्वयं स्नान करके मंत्रसे संमार्जन कर चारों ओर से भरदे ॐनदायैनमः" इसमंत्रसे गन्धादि उपचारों को करै ॥ ५८ ॥

गीतवादित्रघोषेणवेदध्वनियुतेनच ॥ प्रागुत्तराशिरस्कान्तांस्थापयेत्प्रयतःशुचिः ॥ ७५९ ॥ ततोस्त्रतोयंसंगृह्य फडितिपूजयेत्पुनः ॥ दिव्यरूपांसुवर्णाभांसर्वाभरणभूषिताम् ॥ सर्वलक्षणसंपूर्णांपरितुष्टांस्मिताननाम् ॥ ७६० ॥ ध्यात्वा स्वमंत्रमुच्चार्यप्रणम्यचपुनः पुनः ॥ ७६१ ॥ आवाहयेत्ततो नन्दांमन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ संपूजयेत्पुनस्तांश्चवस्त्रगन्धादिनाततः ॥ ७६२ ॥ धूपयित्वाथसामान्यमुद्रांबद्धाथमंत्र

वित् ॥ बलायेचैवनैवेद्यंदधिमांसादिसंयुतम् ॥ ७६३ ॥
नन्दायैनमएह्येहिपूजयेच्छुद्धमानसः ॥

गीत और बाजे के शब्द तथा वेदध्वनि करते हुए पूर्व और उत्तरको है शिर जिसका ऐसी उस शिलाका शुद्ध होकर स्थापन करै ॥ ५९ ॥ फिर अस्त्रके जलको लेकर "अस्त्रायफट्" इस मंत्रसे पूजन करै और सुन्दर रूपवाली सुवर्णकीसी कान्तिवाली संपूर्ण आभूषणोंसे सुशोभित, समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त, प्रसन्नहुई और कुछ ईषत् हास्य करती हुई ॥ ७६० ॥ उस शिलाका ध्यान करै और उसी शिलाके मंत्रको उच्चारण करके वारम्वार नमस्कार करै ॥ ६१ ॥ फिर वेद और शास्त्रोंके मंत्रसे नंदानाम की शिला का आवाहनकरै और उसका वस्त्र गंध आदिसे पूजन करै ॥ ६२ ॥ और अष्टगन्ध आदिकी धूपदेकर मंत्रज्ञ को उचित है कि बद्धांजलि होकर दधि, मांस सहित नैवेद्यका ॥ ६३ ॥ अर्पण करै और नन्दानामकी शिलाको नमस्कार है तू यहां आकर प्राप्तहो प्राप्तहो ऐसा कहकर शुद्धमनसे पूजन करै।

॥ नंदा का मंत्र ॥

ॐ नन्देत्वंनन्दिनीपुंसांत्वामत्रस्थापयाम्यहम् ॥ ७६४॥
प्रासादेतिष्ठसंहृष्टायावच्चन्द्रतारकम् ॥ आयुष्कामंश्रियन्न
न्देदद्यासित्वंसदानृणाम् ॥ ७६५ ॥ अस्मिन्रक्षात्वयाकार्या
प्रासादेयत्नतः सदा ॥ इतिमंत्रसमुच्चार्यआग्नेयेतुनतः
परम् ॥ ७६६ ॥

हे नन्दे ! तू मनुष्योंको आनंदके देनेवालीहै में तेरा इस जगह स्थापन करताहूं ॥ ६४ ॥ तू इस प्रासादमें जबतक चंद्रमा और तारागण हैं तबतक निवास कर और तू मनुष्योंको सदा आयु मनवांछित फल और लक्ष्मी देती है ॥ ७६५ ॥ इससे तू इस प्रासादकी यत्नपूर्वक सदा रक्षाकर और इनही मंत्रोंसे आग्नेयीदिशामें उसका स्थापन करै ॥ ६६ ॥

॥ भद्रादिके मंत्र ॥

भद्रांसंपूजयेत्तद्वन्नाममन्त्रेणपूर्ववत ॥ भद्रेत्वंसर्वदाभद्रं
लोकानांकुरुकाश्यपि ॥ ७६७ ॥ आयुष्कामप्रदादेविलोका
नांचैवसिद्धिदा ॥ नैर्ऋत्येस्थापयेत्तांचजयान्तद्वत्प्रपूजयेत ।

॥ ७६८ ॥ नाममन्त्रेणपूर्वोक्तमन्त्रेणचतथापुनः ॥ ॐजये त्वंसर्वदाभद्रेसन्तिष्ठस्थापयाम्यहम् ॥ ७६९ ॥ नित्यंजयाव हादिव्यास्वामिनः शीघ्रदाभव ॥ वायव्येस्थापयेत्तांचजयां सर्वार्थसिद्धये ॥ ७७० ॥ ईशानेस्थापयेत्पूर्णांपूर्ववत्संप्रपूज्य च ॥ ॐपूर्णेत्वंतुमहाविद्येसर्वसंदोहलक्षणे ॥ ७७१ ॥ संपू र्णांसर्वमेवात्रप्रासादेकुरुसर्वदा ॥ शिलानामिष्टकानांतुवाचनं तदनंतरम् ॥ ७७२ ॥ नकर्तव्यन्तुमनसापितुरतुशुभमिच्छ ता ॥ आचार्यायचगांदद्यात्सवत्सांहेमसंयुताम् ॥ ७७३ ॥

फिर उसीप्रकार नाममंत्र " भद्रायै नमः " से भद्रा शिलाका पूजनकरै और हेभद्रे ! हे काश्यपकी पुत्रि तू लोकोंकी सदा कल्याण करनेवाली है ॥ ६७ ॥ हेदेवि ! तू लोकोंकी आयु कामना और सिद्धिके देनेवालीहै इस तरह मंत्र पढकर नैर्ऋतदिशामें स्थापनकरै और फिर जया शिलाका ॥ ६८ ॥ नाममंत्र और पूर्व कहेहुए मंत्रोंसे नैवेद्य आदिका अर्पण और पूजन करके हेजये ! तू सदा कल्याणरूपणी है में तुमको स्थापन करताहूं तू सदा स्थिर रहकर ॥ ६९ ॥ अपने स्वामिको सदैव शीघ्र जयके देनेवाली हो" इस मंत्र को पढकर उस जया नामकी शिलाको सब अर्थोंकी सिद्धिके लिये वायव्य दिशामें स्थापित करै ॥ ७७० ॥ और पहिलेकी तरह पूजन करके हे पूर्णे ! तू महाविद्यारूप है संपूर्ण कामनाओंको देनेवाला तेरा स्वरूप है ॥ ७७१ ॥ इस प्रासादमें सब कार्यको संपूर्णकर इसमंत्रसे ईशानमें स्थापन करै फिर घरके स्वामीके कल्याणकी इच्छा करनेवाला पुरुष शिला और इष्टिकाओंके स्तुति वाक्योंको पढै ॥ और सवत्सा, स्वर्णाभरणों से भूषित गौ आचार्य को देवै ॥ ७७२ ॥ ७७३ ॥

ऋत्विग्भ्योदक्षिणान्दद्याच्छिष्टेभ्यश्चस्वशक्तितः ॥ दैवज्ञं पूजयेच्छक्त्यास्थपतिञ्चविशेषतः ॥ ७७४ ॥ ब्राह्मणान्भो जयेच्छक्तयादीनान्धांश्चैवतोषयेत् ॥ एवंवास्तुबलिङ्कृत्वा भजेत्षोडशभागिकाम् ॥ ७७५ ॥ तस्यमध्येचतुर्भागन्तस्मि न्गर्भञ्चकारयेत् ॥ भागंद्वादशकंसार्द्धंततस्तुपरिकल्पयेत् ॥ ७७६ ॥ चतुर्भागेनभित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः द्विगुणः शिखरोच्छ्रायोभित्त्युच्छ्रायाच्चमानतः ॥ ७७७ ॥

अपनी शक्ति के अनुसार ऋत्विज और शिष्ट पुरुषों को दक्षिणा दे और ज्योतिषी और स्थपति का विशेष रूप से पूजन करै ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणों को सामर्थ्यानुसार भोजन करावे और दीन और अन्धों को अन्न आदि देकर संतुष्ट करै इस तरह वास्तुबलि को कर सोलह भाग लेकर ॥ ७५ ॥ उन में से चार भागों के बीच में गर्भ को करै और साढेबारह भाग उस के चारों ओर कल्पना करै ॥ ७६ ॥ और स्थान के चतुर्थ भाग के प्रमाण से भींतो की ऊंचाई रक्खै और उन से दूनी शिखरों की ऊंचाई रक्खै ॥७७॥

शिरोद्धस्यचार्द्धार्द्धेनविधेयातुप्रदक्षिणा ॥ चतुर्दिक्षुतथाज्ञेयोनिर्गमेषुनथाबुधैः ॥ ६६८ ॥ गर्भसूत्रद्वयंभागेविस्तारेमण्डपस्यतु ॥ आयस्तस्यविभागांशैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः ॥ पंचभागेनसंभज्यगर्भमानंविचक्षणः ॥ ६६९ ॥ भागमेकंगृहीत्वातुप्राग्जीवङ्कल्पयेद्बुधः ॥ गर्भसूत्रसमोभागादग्रतोमुखमंडपः ॥ एतत्सामान्यमुद्दिष्टंप्रासादस्येहलक्षणम् ॥ ८०॥

सिरके अष्टम भागकी ऊंचाई के प्रमाणसे बनवावे और प्रदक्षिणा ऐसे स्थान में बनवावे जहां से चारों ओर निकलनेके स्थानहों ॥ ७८ ॥ भागके दो गर्भ सूत्रमण्डपकी चौडाई में होते हैं उनका आयविभागके अंशोंसे युक्त और अत्यंत शुभ होताहै गर्भके मानके पांच भाग करके ॥ ७९ ॥ उनमें से एक भाग लेकर द्वार बनवावै अन्य भागोंमें गर्भ रूपके समान उसके आगे मुख मण्डप होताहै इसतरह इसग्रंथमें प्रासादका सामान्य लक्षण कहाहै ॥७८०॥

अथान्यच्चप्रवक्ष्यामिप्रासादंलिङ्गमानतः ॥ लिङ्गपूजाप्रमाणेनकर्तव्यापीठिकाबुधैः ॥ ७८१ ॥ पीठिकार्द्धेनभागेस्यात्तन्मानेनतुभित्तयः ॥ बाह्यभित्तिप्रमाणेनउत्सेधस्तुभवेत्ततः ॥ ८२ ॥ भित्त्युच्छ्रायात्तुद्विगुणः शिखरस्यसमुच्छ्रयः ॥ शिखरस्यचतुर्भागाः कर्तव्यास्स्युः प्रदक्षिणाः॥७८३॥ प्रदक्षिणायास्तुसमस्त्वग्रतोमण्डपोभवेत् ॥ तस्यचार्द्धेनकर्तव्यस्त्वग्रतोमुखमण्डपः ॥ ७८४ ॥

इसके आगे लिंगके और भी लक्षण कहताहूं बुद्धिमानों को उचितहै कि लिंग पूजाके प्रमाणसे पीठिका बनवाना चाहिये ॥ ८१ ॥ पीठिकाके आधे

भागके प्रमाणसे भित्ति बनवावै और बाहरकी भित्तिके प्रमाणसे ऊंचाई होती है ॥ ८२ ॥ और भित्तिकी ऊंचाई से शिखरकी ऊंचाई दूनी होतीहै और शिखरसे चौथे भागकी प्रदक्षिणा बनवावै ॥ ८३ ॥ और प्रदक्षिणाके समान आगेका मण्डप होताहै और उससे आधा अग्रभागमें मुख मण्डप होताहै ॥८४॥

प्रासादान्निर्गतौकार्यौकपोतौगर्भमानतः ॥ ऊर्द्धम्भित्त्युच्छ्रयास्तस्यमंजरीन्तुप्रकल्पयेत् ॥ ७८५ ॥ मंजर्यासार्द्धमानेनशुकनासंप्रकल्पयेत् ॥ ऊर्द्धन्तथार्द्धभागेनवेदीबन्धोभवेदिह ॥ ७८६ ॥ वेद्याश्चोपरियच्छेषङ्कण्ठमामलसारकम् ॥ एवंविभज्यप्रासादंशोभनङ्कारयेद्बुधः ॥ ७८७ ॥ अथान्यच्चप्रवक्ष्यामिप्रासादस्येहलक्षणम् ॥ गर्भप्रमाणेनप्रासादप्रमाणंशृणुतद्विजाः ॥ ७८८ ॥

प्रासादसे निकलते हुये गर्भके प्रमाणसे दो कपोत बनवावै और वे ऊपरको भित्तिके समान ऊंचे होने चाहिये और उनकी मंजरीभी बनवावै ॥८५॥ और मंजरी से डेढ गुनी शुकनासिका बनवावै और उसके ऊपर उससे आधा वेदीबंध होताहै ॥ ८६ ॥ और वेदीके ऊपर जो बचा हुआ कण्ठ है वह आमलकसार कहाता है इस तरह विभाग करके बुद्धिमान् को उचितहै कि सुंदर प्रासाद बनवावै ॥ ८७ ॥ तदनंतर प्रासादके और भी लक्षण कहे जाते हैं; हे द्विजो ! गर्भके प्रमाणसे प्रसादके प्रमाणको ध्यान लगाकर सुनो ॥८८॥

विभज्यनवधागर्भमध्येलिङ्गस्यपीठिका ॥ पादाष्टकन्तुरुचिरंपार्श्वतः परिकल्पयेत् ॥ ७८९ ॥ मानेनानेनविस्तारो भित्तीनान्तुविधीयते ॥ पादेपंचगुणंकृत्वाभित्तीनामुच्छ्रयोभवेत् ॥ ७९० ॥ सएवशिखरस्यापिद्विगुणः स्यात्समुच्छ्रयः ॥ चतुर्धातुशिरोभज्यअर्द्धभागद्वयस्यवा ॥ ७९१ ॥ शुकनासंप्रकुर्वीततृतीयेवेदिकामता ॥ कण्ठमामलसारंतुचतुर्थेपरिकल्पयेत् ॥ ७९२ ॥

प्रासादके गर्भ अर्थात् वीचवाली सबभूमिके नौ भाग करके मंदिरके आठ पादोंकी चारों ओर सुंदर पीठिकाकी कल्पना करै ॥ ८९ ॥ इसी मानसे

भित्तियोंका बिस्तार कहाहै और एक पादकी पांच गुनी भित्तियोंकी ऊंचाई होती है ॥ ७९० ॥ और उससे दूनी शिरकी ऊँचाई होतीहै शिखरकी चौथाई अथवा दो भागका जो अर्ध भाग उसके प्रमाणकी ॥ ९१ ॥ शुकनासिकाको बनवावै और तीसरे भागकी वेदिका कहीहै और अमलसार नामका जो कण्ठ है वह चौथे भागका बनवाना चाहिये ॥ ९२ ॥

कपोलयोस्तुसंहारोद्विगुणोस्यविधीयते ॥ शोभनैर्वप्रवल्ली भिरण्डकैश्वविभूषितः ॥ ७९३ ॥ प्रासादेयस्तृतीयस्तुमया तुभ्यन्निवेदितः ॥ सामान्यमपरन्तद्वत्प्रासादंशृणुतद्विजाः त्रिभेदङ्कारयेत्क्षेत्रंयत्रतिष्ठन्तिदेवताः ॥ रथंकृत्वातुमानेनवा ह्यभागविनिर्गतम् ॥ ७९५ ॥ नेमीपादेनविस्तीर्णाप्रासाद स्यसमन्ततः ॥ गर्भंतुद्विगुणंकुर्यान्नेमीमानंभवेदिह ।७९६।

और उसके कपोलोंका प्रमाण दूना होनाचाहिये इसमें अत्यन्त मनोहर वप्रवल्ली और अण्डक लगे होतेहै ॥ ९३ ॥ प्रासाद का तीसरा प्रमाण तुम्हारे साम्हने कहागया है अब अन्य प्रमाणों कोभी सामान्यरीतिसे कहतेहै ॥ ९४ ॥ देवताओंके निवासस्थानके प्रासादके तीन विभाग करले फिर उसी प्रमाणसे रथको बनवाकर उसके वामभागमें चलावै ॥ ७९५ ॥ प्रासाद के चारों ओर एकपादकी नेमि बनवावे गर्भको दूना करके जो प्रमाण हो वही नेमिका मान होताहै ॥ ९६ ॥

सएवभित्तीनामुत्सेधोद्विगुणः शिखरोमतः ॥ प्राग्ग्रीवंप ञ्चभागेननिश्वासस्तस्यचोच्यते ॥ ७९७ ॥ कारयेच्छिखर न्तद्वत्साकारस्यविधानतः ॥ प्राग्ग्रीवन्तस्यमानेननिष्कांशे नविशेषतः ॥ ७९८ ॥ कुर्याद्वापञ्चभागेनप्राग्ग्रीवङ्कर्णमूल तः ॥ कारयेत्कनकन्तत्रगर्भान्तेद्वारमूलतः ॥ ७९९ ॥ एवन्तुत्रिविधंकुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ लिङ्गमानानुभेदे न रूपभेदे नवापुनः ॥ ८०० ॥

और यही भीतों की ऊँचाई होतीहै और उससे दूना शिखर होताहै और उसके पांचवें भाग का पूर्व की ओर ग्रीवा वाला निःश्वास कहाताहै ॥९८॥ तथा उस प्रकार के अन्य शिखरभी विधिपूर्वक बनवावै और उसके निष्क अंश

के प्रमाण से शिखरकी ग्रीवाको पूर्वदिशाको रक्खै ॥ ९८ ॥ अथवा कर्णमूल के पांचवें भागसे पूर्वको जिसकी ग्रीवाहो ऐसा शिखर बनवावै और उसमें गर्भके अन्तमें हारके मूलसे लेकर कनक बनवावे ॥ ९९ ॥ इस प्रकार ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठके भेदसे और लिंगमान वा रूपभेदसे तीनप्रकारके शिखर बनवाने चाहिये ॥ ८०० ॥

एतेप्रासान्यतःप्रोक्तानामतःशृणुताधुना॥ मेरुमन्दरकैला सकुंभसिंहमृगास्तथा ॥ ८०१ ॥ विमानछन्दकस्तद्वच्चतुरस्र स्तथैवच ॥ अष्टास्रः षोडशास्रश्चवर्तुलः सर्वभद्रकः ॥८०२ सिंहश्चनन्दनश्चैवनन्दिवर्द्धनएवच ॥ सिंहोवृषः सुवर्णश्च पद्मकोथसमुद्रकः ॥ ८०३ ॥ प्रासादनामतः प्रोक्ताविभागं शृणुतद्विजाः ॥ शतशृङ्गश्चतुर्द्वारोभूमिकाषोडशोच्छ्रितः८०४

ये शिखर संक्षेप से कहेहैं अब शिखरोंके नामोंको सुनो मेरु,मंदर, कैला स, कुंभ, सिंह, और मृग, ॥ १ ॥ विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोड- शास्र, वर्तुल, गोल, सर्वभद्रक, ॥ २ ॥ सिंहनन्दन, नंदीवर्द्धन, सिंह, वृष, सुवर्ण, पद्मक, और समुद्रक ॥ ३ ॥ ये नामहै अब इनके विभागको सुनों शत शृंग हों और चार जिसके द्वारहो भूमिकाके सोलह भागसेऊंचाहो ॥ ४ ॥

नानाविचित्र शिखरोमेरुप्रासादउच्यते मन्दरोद्वादशप्रोक्तः कैलासोनवभूमिकः ॥ ८०५ ॥ विमानच्छन्दकन्तद्वदने- कशिखरानतः ॥ सचाष्टभूमिकस्तद्वत्सप्तभिर्नन्दि वर्द्धनः ॥ ८०६ विंशांडकसमायुक्तोनन्दनःसमुदाहृतः ॥ षोडशास्र कसंयुक्तो नानारूपसमन्वितः ॥ ८०७ ॥ अनेकशिखर स्तद्वत्सर्वतोभद्रउच्यते ॥ चन्द्रशालासमोपेतोविज्ञेयःपंचभू- मिकः ॥ ८०८ ॥

और नाना प्रकार के विचित्र शिखर वाले को मेरु प्रासाद कहतेहैं और बारह चौक वाले बारह शिखर वालेको मन्दर कहतेहैं नौ भूमि वालेको कैलाश कहते हैं ॥ ८०५ ॥ अनेक शिखरों वालेको विमानच्छन्दक कहतेहैं औरउस की भूमि आठ होतीहैं और जिसकी सात भूमिहों वह नन्दिवर्द्धक होताहै॥६॥ बीस अंडकों से युक्त नन्दन कहलाताहै और जिसकी सोलह कौनहों और

जो नाना रूपसे युक्त हो ॥ ७ ॥ और अनेक जिसकी शिखर हों उसको सर्वतोभद्र कहतेहैं और वह चन्द्रशाला से युक्त होता है और उसकी भूमिपांच होतीहैं ॥ ८ ॥

वलभीच्छन्दकस्तद्वच्छुकनासत्रयान्वितः ॥ वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्योमंडितश्चित्रवर्जितः ॥ ८०९ ॥ सिंहःसिंहगतिर्ज्ञेयोगजोगजसमस्तथा ॥ कुंभःकुंभाकृतिस्तद्वद्भूमिकानवकोच्छ्रयः ८१० ॥ अङ्गुलीपुटसंस्थानपंचांडकविभूषितः ॥ षोडशास्त्रःसमंतात्तुविज्ञेयःससमुद्रकः ॥ ८ ११ ॥ पार्श्वयोश्चन्द्रशालास्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम्॥तथैव पद्मकः प्रोक्तः उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम् ॥ ८१२ ॥

इसी तरह तोते की नासिका के सदृश कोनों से युक्त हो, वृष की उंचाईके समान और मण्डित हो और चित्र रहित हो वह वलभिच्छन्दक कहाता है ॥ ९ ॥ सिंह के समान को सिंह और गज के समान को गज कहते हैं, और कुम्भ के समान आकार वाले को कुम्भ कहते है, और उसकी उंचाई भूमि के नवम भागकी होती है ॥ ८१० ॥ अंगुली के पोरूएके समान जिसकी स्थिति हो और पांच अडकों से भूषित और चारों ओरसे जिस के सोलह कौनेहों जिसको सामुद्रिक कहते हैं ॥ ११ जिसके दौनों पार्श्व भागों (पखवाडों)में चन्द्रशाला के समान मुखहो और ऊंचाहो जिसकी भूमिहो और जो उतनाही ऊंचा हो और दोही जिसकी भूमिहों उसे पद्मक कहते हैं ॥ १२ ॥

षोडशास्त्रः सविज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ॥ मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालाविभूषितः ॥ ८१३ ॥ प्राग्ग्रीवेणविशालेनभूमिकासषडुन्नता ॥ अनेकचन्द्रशालस्तुगजप्रासादउच्यते ॥ ८१४ ॥ पर्य्यंकगृहराजोवैगरुडोनामनामतः ॥ सप्तभूम्युच्छ्रगस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः ॥ ८१५ ॥ भूमिकास्तुषडशीतिर्वाह्यतः सर्वतोभवेत् ॥ तथान्योगरुडस्तद्वदुच्छ्रायोदशभूमिकः ॥ ८१६ ॥ पद्मकः षोडशास्त्रस्तुभूमिद्वयमथाधिकः ॥पद्मतुल्यप्रमाणेनश्रीतुष्टकइतिस्मृतः॥ पश्चां-

डकास्त्रिभूमिस्तुगर्भैहस्तचतुष्टयम् ॥ ८१७ ॥ वृषोभवतिना
म्नायः प्रासादः सार्वकामिकः ॥

सोलह कोनों से युक्त और विचित्र शिखर वाला मन्दिर शुभदाई होता है और जो चन्द्रशाला से भूषित हो उसे मृगराज कहते हैं ॥ १३ ॥ जिस की विशाल ग्रीवा पूर्वदिशा की ओर हो और भूमिके छठेभाग की उँचाईहो अनेक जिसमें चन्द्रशालाहों वह गजप्रासाद कहाता है ॥ १४ ॥ और पर्य्यंक गृहराज वा नाम से जिसे गरुड कहते हैं जिसकी सात भूमिकी उँचाई हो और जिसमें तीन चन्द्रशालाहों ॥८१५॥ जिसके चारोंओर बाहर की तरफ ॥ ८६ ॥ गज वा हाथ भूमिहो वहभी एक प्रकार का गरुड मन्दिर होता है और जिसकी उंचाई भूमिसे दशभागकी होती है ॥ १६ ॥ जिसमें सोलह कोनेहों और जिसमें दो भूमि अधिकहों वह पद्मक कहाता है ८ पद्मक के समान जिसका प्रमाणहो वह श्रीतुष्टक कहाताहै पांच अण्ड और तीन भूमि वाला हो तथा गर्भमें जिसके चार हाथहो ॥ १७ ॥ वह वृष होता है और वह प्रासाद सब कामनाओं को देता है ॥

सप्तकाः पञ्चकाश्चैवप्रासादायेमयोदिताः ॥ सिंहस्यतेसमा
ज्ञेयायेचान्येन्यत्प्रमाणतः ॥ ८१८ । चन्द्रशालैस्समोपेताः
सर्वेप्राग्ग्रीवसंयुताः ॥ ऐष्टिकादारवाश्चैवशैलजाश्चसतोरणाः
॥ मेरुः पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मंदिरः पंचहीनकः ॥ ८१९ ॥
चत्वारिंशत्तुकैलासश्चतुस्त्रिंशाद्वितानकः ॥ नन्दिवर्द्धनकस्त
द्द्वात्रिंशत्समुदाहृतः ॥ त्रिंशद्भिर्नन्दनः प्रोक्तः सर्वतोभद्र
कस्तथा ॥ २० ॥ एतेषोडशहस्ताः स्युश्चत्वारोदेववल्लभाः
कैलासोमृगराजस्तुवितानच्छन्दकोगजः ॥ २१ ॥ एतेद्वाद-
शहस्ताः स्युरेतेषांसिंहनादकः ॥ गरुडोष्टकरोज्ञेयः सिंहोदश
उदाहृताः ॥ ८२२ ॥

सप्तक और पञ्चक नाम के जो प्रासाद हैं वे सिंह नाम के प्रासाद के समान होते हैं और जो अन्य प्रासाद अन्य प्रमाण ॥१८॥ औरचंद्रशालाओं से युक्तहैं वे सब प्राग्ग्रीव से युक्त होते हैं और ईंट वा काष्ठ वा पत्थर के होते हैं और तोरणों से युक्त होते हैं मेरु नाम का मन्दिर पचास हाथ का और

मन्दर पैंतालीस ॥ १९ ॥ और कैलास चालीस हाथ का और वितानक चौंतीस हाथका और नन्दीवर्द्धन बत्तीस हाथका होताहै और नन्दन और सर्वतोभद्रक तीस हाथ का होता है ॥ २० ॥ ये कैलास, मृगराज, वितान-छन्दक, और गज ये चारों सोलह सोलह हाथ के देवताओं को प्रिय होते हैं ॥ २१ ॥ और ये बारह हाथ के होते हैं और इन में सिंह नादक और गरुड़ के आठ कौन होते हैं और सिंह के दश कौन कहे हैं ॥ ८२२ ॥

एवमेवप्रमाणेनकर्तव्याः शुभलक्षणाः ॥ यक्षराक्षसनागा नामष्टहस्तः प्रशस्यते ॥ २३ ॥ तथामेर्वादयः सप्तज्येष्ठलिङ्गाःशुभावहाः॥ श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौमध्येयस्यउदाहृताः २४ तथाहंसादयः पंचउक्तास्तेशुभदामताः ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामिशक्त्यालिङ्गस्यलक्षणम् ॥ २५ ॥ लिङ्गदैर्घ्यांगुलैर्लिङ्गंवि-स्तारङ्गणयेद्बुधः। लिङ्गविस्तारमानेनात्रिगुणम्पीठविस्तरम् २६

इसी प्रमाण से शुभ लक्षण वाले शुभ प्रासाद बनवाने चाहिये यक्ष राक्षस नाग इनको आठ हाथ का मन्दिर श्रेष्ठ होता है ॥ २३ ॥ और मेरु आदि सात उत्तम लिंग के शुभदायक है और जो मध्यमें श्रीवृक्षक आदि आठ हैं ॥ २४ ॥ और हँस आदि जो पांच हैं वे सब शुभ फलदायक होते हैं इस के अनन्तर शक्तिसे लिंगके लक्षण को कहते हैं॥२५॥लिंग की लम्बाईके अंगुलों से बुद्धिमान् मनुष्य लिंगके विस्तारको गिने और लिंगके विस्तारका जितना मानहो उससे तिगुना विस्तार पीठ का होता है ॥ ८२६ ॥

गर्भगेहप्रविस्तारन्त्रिभागंपरिकल्पयेत ॥ तेषुभागेषुचैकेन पीठविस्तारमाचरेत ॥ २७ ॥ दीर्घंकुर्वीतपीठानांविष्णुभागावसानकं ॥ मूलेमध्येतथोर्द्धेचब्रह्माविष्णुहरांशकं ॥२८॥ पीठिकालक्षणम्वक्ष्येयथावदनुपूर्वशः ॥ पीठोच्छ्रायेयथावच्च भागान्षोडशकारयेत् ॥ २९ ॥ भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगतीमतः ॥ वृतोभागस्तथैकः स्याद्वृत्तादूर्द्धस्तुभागतः ॥ ३० ॥

गर्भ गेहके विस्तार की तीन भाग की कल्पनां करै उन भागों में एक भाग से पीठ का बिस्तार करै ॥ २७ ॥ और विष्णु के भाग पर्यन्त पीठों

की चौड़ाई करै मूल और मध्य और ऊर्द्ध भाग में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इन के अंशों को रक्खै ॥ २८ ॥ अब क्रम से पीठिका के यथावत् लक्षणों को कहता हूँ पीठ की ऊँचाईमें यथा योग्य सोलह भागों को करै ॥ २९ ॥ उनमें से एक भाग भूमि में प्रविष्ट होता है और चार भाग की जगती कहाती है एक भागका वृत्त होताहै और वृत्तके भागसे ऊर्द्ध भाग होताहै ॥३०॥

भागैस्त्रिभिस्तथाकंठंकंठपदस्त्रिभागतः ॥ भागैकमूर्द्धकेयश्चशेषभागेनपट्टिका ॥ ८३१ ॥ प्रविष्टंभागमेकन्तुजगतीयावदेवतु ॥ निर्गमस्तुपुनस्तस्यायावद्वैपोषपट्टकावारिनिर्गमनार्थस्तुतत्रकार्यम्प्रमाणतः ॥ लिङ्गबाणादिकंकुर्यात्सप्तांशंवात्रिभागितं ॥ ८३२ ॥ पञ्चभागंद्विभागंवायथायोग्यंयथास्थिरं॥सप्तभागकृतेलिङ्गेचतुरंशान्निवेदयेत्॥३३ ॥

तीन भागों से कण्ठ होता है और कण्ठ के तीसरे भाग का पद होता है ऊर्द्ध में जो एक भाग है उसके शेष भाग का पट्टिका होता है ॥ ३१ ॥ और जहां तक जगती है वहां तक एक भाग पृथ्वी में रहता है और उस जगती का अर्थात् जलके प्रवाहका निकास शेष पट्टिका तक होता है अर्थात् मकान के पीछेतक जगती बनानी चाहिये और जल के निकालने के लिये वह प्रमाण युक्त होनी चाहिये ॥ ३२ ॥ और लिंग वाण आदि को सात अंश वा भागों से बनवावै अथवा पांच वा दो भाग जिस तरह रहै उस तरह उचित रीति से बनवावै सात भाग से बनाये हुये लिंग में चार अंशों को लगावै ॥ ८३३ ॥

पीठमध्यगतेगर्तेत्रिभागञ्चैकभागकम् ॥ पञ्चभागेतुभागांस्त्रीन्द्विभागेर्द्धंयथाक्रमम् ॥ ८३४ ॥ एवंबाणादिलिङ्गानाम्प्रवेशः शिवनोदितः ॥ स्थूलंशिरः कृशंमूलमुन्नतेतन्मुखंशिरः ॥ ८३५ ॥ निम्नपृष्ठमितिख्यातम्बालगेहादिलिङ्गके ॥ अज्ञातमुखपृष्ठानाङ्कन्यास्पृष्टम्मुखंस्वरः ॥ ८३६ ॥ ज्येष्ठामध्याकनिष्ठाचात्रिबिधाब्रह्मणाऽशिलाः॥ त्रिगुणंविस्तृतङ्कुर्यादन्यथावाप्रकारकः ॥ ८३७ ॥

जो पीठके बीचवाला गर्त है उस में तीनभाग वा एक भाग और पांच भागके गर्त में तीन भाग और दो भाग के गर्तमें आधाभाग क्रमसे रखना चाहिये ॥ ३४ ॥ इसी तरह बाण आदि लिंगों का प्रवेश शिवजी ने कहा है और शिर स्थूल हो और जड पतली हो और ऊंचाई में उसके मुखमें शिर हो ॥ ३५ ॥ पीठका भाग नीचा हो ऐसा चिन्ह बालगेह आदि लिंगों में होता है जिनका मुख और पिछला भाग मालूम न हो उनका शिर ऐसा होना चाहिये जिसके मुखको कन्या छूसके ॥३६॥ बडी, मध्यम और छोटी इनतीन प्रकार की ब्रह्माकी शिला होती है उससे तिगुनी लंबाई का परकोटा बनवावै ॥ ३७ ॥

उक्तानामपिपीठानांविस्तरादधिकाङ्गुलैः ॥ त्रिभागपीठविस्तारङ्कृत्वातत्रैकभागतः ॥ ॥ ८३८ ॥ दीर्घंकुर्यात्प्रणालञ्चतन्त्रिभागैकविस्तरम् ॥ ब्रह्मसूत्रचतुष्केतुस्थाप्यकूर्मशिलान्ततः ॥ तद्गर्भेविन्यसेत्कूर्म्मंसौवर्णन्द्वादशंसुखम ॥ ८३९ ॥ तत्ररत्नादिभिस्सार्द्धंभूमिञ्चत्हृदयेन्यसेत् ॥ तस्यैवहितत्तद्गर्भेनीरंध्रंवज्रलेपकैः ॥ लिप्त्वाथशांतितोयेनप्रोक्ष्योल्लिख्योक्तवत्ततः ॥ ८४० ॥

पूर्वोक्त पीठों के विस्तार से अधिक अंगुलों से पीठके विस्तार को तिगुना करके उसके एक भाग के प्रमाण से ॥ ३८ ॥ लंबाई करै और पन्नाला उससे तिहाई रक्खै और ब्रह्मसूत्र के चतुष्कमें कूर्मशिला के बीचमें बारह मुखी सुवर्णका कच्छप स्थापन करै और उस के ऊपर ॥ ३९ ॥ रत्नादि सहित भूमि को हृदय के ऊपर स्थापन करै । और उसके छेदों को चूनेकी कलई से रोक दे फिर लेपन करके उस पर शांति पाठका जल छिडक दे और फिर पहिले की तरह उल्लेखन करै ॥ ८४० ॥

ततस्तेजोविधांशक्तिङ्कलितासनरूपिणीम् ॥ स्थापयेच्च सुलग्नेतुदैवज्ञोक्तेमुहूर्तके ॥ ८४१ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि मंडपानाञ्चलक्षणम् ॥ मण्डपान्प्रवरान्वक्ष्येप्रासादस्यानुरूपतः ॥ ८४२ ॥ विविधामण्डपाः कार्याः श्रेष्ठमध्यकनीयसः ॥ नामतस्तान्प्रवक्ष्यामिशृणुध्वंद्विजसत्तमाः ॥८४३॥

फिर कलितासन रूपिणी तेजोविधाशक्ति का ज्योतिषियों से निर्दिष्टशुभ मुहूर्तके शुभ लग्नमें स्थापन करै ॥ ४१ ॥ तदनंतर मंडपों का लक्षण और प्रासाद के अनुसार उत्तम मंडपों को कहताहूं ॥ ४२ ॥ श्रेष्ठ मध्यम कनिष्ठ भेदसे अनेक प्रकारके मंडप बनवावै उनके नामों को ध्यान पूर्वक सुनो।४३।

पुष्पकः पुष्पभद्रश्चसुवृत्तोमृतनन्दनः ॥ कौशल्याबुद्धिसङ्कीर्णोगजभद्रोजयावहः ॥ ८४४ ॥ श्रीवृक्षोविजयश्चैववास्तुकोणेश्रुतन्धरः ॥ जयभद्रोविलासश्चसाश्लिष्टः शत्रुमर्दनः ॥ ८४५ ॥ भाग्यपंचोनन्दनश्चमानवोमानभद्रकः ॥ सुग्रीवोहर्षणश्चैव कर्णिकारपदाधिकः ॥ ८४६ ॥ सिंहश्चयामभद्रश्चशत्रुघ्नश्चतथैवच ॥ सप्तविंशतिराख्यातालक्षणंशृणुताद्विजाः ॥ ८४७ ॥

पुष्पक, पुष्पभद्र, सुवृत्त, अमृतनंदन, कौशल्य, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र जयावह ॥ ४४ ॥ श्रीवृक्ष, विजय, वास्तुक, श्रुतंधर, जयभद्र, विलास, साश्लिष्ट, शत्रुमर्दन ॥ ४५ ॥ भाग्यपंच, नंदन, मानव, मानभद्र, सुग्रीव, हर्षण, कर्णिकार, पदाधिक ॥ ४६ ॥ सिंहयामभद्र, और शत्रुघ्न ये सत्ताईस मंडप हैं अब इनके लक्षणों को सुनो ॥ ४७ ॥

स्तम्भायत्रचतुष्षष्टिः पुष्पकः सउदाहृतः ॥ द्वाषष्टिः पुष्पभद्रस्तुषष्टिस्तुवृत्तउच्यते ॥८४८॥ अष्टपंचशकस्तंभः कथ्यतेऽमृतनंदनःकौशिल्योयाद्विपञ्चाशच्चतुःपंचाशतान्पुनः।८४९। नाम्नातुबुद्धिसङ्कीर्णोद्विहीनोराजभद्रकः ॥ जयावहास्त्रिपंचाशच्छ्रीवत्सस्तद्विहीनकः ॥ ८५० ॥ द्वात्रिंशद्धर्षणोज्ञेयः कर्णिकारश्चविंशतिः ॥ पदद्विकोष्ठाविंशतिभिर्द्विरष्टोसिंहउच्यते ॥ ८५१ ॥ द्विहीनोयामभद्रस्तुसुशत्रुश्चानिगद्यते ॥ यामभद्रःक्वचित्प्रोक्तो द्वदाशस्तंभसंयुतः ॥ ८५२ ॥ मण्डपाः कथिताह्येतेयथावल्लक्षणान्विताः ॥

जिसमें चोंसठ खम्भ हो उसको पुष्पक कहते हैं जिसमें बासठ खम्भहों उसे पुष्पभद्र कहते हैं और जिसमें साठ खम्भहों उसे वृक कहते हैं ॥ ४८ ॥

अट्ठावन खम्भ वालेको अमृतनन्दन कहते हैं ५२ स्तंभ वालेको कौशल्य ५४ स्तंम्भ वालेको ॥४५॥ बुद्धिसंकीर्ण ५२ स्तंम्भ वालेको राजभद्र कहतेहैं तिरेपन स्तंम्भ वालेको जयावह इक्यावन स्तंम्भ वाले को श्रीवत्स ॥ ८५०॥ वत्तीस स्तंम्भ वालेको दर्पण, बीस स्तंम्भ बालेको कर्णिकार, अट्ठाईस स्तंम्भ वालेको पद्माधिक, सोलह स्तंम्भ वाला सिंह होता है ॥ ५१ ॥ चौदह स्तम्भ वालेको सोमभद्र और शत्रुहन कहतेहैं कोई २ वारह स्तंम्भोंसे युक्त मंडपको रामभद्र कहतेहैं ॥ ५२ ॥ ये पूर्वोक्त मण्डप और उनके लक्षण कहे गये है ॥

त्रिलोकवृत्तमध्येतुअष्टकोणिन्द्विरष्टकम् ॥ ८५३ ॥ चतुष्कोणश्च कर्तव्यं संस्थानम्मण्डपस्यतु ॥ राज्यञ्चविजयञ्चैवआयुर्वर्द्धनमेवच ॥ ८५४ ॥ पुत्रलाभः श्रियःपुष्टिः स्त्रीपुत्रादिषुक्रमाद्भवेत् ॥ एवन्तुशुभदः प्रोक्तअन्यथातुभयावहः ॥ ८५५ ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

त्रिकोण वृत्तके मध्यमें अष्टकोण षोडशकोण ॥ ५३ ॥ वा चतुष्कोण मण्डप का स्थान बनावे राज्य विजय अवस्थाकी वृद्धि ॥ ५४ ॥ पुत्रलाभ लक्ष्मी स्त्री पुत्र आदिकोंका पोषण क्रमसे पूर्वोक्त मण्डपोंमें होताहै इसप्रकार का मंडपशुभ होताहै इससे अन्य तरहका भयप्रद होताहै॥ इति विश्वकर्माप्रकाशे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथातः शृणुविप्रेन्द्रद्वारलक्षणमुत्तमम् ॥ द्वाराणांचैव विन्यासःपक्षाः पञ्चदशास्मृताः ॥ ८५६ ॥ त्रिषुत्रिषुचमासेषुनभस्यादिषुवैक्रमात् ॥ यद्दिङ्मुखोवास्तुनरस्तन्मुखंसदनंशुभं ॥ ८५७ ॥ अन्यदिङ्मुखगेहन्तुदुःखशोकभयप्रदम् ॥ यस्मात्तद्दिङ्मुखद्वारंप्रशस्तंनान्यदिङ्मुखम् । ८५८ । अथद्वितीयः ॥ त्रिषुत्रिषुचराशीनाङ्कन्यादीनांस्थितेरवौ ॥ पूर्वादिषुनकर्तव्यंद्वारञ्चैवयथाक्रमात् ॥ ८५९ ॥ अथ तृतीयः ॥ कर्ककुम्भगतेसूर्येमुखंस्यात्पूर्वपश्चिमे ॥ मेषकीटगतेवापिमुखंचोत्तरदाक्षिणे ॥ ६० ॥ मुखानिचान्यथाकर्तुर्व्याधिशोकभयानिच ॥ अन्यराशिगतेसूर्ये नावदध्यात्कदा

चन ॥ ८६१ ॥ अथ चतुर्थः ॥ सिंहेतुपश्चिमंद्वारन्तुला याञ्चोत्तरन्तथा ॥ कर्कटेपूर्वदिग्द्वारद्वारंपाश्चिमवार्जितम् ॥ ८६२ ॥ कर्कटेकैचसिंहस्थेपूर्वद्वारन्नशोभनम् ॥ तुला यांवृश्चिकेचैवद्वारंपाश्चिमवर्जितम् ॥ ८६३ ॥

अबउत्तम द्वार के लक्षणों को सुनों द्वार विन्यासमें पंद्रह पक्ष होतेहैं अर्थात् पंद्रह प्रकार के होतेहैं ॥ ८५६ ॥ और वे भाद्रपदादि तीन २ मासोंमें पूर्व क्रमसे होतेहें और वास्तु पुरुष का मुख जिस दिशा में हो उसी दिशा में स्थान का द्वार फलदायक होता है ॥ ५७ ॥ तथा अन्य दिशामें मुखवाला द्वारदुःख शोक और भयका दैनेवाला होताहै इसलिये वास्तु पुरुषके मुखकी दिशाका द्वारही श्रेष्ठहै अन्य दिशाका नहीं ॥ ५८ ॥ अब दूसरी बात कहते है कन्या आदि तीन २ राशियोंपर सूर्यके स्थित होंने के समय पूर्व आदि दिशाओंमें घरका द्वार न बनवाना चाहिये॥२९॥ अब तीसरा भेद यहहै कि कर्क और सिंह के सूर्यमें पूर्व और पाश्चिममें मुख होताहै मेष और वृश्चिक के सूर्यमें उत्तर दक्षिण में मुख होता है ॥ ८६० ॥ पूर्वसे अन्यथा घर का द्वार बनवाया जाय तौ व्याधि, शोक और भय होतेहैं अन्य राशिके सूर्यमें द्वारको कदाचित् न बनवावै ॥ ६१ ॥ अब चौथा भेद कहतेहैं सिंहके सूर्य में पश्चिम का द्वार तुलाके सूर्यमें उत्तर मुखवाला द्वार और कर्क के सूर्यमें पूर्वदिशा में मुखवाला द्वार बनवावै और पश्चिम दिशाका द्वार छोडदैना चाहिये ॥ ६२ ॥ कर्क और सिंहके सूर्यमें पूर्वका द्वार उत्तम नहीं होता है तुला और वृश्चिक के सूर्यमें पाश्चिम दिशाको छोडकर अन्यादिशामें बनवाना उत्तम है ॥ ६३ ॥

कर्कटेकैचसिंहस्थेयाम्यद्वारन्नशोभनम् ॥ सूर्यमकरकुम स्थेसौम्यद्वारञ्चनिन्दितम् ॥ नृयुक्कन्याधनुर्मीनसंस्थितेर्कैन कारयेत् ॥८६४॥ द्वारस्तंभैतथादारुसञ्चयञ्चविवर्जयेत् ॥ माघेसिंहेचदारूणांछेदनन्नैवकारयेत् ॥ मोहात्कुर्वन्तियेमूढा स्तद्देहेग्निभयंभवेत् ॥ ८६५ ॥ अथपंचमः ॥ पूर्णादित्वष्टमी यावत्पूर्वास्यंपरिवर्जयेत् ॥ उत्तरास्यंनकुर्वीतनवम्यादिचतुर्द शी ॥ ६६ ॥ अथषष्ठः ॥ प्रत्युङ्मुखंब्राह्मणानांक्षत्रियाणा-

न्तथोत्तरे ॥ वैश्यानाम्पूर्वदिग्द्वारंशूद्राणांदक्षिणेशुभम् ६७

कर्क और सिंह के सूर्य में दक्षिण का द्वार बनवाना ठीक नहीं है मकर और कुम्भ के सूर्य में उत्तर का द्वार निन्दित है ॥ मिथुन कन्या धन और मीन के सूर्य में द्वार कभी न बनवावै ॥ ६४ ॥ तथा द्वार का स्तंभ और काष्ठ का संचय कदाचित् न करै माघ में और सिंहमें काष्ठ का छेदन न करवावै, जो मूढ लोग अज्ञान से ऐसा करतेहैं उन के घरमें अग्नि का भय होता है ॥ ६५ ॥ अब पांचवां प्रकार यह है—पूर्णिमासे अष्टमी तक पूर्व मुखके द्वार को न बनवावै नवमी से चतुर्दशी तक उत्तर मुख के द्वार को न बनवावै ॥ ६६ ॥ छटी बात यह है, ब्राह्मणों का द्वार पश्चिम मुख का, क्षत्रियों का उत्तर मुख का, वैश्यों का पूर्व मुख का, और शूद्रों का दक्षिण मुख का, शुभ होता है ॥ ८६७ ॥

अथसप्तमः ॥ कर्कटोवृश्चिकोमीनोब्राह्मणःपरिकीर्तितः मेषःसिंहोधनुर्धारीराशयःक्षत्रियाःस्मृताः॥वैश्यावृषमृगौकन्या शूद्राःशेषाःप्रकीर्तिताः।६८। वर्णक्रमेणपूर्वादिग्दक्षिणेपश्चिमे तथा ६९ योयस्यराशिर्भर्तुर्यस्यतस्यद्वारंततश्चरेत् ॥ दिशितद्विपरीतंतुकर्त्तुर्नेष्टफलंभवेत्।७०। अथाष्टमः॥ धनुर्मेषसिंहेयदारात्रिनाथस्तदापूर्वभागेन्यसेद्द्वारमाद्यम् ॥ मृगः कन्यकागोषु-द्वारंचयाम्येतुलायुग्मकुंभेतथापश्चिमास्यम् ॥ ७१ ॥ कर्कटे-वृश्चिकेमीनेराशिस्थेचोत्तरेन्यसेत् ॥ अथनवम् ॥ कृत्तिका-द्यंसप्तपूर्वेमघाद्यंसप्तदक्षिणे ॥ ८७२ ॥ मैत्राद्यंपश्चिमेज्ञेयं-धनिष्ठाद्यंसप्तउत्तरे ॥ यद्दिग्भसंस्थितेचन्द्रेतद्दिग्द्वारम्प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ पृष्ठदक्षिणवामस्थेनविदध्यात्कदाचन ❀ ॥

सातवीं बात यह है—कर्क वृश्चिक और मीन ये राशि ब्राह्मण कहाती है. मेष सिंह धन ये राशि क्षत्रिय कहाती है ॥ ८६८ ॥ वृष मृग कन्या ये राशि वैश्य कहाती है और शेष राशि शूद्र कहाती है. वर्ण के क्रम से पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओं के द्वार होते है ॥ ६९ ॥ जिस मनुष्य की जो राशि हो उसी से उसका द्वार बनवावै, उसके विपरीत दिशामें द्वार बनवाने से बनवाने वालेको अच्छा फल नहीं मिलता ॥ ७० ॥ अब आठवां

भेद यह है कि धन मेष और सिंह राशियों पर जब चन्द्रमा हो तो पूर्व दिशा में द्वार बनवावे । मकर कन्या और वृष का चंद्रमा हो तो दक्षिण दिशा में और तुला, मिथुन, और कुम्भ का चंद्रमा हो तो पश्चिम दिशा में ॥ ७१ ॥ कर्क वृश्चिक और मीनका चन्द्रमा हो तो उत्तर में द्वार बनवावे । अब नवां भेद यह है, कि कृत्तिका से लेकर सात नक्षत्र पूर्व में और मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण में ॥ ७२ ॥ और अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम में और धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर में होतेहैं जिसदिशाके नक्षत्रपर चंद्रमा स्थित हो उसी दिशा में घरका द्वार शुभ होता है ॥७३॥ और पीठ दक्षिण और वामभागके नक्षत्रपर द्वारको कदाचित् न बनवाना चाहिये ॥

अथदशमः ॥ प्रागादिविन्यसेद्वर्गान्सव्यमार्गेणवैद्विजः ॥ ७४ ॥ सिंहेचोत्तरदिग्द्वारंपाश्चिमास्यंविवर्जयेत् ॥ अथैकादशः ॥ प्राग्दक्षिणेगजद्वारंवृषेप्राच्यान्नचान्यदिक् ।७५। पृष्ठद्वारन्न कर्त्तव्यङ्कोणेष्वेवाविशेषतः ॥ अथद्वादशः ॥ त्रिषुत्रिषुचमासेषुमार्गशीर्षादिषुक्रमात् ॥ ७६ ॥ पूर्वदक्षिणतोयेशपौलस्त्याशांमादगुः॥ द्वारेवह्निभयम्प्रोक्तंस्तम्भेवंशविनाशनम् ॥ ८७७ ॥

अब दसवां भेद यह है-कि पूर्व आदि दिशाओं में वाममार्ग से वर्गों को स्थापन करै ॥ ७४ ॥ सिंह में उत्तर दिशा और पश्चिम दिशा के द्वार को छोड़ देना चाहिये ॥ अब ग्यारहवां प्रकार कहते हैं, पूर्व और दक्षिण में मेषके सूर्य में, वृषमें पूर्व दिशामें द्वार को बनवावै, अन्य दिशा में नहीं ॥ ७५ ॥ घरके कभी पीछे दरवाजाको न बनवावै और कोनोंमें तो भूल कर भी न रक्खै ॥ अब बारहवां प्रकार कहते है, मार्गसिर आदि तीन तीन महीनों में क्रम से ॥ ७६ ॥ पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशामें राहु बसता है द्वार में आगकाभय और स्तम्भ के राहु के मुख की दिशा गाढने से वंश का नाश होता है ॥ ८७७ ॥

अथत्रयोदशः ॥ रक्षः कुबेराग्निजलेचयाम्येवायव्यकाष्ठासुचभानुवारात् ॥ वसेत्तमश्चाष्टसुदिक्षुचक्रेमुखेविवर्ज्योगमनेगृहंच ॥ ८७८ ॥ अथचतुर्दशः ॥ ध्रुवन्त्वाद्यंगृहंप्रोक्तंसर्व

द्वारविवर्जितम्॥ धान्येपूर्वदिशिद्वारंदक्षिणेजयसंज्ञकम्॥७९
प्राग्दक्षिणेनन्दगृहेपश्चिमेखरमेवच ॥ प्राक्पश्चिमेतथाकान्त
प्रत्यग्याम्येमनोरमे ॥ ८० ॥ सुवक्केचोत्तरेवर्ज्यन्दुर्मुखेचो
त्तरेतथा ॥ प्रागुत्तरेक्रूरसंज्ञेविपदोदक्षिणेतथा ॥ ८१ ॥
धनदेपश्चिमेवर्ज्यंक्षयंचोत्तरपश्चिमे ॥ आक्रन्देदक्षिणन्त्या
ज्यंविपुलेपूर्वमेवच ॥८२॥ विजयाख्यञ्चतुर्द्वारमलिन्दैः
सर्वतोयुतम् ॥ राज्ञांसिद्धिकरम्प्रोक्तंसर्वतोभद्रसंज्ञकम् ।८८३।

अब तेरहवां भेद कहते हैं, राक्षस नैर्ऋति उत्तर अग्नि, ईशान, दक्षिण और वायव्य इनदिशाओं में रविवार से लेकर राहु वसता है. आठोंदिशाओं के चक्र में राहु घरके द्वार और गमन के प्रारंभमें वर्जित है ॥ ७८ ॥ चौदहवां भेद यह हैं, पहिला गृह ध्रुव कहा है वहसब द्वारोंसे रहित होता है. पूर्व दिशा में जिसका द्वार हो वह धान्य कहाता है और दक्षिणमें द्वार वाला जयसंज्ञक कहाताहै ॥ ७९ ॥ पूर्व दक्षिणमें द्वार होतो नन्द गृह पश्चिममें हो तो खर पूर्व पश्चिममें होतो कान्त पश्चिम दक्षिण में होतो मनोरम ॥ ८० ॥ उत्तर में होतो सुमुख होता है उत्तर दिशामें दुर्मुखनामका गृह निषिद्धहै उत्तर दक्षिणके क्रूरसंज्ञक घर में बिपत्ति होतीहै ॥ ८१ ॥ पश्चिम द्वार धनद गृहमें वर्जित है और उत्तर पश्चिममें गृह होयतौ क्षय होताहै. आक्रन्द–नामक घरमें दक्षिणका और विपुल नामके घरमें पूर्वका द्वार निषिद्धहै ॥ ८२ ॥ चार जिसमें द्वारहों ऐसा विजय नामका घर जो चारों ओर अलिन्दोंसे युक्त होता है वह सर्वतोभद्रनामका ग्रह राजाओंका सिद्धि देंने वाला कहा है ॥ ८३ ॥

अथपञ्चदशः।द्वारचक्रम्प्रवक्ष्यामियदुक्तंब्रह्मणापुरा॥सूर्य
भान्चतुष्कन्तुद्वारस्योपरिविन्यसेत् ॥ ८८४ ॥ द्वेद्वेकोणेप्र
दातव्यंशाखायुग्मेद्वयंद्वयम्॥अधश्चत्रीणिदेयानिवेदामध्ये
प्रतिष्ठिताः॥८८५॥ राज्यंस्यादूर्द्धनक्षत्रेकोणेषुद्वासनंभवेत्॥
शाखायांलभतेलक्ष्मीध्वजेचैवमृतिर्भवेत् ॥ ८८६ ॥

अब पन्द्रहवां भेद कहते हैं, अब उस द्वारचक्रका वर्णन करताहूं, जो पहिले ब्रह्माने कहाहै कि सूर्यके नक्षत्रसे चार नक्षत्र द्वारके ऊपर रक्खै॥८४॥ दोदो नक्षत्र कोणमें और दोदो नक्षत्र दोनों शाखाओंमें और तीन नक्षत्र

नीचेवाले भागमें रक्खै और चार नक्षत्र मध्यमें रक्खें ॥ ८५ ॥ ऊपर के नक्षत्रों में द्वार बनवावै तो राज्यहोताहै, कोणके नक्षत्रों में उद्वासन शाखोंके नक्षत्र में लक्ष्मीकी प्राप्ति, और ध्वजाके नक्षत्रोंमें मरण होताहै ॥ ८६ ॥

मध्यस्थेषुभवेत्सौख्यंचिन्तनीयंसदाबुधैः ॥ अश्विनीचोत्तराहस्ततिष्यश्रुतिमृगाःशुभाः॥ स्वातीपूष्णेचरोहिण्यान्द्वारशाखावरोपणे ॥ ८८७ ॥ पञ्चमीधनदाचैवमुनिनन्दावसौशुभम् ॥ प्रतिपत्सुनकर्तव्यंकृतेदुःखमवाप्नुयात् ॥ द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशनम् ॥ ८८८ ॥ तृतीयारोगदाज्ञेयाचतुर्थीभङ्गकारिणी ॥ कुलक्षयेतथाषष्ठीदशमीधननाशिनी ॥ ८८९ ॥ विरोधकृत्त्वमावास्यानास्यांशाखावरोपणम् ॥ केन्द्रत्रिकोणेषुशुभः पापैस्त्र्यायारिगैस्तथा ॥ ८९० ॥ द्यूनाम्बरेशुद्धियुतद्वारशाखावरोपणम् ॥ शुभंस्याच्छुभवारेच पञ्चकेनत्रिपुष्करे ॥ आग्न्येयाधिष्ण्यसोमेहिनकुर्यात्काष्ठरोपणम् ॥ ९१ ॥

मध्यके नक्षत्रोंमें सुख होता है. यह चक्र बुद्धिमान् मनुष्योंको सदा ध्यान दैने योग्य है. अश्विनी, उत्तरा, बिशाषा श्रवण, मृगसिर ये नक्षत्र शुभहै स्वाति, रेवती, रोहिणी, द्वार शाखाके स्थापनमें शुभ होते है ॥ ८७ ॥ पंचमी धन दाता और सप्तमी अष्टमी नवमी शुभ फलदायक होती है. प्रतिपदामें द्वार कभी न बनवावै बनवावैतो दुःख होताहै, द्वितीयामें द्रव्यकी हानि और पशु पुत्रका नाश होताहै ॥ ८८ ॥ तृतीया रोग की दाता, चतुर्थी भंग करतीहै, षष्टी कुलका नाश और दशमी धनका नाश करती है ॥ ८९ ॥ अमावास्या विरोधको करती है इससे इसमें शाखाका आरोपणन करै. शुभ ग्रह होंय और ३। ११।६। स्थानों में पापग्रह होंय ॥ ९० ॥ सातवें, और दसवें घरमें ग्रह शुद्ध होय तो द्वारकी शाखाका स्थापन शुभ वार में शुभ होता है और पंचक त्रिपुष्कर योगमें शुभ नहीं अग्नि जिसका स्वामीहो ऐसे कृतकामें और सोम वारको घर शाखाका स्थापन करै ॥९१॥

प्रणम्यवास्तुपुरुषंदिक्पालंक्षेत्रनायकम् ॥ द्वारशाखारोपणञ्च कर्तव्यंतदनन्तरम् ॥ शुभंनिरीक्ष्यशकुनमन्यथापरिवर्ज-

येत् ॥ ८९२ ॥ कुड्यांभित्त्वानकुर्वीतद्वारंतत्रसुखेप्सुभिः ॥ कृत्तिकाभगमैत्रंतुविशाखाचपुनर्वसुः ॥ ८९३ ॥ तिष्यंहस्तं तथार्द्राचक्रमात्पूर्वेषुविन्यसेत् ॥ मैत्रंविशाखापौष्णंचनैर्ऋत्यं यमदैवतम् ॥ ८९४ ॥ वैश्वदेवाश्विनीचित्राक्रमाद्दक्षिणमा स्थिताः ॥ पित्र्यम्प्रौष्ठपदार्यम्णंतथामांसान्नदैवतम् ।८९५। वारुणाश्विनसावित्र्यंक्रमात्पश्चिमसंस्थितम् ॥ स्वात्यश्लेषा भिजित्सौम्यंवैष्णवंवासवन्तथा ॥ ८९६ ॥ याम्यम्ब्राह्मयंक्र मात्सौम्यंद्वारेषुचाविनिर्दिशेत् ॥ द्वारर्क्षैस्तद्दिशाद्वारंस्थापये द्वाविचक्षणः ॥ ८९७ ॥ स्तंभाद्यारोपणंशस्तन्तथैवविधिना बुधैः ॥ अधोमुखैश्चनक्षत्रैर्देहलीखातमेवच ॥ ८९८ ॥ ति र्यङ्मुखर्क्षैर्द्वारर्क्षैस्तंभद्वारावरोपणम् ॥ प्रासादेषुचहर्म्येषुगृहेष्व न्येषुसर्वदा ॥ ८९९ ॥

वास्तुपुरुष दिक्पाल और क्षेत्रके स्वामी को प्रणाम करके शुभ शकुनों को देखकर द्वारशाखा का आरोपण करै नहीं तौ न करै ॥ ९२ ॥ सुखाभि-लाषी मनुष्यको उचित है कि कुंडीका भेदन करके द्वारको कदाचित् न बनवावै. कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुन, अनुराधा, पुनर्वसु, ॥ ९३ ॥ तिष्य, हस्त, आर्द्रा इन नक्षत्रों को क्रमसे पूर्व दिशामें रक्खें. अनुराधा विशाखा रेवती भरणी उत्तराषाढ अश्विनी चित्रा इन नक्षत्रों को क्रमसे दक्षिणमें रक्खै, मघा, प्रौष्ठपद, अर्यमा, मूल ॥ ९४ ॥ ८९९ ॥ शतभिषा, अश्विनी, हस्त इनको क्रमसे पश्चिम दिशामें रक्खै, स्वाति, श्लेषा, अभिजित् मृगशिर, श्रवण धनिष्ठा ॥ ९६ ॥ भरणी, रोहिणी, इनको क्रमसे उत्तर कोणमें स्थापन करै बुद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि उस दिशाके द्वारके नक्षत्रोंमेंही उस दिशाके द्वारको बनवावै ॥ ९७ ॥ और स्तंभादिका आरोपण भी इस विषय का ज्ञाता विधिपूर्वक करै और अधोमुख नक्षत्रोंमें देहली खातको करै ॥ ९८ ॥ और तिर्यङ्मुखनक्षत्रोंमें तथा द्वारके नक्षत्रोंमें प्रासाद, हर्म्य और घरोंके बीचमें स्तंभ तथा द्वारका आरोपण करै ॥ ९९ ॥

आग्नेय्यांप्रथमंस्तंभंस्थापयेत्तद्विधानतः ॥ स्तंभोपरियदापश्ये त्काकगृध्रादिपक्षिणः ॥ ९०० ॥ दुर्निमित्तानिसंवीक्ष्यतदा कर्तुंनशोभनम् ॥ तस्मात्स्तंभोपरिच्छिन्नंशाखांफलवतींतुवा ॥

९०१ ॥ धारयेदथवावस्त्रंबुधोरत्नादिनिःक्षिपेत ॥ दिक्साध नञ्चकर्तव्यंशिलाद्वारावरोपणम् ॥ ९०२ ॥ स्तंभेचवास्तु विन्यासेतथाचगृहकर्मणि ॥ प्रासादेवातथायज्ञेमण्डपेबलिक मसु ॥ ९०३ ॥ कृत्तिकोदयतः प्राचीप्राचीस्याच्छ्रवणोदये॥ चित्रास्वात्यन्तरेप्राचीदिनप्राचीरवेस्थिता ॥ ९०४ ॥ यदि वाश्रवणंपुष्यंचित्रास्वात्योर्यदन्तरम् ॥ एतत्प्राचीदिशारूपं दण्डमात्रोदितेबिंबे ॥ ९०५ ॥ द्वादशाङ्गुलमानेनशंकुना वाप्रकल्पयेत् ॥ शिलातलेसुसंशुद्धेसुलिप्तेसमताङ्गते॥९०६॥

पहिलास्तंम्भ आग्नेयदिशामें विधिपूर्वक स्थापन करै और स्तंभके ऊपर जब कौआ गिद्ध आदि पक्षियोंको देखै ॥ १०० ॥ और अन्य बुरे निमित्तों को देखै तो कर्ताको शुभ नहीं होता इसलिये स्तंभके ऊपर छत्र वा फलवा-लीशाखा ॥ ९०१ ॥ अथवा वस्त्र ढक दे अथवा रत्नआदि स्थापन करै और शिलाद्वारके आरोपणमें दिशाका साधन भी करै ॥ २ ॥ स्तंभ, वास्तु पुरुषके आरोपण गृहकर्म, प्रासाद, यज्ञमण्डप, और बलिकर्म इनमें भी दिक्-साधन करना उचितहै ॥ कृत्तिका और श्रवणके उदयमें प्राची दिशा होतीहै चित्रा और स्वातिके अन्तर में प्राची होतीहै और सूर्यकी स्थितिमें दिन प्राची होतीहै ॥ ४ ॥ यदि श्रवण पुष्य और चित्रा स्वातिका जो अन्तर यह प्राची दिशाका रूपहै. जब सूर्यका बिम्ब दंडमात्र उदय होचुकाहो॥ ५ ॥ द्वादशांगुलकेमानसे वा शंकुसे कल्पना करै, शिलाका तल अच्छी तरह से शुद्ध किया हुआ और समान होना चाहिये ॥ ९०६ ॥

इष्टशंकुप्रमाणेन सममण्डलमालिखेत ॥ तन्मध्येस्थापये च्छङ्कुंतुत्र्यंकृत्वाद्विरेखिकम् ॥ श्रुतिप्रवेशायगमस्थानेचिह्नं प्रकल्पयेत ॥ अपरेन्हिचतन्मध्येशंकुमारोपयेत्ततः ॥ ९०७ ॥ तत्राचिह्नञ्चतन्मानम्मानयोर्यदनंतरम् ॥ तेनानुमानेनाविषुव द्दिवसांतञ्चसाधयेत् ॥९०८॥ यावन्तोव्यवहियन्तोतावद्वृ-त्तेविनिक्षिपेत् ॥ शोधयेद्योजयेद्वापिदक्षिणोत्तरयोर्द्वयोः ॥ ९०९ ॥ क्रान्त्योर्यद्वाशिष्येतत्प्राचीसमुदाहृता ९१० ॥

इष्ट शंकुके प्रमाणसे समान मण्डलको लिखै, उसके बीचमें मध्यम शंकुको

स्थापन करै और दुहेरा वृत्त अर्थात् गोलाकार बनाकर द्युतिके प्रवेशके लिये गमनके स्थानमें चिह्नकी कल्पना करै, फिर दूसरे दिन उसके बीचमें शंकुका आरोपण करै ॥ ७ ॥ उसमें चिन्ह और उसका जो मान उन दोनों मानोंके समीप उसी अनुमानसे तुला मेष और संक्रांतिके अंतके दिनतक साधन करै ॥ ८ ॥ जितने चिन्होंका व्यवहारहो वे सब उस वृत्तमें डाल देने चाहिये और उनका घटाना बढाना दक्षिण और उत्तर दोनोंमें करै ॥ ९ ॥ क्रांतियों के मध्यमें जो शेषरहे वही प्राची दिशा कही है ॥ ११० ॥

अथद्वारफलानि ॥ ईशानमादितः पूर्वेआग्नेयाद्दक्षिणेस्थिताः । नैर्ऋत्यात्पश्चिमेज्ञेयावायव्यात्सौम्यदिक्स्थिताः ॥ १११ ॥ पूर्वादिक्रमयोगेनहुताशेग्निभयंभवेत् ॥ पर्जन्येप्रचुरानार्योजयन्तेबहुवित्तदाः ॥ ११२ ॥ माहेन्द्रेनृपवात्सल्यंसूर्येतिक्रोधताभवेत् ॥ सत्येनृतत्वंविज्ञेयङ्क्रूरत्वञ्चभृशंभवेत ॥ ११३ ॥

अब दरवाजे के फलोंका वर्णन करते हैं, ईशानसे पूर्वमें और अग्निकोण से दक्षिणमें और नैर्ऋत्यसे पश्चिममें और वायव्यसे उत्तर दिशामें क्रमसे चार दिशा स्थित रहती हैं ॥ ११ ॥ पूर्वआदि दिशाके क्रम योगसे अग्निकावास होतो अग्निका भय होता है, पर्जन्य होयतो प्रचुर धनकी देनेवाली बहुत स्त्रियां होती हैं ॥ १२ ॥ माहेंद्र अर्थात् इंद्र धनुष होयतो राजाकी दया होती है, सूर्य होतो अत्यंत क्रोध होता है सत्य होय तो अनृत होता है और अत्यन्त क्रूरता होती है ॥ १३ ॥

अन्तरिक्षेचविज्ञेयोनित्यञ्चोरसमागमः ॥ दक्षिणेस्यात्पुत्रनाशोवायव्येप्रेष्यमेवच ॥ ११४ ॥ नीचत्वंवितथेज्ञेयंगृहेतिष्ठतिसंततिः ॥ शूद्रकर्माभवेत्पौष्णेनैर्ऋत्येकर्तृनाशनम् ॥ ११५ ॥ अधनंभगराजाख्येमृगेपुत्रविनाशनम् ॥ पश्चिमे पित्रे स्वल्पायुरधनंदौवारिकेमहद्भयम् ॥ ११६ ॥ सुग्रीवेपुत्रनाशः स्यात्पुष्पदन्तेतुवर्द्धनम्॥वरुणे क्रोधभोगित्वं नृपभंगस्तथासुरे ॥ ११७ ॥

अंतरिक्ष होय तो नित्य चोरोंका समागम रहता है, दक्षिण में होतो पुत्रनाश

वैयत्थमें होतो दासभाव होता है ॥ १४ ॥ वितथ में नीचता जाननी और घरमें रहै. रेवती नक्षत्रमें दरवाजा बनावै तो शूद्रकर्म की करनेवाली संतान होती है. नैर्ऋत्यमें कर्ताका नाश होता है ॥ ९१५ ॥ पूर्वाफाल्गुन में धन हीन होता है, मघा में पश्चिम मुखका दरवाजा बनानेसे अल्प आयु, धनका अभाव और महान् भय रहता है ॥ ११ ॥ सुग्रीव में पुत्रनाश, पुष्प दंतमें वृद्धि, वरुण में क्रोध और भोग, असुर में राजाका नाश होता है ॥ ९१७ ॥

नित्यातिशोषिताशोकेपापख्येपापसञ्चयः ॥ उत्तरेरोगवधौनित्यंनागेरिपुभयंमहत ॥ ९१८ ॥ मुख्येधनसुतोत्पत्तिर्भल्लाटेविपुलाःश्रियः ॥ सोमेतुधर्मशीलत्वंभुजंगेबहुवैरता ॥ १९ ॥ कन्यादोषाःसदादित्येअदितौधनसञ्चयः पदेपदेकृतंश्रेष्ठंद्वारंसत्फलदायकम् ॥ ९२० ॥ पदद्वयकृतंयच्चयद्वामिश्रफलप्रदम् ॥

शोक में अत्यंत शुष्कता, पाप नाम वाले में पापका संचय, उत्तर में सदैव रोग और मृत्यु, नाग में शत्रुका बड़ा भय होता है ॥ १८ ॥ मुख्यमें धन और पुत्रोंकी उत्पत्ति, भल्लाटमें विपुल संपत्ति सोम में धर्म शीलता, भुजंगमें बहुत बैर होता है ॥ १९ ॥ आदित्यवार को सदैव कन्याओंका जन्म, और अदिति नक्षत्र में धनका संचय होता है पदपदमें बनाया हुआ दरवाजा श्रेष्ठ फलको देता है अर्थात् काष्ठका प्रमाण पद प्रमाणकाहो ॥ ९२० ॥ और जो दोपदोंसे बनाया हो वह मिश्र फलको देता है

सूत्रेनवकृतेभागेवसुभागन्तथैवच ॥ ९२१ ॥ प्रासादे कारयेद्विद्वानावासेनाविचारणा ॥ बहुद्वारेष्वलिन्देषुनद्वारनियमः स्मृतः ॥ ९२२ ॥ सदैवसदनेजीर्णोद्धारेसाधारणेष्वपि ॥ मूलद्वारंप्रकर्तव्यंघटेस्वास्तिकसन्निभम् ॥ ९२३ ॥ यस्यातपत्रंप्रथमागणाकीर्णंप्रशस्यते ॥ वीथिप्रमाणात्परतोद्वारंदक्षिणपश्चिमे ॥ ९२४ ॥ नकार्यम्प्रथमाकीर्णसुखिनंवाप्रकल्पयेत् ॥ प्राकारेचप्रपायाञ्चद्वारंप्रागुत्तरंन्यसेत् ॥ २५ ॥

नौसे विभाजित सूत्र में वा आठके भागके प्रमाणसे ॥ २१ ॥ प्रासादमें द्वारको बनवावै और आवास में इसबातका कोई विचार नहींहोता है अनेक

द्वारोंके अलिंदों में द्वारका नियम नहीं कहा है ॥ २२ ॥ और सदन के जीर्णोद्धार में और साधारण घरोंमें मूल में दरवाजा घटमें साथियेके समान करना ॥ २३ ॥ जिसका छत्र प्रथम गणोंसे आकीर्ण हो वह उत्तम होता है, गलीसे परै जो दक्षिण पश्चिमका दरवाजा है वह ॥ २४ ॥ प्रथम आकीर्ण न-करना चाहिये अथवा उसदरवाजे को सुखदायी बनवावै अर्थात् सुखसेजाने आने योग्य होना चाहिये. परकोटा और प्याऊ में दरवाजा पूर्व और उत्तर में बनवावै ॥ १२५ ॥

द्विशालासुचतद्वच्चद्वारम्प्राग्वत्प्रकल्पयेत्चतुर्द्वारमयेदुर्गेद्वारदोषोनविद्यते॥ २६ ॥ प्रधानंयन्महाद्वारम्बाह्यभित्तिषुसंस्थितम् ॥ रथ्याविद्धंनकर्तव्यंनृपेणभूतिमिच्छता ॥ २७ ॥ सरलेनचमार्गेणप्रवेशोयत्रवेश्मनि । मार्गवेधंविजानीयान्नानाशोकफलप्रदम् ॥ २८ ॥ तरुवेधंविजानीयाद्यदिद्वारमुखेस्थितम्॥ कुमारमरणंज्ञेयंनानारोगश्चजायते॥ २९ ॥ अपस्मारभयंविद्याद्गृहाभ्यन्तरवासिनाम् ॥द्वाराग्रेपंचवेधन्तुदुःखशोकामयप्रदम् ॥ १३० ॥

और द्विशालाओं में भी दुर्गमें दरवाजेका दोष नहीं होता है ॥ २६ ॥ जो मुख्य बड़ा दरवाजा बाहरकी भींतों में स्थित है इसको ऐश्वर्य का अभिलाषी राजा रथ्यासे विद्ध न बनवावै ॥ २७ ॥ जिस घरमें सीधे मार्गसे प्रवेश होता है उसमें मार्गका बेध अनेक प्रकारके शोक उत्पन्न करता है ॥ २८ ॥ यदि द्वारके मुखपर वृक्षस्थित होय तो उसको तरुवेध जानै उस वेधमें कुमारका मरण और अनेक प्रकारके रोग होते हैं ॥ २९ ॥ और उक्त घरके भीतर रहनेवालों को मृगी रोगका भय होता है द्वारके आगे पांच प्रकार का वेध दुःख शोक और रोग को देता है ॥ १३० ॥

जलस्रावस्तथाद्वारेमूलेनर्थचयाभवेत् ॥ द्वाराग्रेदेवसदनंबालानामर्तिदायकम् ॥ ३१ ॥ देवद्वारंविनाशायशंकरंद्वारमेवच ॥ ब्रह्मणोयच्चसंविद्धंतच्चैवत्कुलनाशनम् ॥ ३२ ॥ गृहमध्येकृतंद्वारंद्रव्यधान्यविनाशनम् ॥ अवातकलहंशोकंनार्यावासंप्रदूषयेत ॥ ३२ ॥ उत्तरेपंचमंद्वारंब्रह्मणोविद्धमुच्यते ॥ तस्मात्सर्वशिराद्येवमध्येचैवविशेषतः ॥ ३४ ॥

द्वारन्नकारयेद्धीमान्प्रासादेतुविपर्ययः ॥ देवतासान्निधानेतु-श्मशानाभिमुखेतथा ॥ ३६ ॥ स्त्रीनाशंस्तंभवेधेस्यात्पाषाणेचतथैवच ॥ देवतासन्निधानस्थेगृहेगृहपतेः क्षयः ॥ ३६ ॥ स्मशानाभिमुखेगेहेराक्षसाद्भयमादिशेत् ॥ चतुःषष्टिपदंकृत्वामध्येद्वारंप्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्रायस्तत्रिभागःकटिर्भवेत् ॥ विस्तारार्द्धंभवेद्गर्भोवित्तयोन्यःसमन्ततः ॥ ९३८ ॥

और द्वार में वा मूल में जल टपकै तो अनर्थ होते हैं ॥ द्वार के आगे देवता का स्थान बालकों को दुःखदायी होता है ॥ ३१ ॥ देवता के मन्दिर का द्वार होय तो नाशकारक होता है और महादेव का मंदिर का द्वार ब्रह्मा के स्थान के द्वार से विद्ध हो तो वह कुलको नष्ट करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ घरके बीच द्वार बनाया जाय तो द्रव्य और धान्यका नाश होता है, बिना बात कलह शोक और स्त्रियों के निबास स्थान में दूषण करता है ॥ ३३ ॥ उत्तर में जो पांचवां द्वार है उस को ब्रह्मा से विद्ध कहते हैं इस लिये सम्पूर्ण कोणों में और विशेष कर बीच के भाग में ॥ ६४ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य दरबाजेको बनवावे और प्रसादमें उक्त नियमोंके विपरीत होता है, देवताके समीप और श्मशान के संमुख घरमें भी इसके विपरीत होता है ॥ ९३५ ॥ स्तंभ और पाषाण के वेधमें स्त्रीका नाश होताहै देवताके पास घर होयतो घरके स्वामी का नाश होताहै ॥३६॥ श्मशानके संमुख घरमें राक्षसोंसे भय होता है इससे चतुःषष्टिपद वास्तु विधिको करके मध्यमें दरवाजे को बनवावे ॥ ३७ ॥ विस्तार से दूनी ऊंचाई और उंचाई का तीसरा भाग पृष्ठ होता है और विस्तारसे आधा चौक होता है और बित्तकी योनि उसके चारों ओर होती हैं ॥ ३८ ॥

गर्भपादेनविस्तीर्णंद्वारन्द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णाशाखातद्वदुदुंबरा ॥ ९३९ ॥ विस्तारपादप्रमितंवातुल्यंशाखयोः स्मृतम् ॥ त्रिपंचसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते ॥ ९४० ॥ कनिष्ठंमध्यमंज्येष्ठंयथायोगंप्रकल्पयेत् ॥ विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्राय अत्वारिंशाद्भिरुत्तमम्

॥ ९४१ ॥ धन्यमुत्तममायुष्यंधनधान्यकमेवच ॥ शतं-चाशीतिसहितंवातनिर्गमनंभवेत् ॥ ९४२ ॥ अधिकंदश-भिस्तद्वत्तथाषोडशाभिः शतम् ॥ शतमानन्तृतीयन्तुभवत्य-शीतिभिस्तथा ॥ ९४३ ॥ दशद्वाराणिचैतानिक्रमेणोक्ता-निसर्वदा ॥ अन्यानिवर्जनीयानिमनसोद्वेगदानितु ।९४४।

गर्भ की चोथाई के बराबर और दुगुना ऊंचा दरवाजा होताहै और ऊंचाई चोथाई भागके समान चौडी गूलरकी द्वारशाखा होतीहै ॥ ३९ ॥ विस्तार के पादकी बराबर शाखाओं का बाहुल्य कहाहै और तीन, पांच, सात, नौ, शाखाओं का द्वार उत्तम होता है ॥ ९४० ॥ उसको कनिष्ठ मध्यम ज्येष्ठ यथायोग्य बनवावै चौडाईसे दूनी ऊंचाई होती है उसका प्रमाण चालीस हाथ होना चाहिये ॥ ९४१ ॥ उत्तम घर धन्य, आयुवर्द्धक और धनधान्योंका दाता होता है घरमें एकसौ अस्सी ऐसे पिंजर आदि होंने चाहियें जिनमें हवा अच्छी तरह आती जाती हो ॥ ४२ ॥ और ११० वा ११६ वा १०० वा ७५ वा ८० खिडकियां बनवावै ॥ ४३ ॥ ये दशप्रकार के द्वार क्रमसे सदैव कहे हैं और इनसे अतिरिक्त मन के उद्वेग करने वाले द्वार निषिद्ध होते हैं ॥ ४४ ॥

द्वारवेधन्तुयत्नेनसर्वथापरिवर्ज्जयेत् ॥ गृहोच्छ्रायाद्विगुणि-तन्त्यक्त्वाभूमिंबहिः स्थित ॥ ९४५ ॥ नदोषायभवेद्वे-धोगृहस्यगृहिणस्तथा ॥ गृहार्द्धंगृहिणीज्ञेयागृहात्पूर्वोत्तरा-शुभा ॥ ९४६ ॥ पक्षिणीवातथैवस्यादन्यगेहानसिद्धि-दाः ॥ पृष्ठद्वारन्नकर्तव्यंमुखद्वारावरोधनम् ॥९४७॥ पिहि-तेतुमुखद्वारेकुलनाशोभवेद्ध्रुम् ॥ पृष्ठद्वारेसर्वनाशोन्मादः स्वयमुद्घाटितेतथा ॥ ९४८ ॥

और द्वार के वेध को तो यत्नपूर्वक रोकना उचित है घरकी ऊंचाई से दूनी भूमि को छोड कर बाह्य भाग तक दरवाजे की स्थिति रहती है ॥ ९४५ ॥ और एक घरका आधा भाग गृहिणी होता है वह घर से पूर्व और उत्तर में शुभहै ॥४६॥ अथवा पाक्षिणी होतीहै इस तरह अन्य प्रकार के घर सिद्धि के दाता नहीं होते हैं मुख्य द्वार की जिससे रुकावट हो ऐसा पीछे

का द्वार कदाचित् न बनवावे ॥ ४७ ॥ सुख का अवरोध होने से कुलका नाश होता है और पृष्ठ के द्वार में सर्वनाश और उन्माद होता हैं और अपने आप होजाने वाले द्वार में भी ऐसे ही परिणाम होते हैं ॥ ४८ ॥

मानोनेऽव्यसनंकुर्यादधिकेनृपतेर्भयम् ॥ अर्द्धखंडंयदिद्वारंदलवेधंविनिर्द्दिशेत् ॥ ९४९ ॥ कपाटच्छिद्रवेधंचकपाटेवैक्षयोभवेत् ॥ यत्रविद्धंयदाद्वारंप्रासादेचधनक्षयः ॥ ७५० ॥ स्तंभेवारवतेयस्यतस्यवंशक्षयोभवेत् ॥ त्रिकोणंशकटाकारंशूर्पंव्यजनसन्निभम् ॥ ५१ ॥ मुरंजवर्तुलन्द्वारम्मानहीनञ्चवर्जयेत् ॥ त्रिकोणेपीड्यतेनारीशकटेस्वामिनोभयम् ॥ ९५२ ॥ सूर्पेधनविनाशः स्याद्धनुषिकलहः स्मृतः ॥ धननाशस्तुमुरजेवर्तुलेकन्यकोद्भवः ॥ ९५३ ॥

प्रमाण से न्यूनमें दुःख और प्रमाण से अधिक में राजा का भय होता है यदि द्वार आधा खण्डित होय तो दलवेध कहते हैं ॥ ४९ ॥ जो कपाट में छिद्र होय तो कपाट छिद्रवेध कहते हैं इससे क्षय होता है यदि यंत्र से विद्ध द्वार होय तो प्रासाद में धनका नाश होता है ॥ ९५० ॥ और जिस द्वार के स्तम्भ में शब्द होता हो उसके वंशका नाश होता है तिकोना, गाडीके आकार का, सूप, पंखा इनके आकार के तुल्य ॥ ५१ ॥ तथा मुरजाकार वर्तुलाकार और प्रमाण से हीन दरवाजे न बनवावे त्रिकोण के द्वार में नारी को पीडा होती है शकट के द्वारमें स्वामी को भय होता है ॥९२॥ सूप के समान द्वारमें धन का नाश होता है धनुषाकार में कलह मुरजाकार में धनका नाश गोलाकार में कन्याओं का जन्म होता है ॥ ९३ ॥

मध्यहीनंतुयद्द्वारंनानाशोकफलप्रदम् ॥ स्तंभाग्रेविन्यसेत्काष्ठंपाषाणन्नैवधारयेत् ॥ ९५४ ॥ नृपालयेदेवगेहेपाषाणानान्चकारयेत् ॥ द्वारशाखानृपाणांतुगृहेपाषाणनिर्मिता॥९५ कर्तव्यानेतरेषाञ्चकारयेन्मतिमान्नरः ॥ गृहमध्येकृतंस्तंभंब्रह्मणोवेधमुच्यते ॥ ९५६ ॥ भित्तिश्चैवनकर्तव्यानब्रह्मस्थानमुच्यते ॥ तत्स्थानंयत्नतोरक्षेद्गृहीकीलादिकैस्तथा ॥५७।

जो द्वार मध्यभागसे हीन होताहै वह अनेक शोकरूपी फलोंको देताहै स्तंभके अग्रभागपर काठ लगवावै पत्थर कभी न लगवावै ॥ ५४ ॥ राजमंदिर और देवालय में पत्थर केही द्वार और शाखा बनवावै और राजमहिलों में द्वार शाखा पत्थरकीही बनवानी चाहिये ॥ ५५ ॥ बुद्धिमान को उचित है कि और मनुष्योंके घरोंमें पत्थरका कदाचित् न बनवावै और घरके मध्यभागमें स्तंभ होय तो ब्रह्माका वेध कहाताहै ॥ ५६ ॥ और घरके मध्यभागमें भींत न बनवावै क्योंकि उससे ब्रह्माका स्थान न छूटैगा इससे गृहस्थी ब्रह्माके स्थानकी कील आदिसे रक्षाकरै ॥ ५७ ॥

भांडेनाशुचिनातद्वच्छल्येनभस्मनातथा ॥ रोगानानाविधाःशोकाजायंतेतत्रनित्यशः ॥ द्वारस्योपरियद्द्वारन्तद्द्वारंशकटंस्मृतम् ॥ ९५८ ॥ चतुष्षष्ट्यंगुलोत्सेधंचतुस्त्रिंशच्चविस्तरम् ॥ द्वारस्योपरियत्नेनशिवायशकटंचयत् ॥ अध्मातेक्षुद्रजंप्रोक्तंकुलेकुलविनाशनम् ॥ ९५९ ॥

अशुद्ध वर्तन, शल्य और राखकूडेसे अनेक प्रकारके रोग उस घरमें होतेहैं जहां ब्रह्माका वेध होताहै द्वारके ऊपर जो द्वार होताहै उस को शकट कहतेहैं ॥ ५८ ॥ चोंसठ अंगुल ऊंचा और चोंतीस अंगुल चौडा द्वारके ऊपर जो शकट है वह यत्नसे कल्याणके लिये रक्खै यदि वह शब्द न करै तौ क्षुद्रज कहलाताहै और कुलका नाशकभी होताहै ॥ ९५९ ॥

पीडाकरम्पीडितन्तुअभावंमध्यपीडितम् ॥ बाह्योन्नतेप्रवासः स्याद्दिग्भ्रान्तेदस्युतोभयम् ॥ दौर्भाग्यंनिर्धनंरोगादारिद्र्यङ्कलहन्तथा ॥ ९६० ॥ विरोधश्चार्थनाशश्चसर्ववेधेक्रमाद्भवेत् ॥ पूर्वेणफलितावृक्षाः क्षीरवृक्षाश्चदक्षिणे ॥ पश्चिमेनजलंश्रेष्ठंपद्मोत्पलविभूषितम् ॥ ९६१ ॥ सर्वतश्चापिकर्तव्यंपरिखावलयादिकम् ॥ याम्यन्तपोवनस्थानमुत्तरेमातृकागृहम् ॥ ९६२ ॥ वारुणेश्रीनिवासस्तुवायव्येगृहमालिका ॥ उत्तरे यज्ञशालातुनिर्माल्यस्थानमुच्यते ॥ ९६३ ॥

पीडित द्वार पीडाको करताहै मध्यपीडितद्वार अभावको करताहै, जो दरवाजा बाहरकी तरफ ऊंचाहो तो प्रवास होताहै, दिशाओंमें भ्रान्तिहोय

तो चोरोंसे भय, दौर्भाग्य, मरण, रोग, दरिद्र, कलह, ॥ ६० ॥ विरोध, अ-र्थनाश, ये फल क्रमसे सब दिशाओंके वेधमें होतेहैं पूर्वमें फलवाले वृक्ष दक्षि-णमें दूधवाले वृक्ष और पश्चिममें पद्म और उत्पलोंसे भूषित जल उत्तम होते हैं ॥ ६१ ॥ और चारोंओर परिखा और वलय आदि बनवाने चाहियें दक्षि-णमें तपोवनका स्थान और उत्तरमें मातृकाओंका घर, ॥ ६२ ॥ पश्चिममें ल-क्ष्मीका निवास, वायव्यमें ग्रहों की पंक्ति, उत्तरमें यज्ञशाला और निर्माल्य का स्थान बनाना श्रेष्ठहै ॥ ६३ ॥

वारुणेसोमदैवत्येबलिनिर्वपणंस्मृतम् ॥ पुरतोवृषभस्थानं शेषंस्यात्कुसुमायुधम् ॥ ९६४ ॥ जलवापीतथैशान्येविष्णु ञ्चजलशायिनम् ॥ एवमायतनंकुर्याच्छुभमंडपसंयुतम् ।६५ घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तान्नित्योत्सवप्रमुदितेनजनेनसा र्द्धम् ॥ यः कारयेत्सुरगृहंभवनंध्वजाङ्कंश्रीस्तन्नमुञ्चातिसदा दिविपूज्यतेच ॥ ९६६ ॥

सोम देवता वाली उत्तरदिशामें बलिदानका स्थान श्रेष्ठहै. पूर्वमें वृषोंका स्थान, शेषजी तथा कामदेवका स्थान कहाहै ॥ ६४ ॥ जल बावडी और जलशायी विष्णु का स्थान कहाहै इस तरह शुभमण्डपोंसे युक्त स्थानको बन वावै ॥ ६५ ॥ घंटा, वितान, तोरण, चित्र इनसे युक्त और ध्वजा से चिह्नि त और नित्य उत्साह प्रसन्नमन युक्त देवताके भवनको जो मनुष्य बनवाता है उसको लक्ष्मी कदाचित् नहीं छोडती और स्वर्गमें सदा देवता उसकी पूजा करते हैं ॥ ६६ ॥

एवन्द्वारार्चनाविधिङ्कृत्वाद्वारबलिन्ततः ॥ महाध्वज-न्द्वारमुखेप्रवेशसमयेकृतम् ॥ ९६७ ॥ पुत्रदारधनादीनांवृ-द्धिदंसर्वकर्मणि ॥ इतिद्वारविधिः प्रोक्तोमयाब्रह्ममुखोदि-तः ॥ यः करोतिविधानेनससुखीपुत्रवान्भवेत् ॥ ९६८ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेद्वारनिर्माणेसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस तरह द्वारार्चन विधि करके द्वारबलिको करै और द्वारके मुखमें प्र-वेशके समय महाध्वजाका स्थापन करै ॥ ६७ ॥ इन सब कर्मोंके करनेसे पुत्र, स्त्री धन आदिकी वृद्धि होती है. यह द्वारविधि स्वयं ब्रह्माके मुख से कही

हुई है जो मनुष्य इसे विधि पूर्वक करता है वह सुखी और पुत्रवान् होता है ॥ ६८ ॥ इति वास्तु शास्त्रे द्वारनिर्माणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अधुनाकथयिष्यामिवापीकूपक्रियाविधिम् ॥ तडागपुष्करोद्यानमंडपानांयथाक्रमात् ॥ १६९ ॥ आयव्ययादिसंशुद्धिंमासशुद्धिन्तथैवच ॥ यथागेहेदेवगेहेतथैवात्रविचारयेत् ॥ १७० ॥ त्रिकोणञ्चतुरस्रञ्चवर्तुलञ्चोत्तमंस्मृतम् ॥ धनुषङ्कलशंपद्मंमध्यमंतज्जलाश्रयम् ॥ १७१ ॥ सर्पोरगन्ध्वजाकारंन्यूनंप्रोक्तञ्चनिन्दितम् ॥ कोशोधान्यंभयंशोकनाशनंसौख्यमेवच ॥ १७२ ॥ भयंरोगन्तथादुःखंकीर्तिन्द्रव्याग्निजंभयम् ॥ यशश्चक्रमतश्चैत्रमासादेतत्फलंस्मृतम् ॥१७३॥

अब वापी, कूप, तडाग, पुष्कर, उद्यान, मण्डप, इनके बनवानेकी विधिको क्रमसे कहता हूं ॥ ६९ ॥ इनके बनवानेमें आय व्यय आदिकी शुद्धि और मास शुद्धिको इसी तरह विचारें जैसे घर और देवमंदिर में कहा है ॥ १७० ॥ त्रिकोण, चौकोण, गोल तडागादि उत्तम होते हैं और धनुष कलश तथा पद्मके आकारका जल स्थान मध्यम कहा है ॥ ७१ ॥ सर्प, उरग, ध्वजाके आकारका न्यून और निन्दित कहा है और कोश, धान्य, भय, शोकनाश, सुख, ॥ ७२ ॥ भय, रोग, दुःख, कीर्ति, द्रव्य, अग्नि, भय, और यश ये फल क्रमसे चैत्र मासादिमें जलाशयों के बनवाने में कहे हैं ॥ ७३ ॥

रोहिणीचोत्तराणिपुष्यंमैत्रञ्चवारुणम् ॥ पित्र्यञ्चवसुदैवत्यंभगणोवारिबंधने ॥ जलशोषोभवेत्सूर्य्येभौमेरिक्तंविनिर्दिशेत् ॥ १७४ ॥ मन्देचमलिनंकुर्याच्छेषावाराःशुभावहाः ॥ नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णाचैवयथाक्रमात् ॥ यथानामफलन्तद्वत्कुर्यादित्याहकर्मकृत् ॥ १७५ लग्नेशशांकोथजलोदयेवापूर्णः शशीकेन्द्रगतोव्ययेवा ॥ लग्नेथजीवोभृगुजेथसौम्येजलंचिरस्थंसुरसंसुगन्धम् ॥ १७६ ॥

रोहिणी, तीनों उत्तरा पुष्य, अनुराधा, शतभिषा, मघा, और धनिष्ठा ये नक्षत्र जलाशयोंके बनवाने में उत्तम कहे हैं । रविवारको जलस्थान बन-

वाने से जल सूखजाता है मंगलवार को खाली और शनैश्चर को मैला हो-ता है शेषवार शुभदायी होते हैं । नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा ये तिथियां क्रमसे अपने नामके अनुसार फलको देती हैं. ये कर्म कर्ताने कहाहै।७५। लग्न में चंद्रमा होय वा जलोदय राशिका हो अथवा पूर्ण चंद्रमा केन्द्र वा बारहवें स्थानमें हो, लग्नमें बृहस्पति, शुक्र वा बुध हो, तो बहुत कालतक उत्तम जल उन जलाशयों में रहता है ॥ ७६ ॥

कुजेतृतीयेभृगुजेस्तगेचषष्ठेरवौलाभगतेर्कपुत्रे ॥ चन्द्रेष्टषष्ठोव्ययवर्जितेचप्रियंजलन्तद्भवतीहचित्रम् ॥ १७७ ॥ सौरेतृतीयेमदनेचचन्द्रेषष्ठे रवौलाभगतेचभौमे ॥ केन्द्रेशुभैश्चाष्टमवर्ज्जितैश्चजलंस्थिरंस्याद्धनपुत्रदञ्च ॥ १७८ ॥ केन्द्रत्रिकोणेषुशुभस्थितेषुपापेषुकेन्द्राष्टमवर्जितेषु ॥ सर्वेषुकार्येषुशुभंवदंतिप्रासादकूपादितडागवाप्याम् ॥ १७९ ॥

लग्न से तीसरा हो, शुक्र सातवां हो, सूर्य छटा हो, शनैश्चर ग्यारहवां हो, चन्द्रमा बारहवें स्थान को छोडकर छटे आठमें हो तो बडा प्रिय जल होता है ॥ ७७ ॥ शनैश्चर तीसरा हो, चंद्रमा सातवां हो सूर्य छटा और भौम ग्यारह स्थान में हो अष्टमराशिको छोड कर शुभग्रह केन्द्रमें हो तो धन और पुत्रका दाता जल स्थिर रहता है ॥ ७८ ॥ केन्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह बैठे हों और पापग्रह केन्द्र और आठवें स्थान को छोडकर अन्य स्थानों में हो तो सब कामों में बापी, कुआं, तडागशुभ होते हैं ॥ ७९ ॥

चन्द्रोदयेतद्दिवसेसुरेज्येकेन्द्रस्थितेचोपचयैः खलैश्च ॥ उद्यानकूपादितडागवापीजलाशयानाङ्करणम्प्रशस्तम् ।१८०। सर्वेषु लग्नेषुशुभंवदन्तिविहायसिंहालिधनुर्धरांश्च ॥ ग्रहःसदालोकनयोगसौम्ययोगात्प्रकुर्याज्जलभांशवर्गे ॥१८१॥ सर्वासुदिक्षुसलिलंप्रकुर्याद्विहायनैर्ऋत्ययमाग्निवायून् । पूर्वोत्तरेशानजलेशदिक्षुकृतं जलंसौख्यसुतप्रदञ्च ॥ १८२॥

कूपादि आरंभके दिन चंद्रमाका उदयहो और बृहस्पति केन्द्रमें हो और पापग्रह उच्च भवनमें हों तो उद्यान कूप वापी तडाग जलाशयोंका बनाना अत्यंत श्रेष्ठ होता है ॥ १८० ॥ सिंह वृश्चिक धनुको छोडकर सब

लग्नोंमें जलके स्थान शुभ होतेहैं श्रेष्ठग्रहोंकी दृष्टि और सौम्य योगोंसे और जल राशियोंका नवांश और वर्गमें जलाशय बनवावै ॥ ८१ ॥ नैर्ऋत, दक्षिण, अग्नि और वायव्यदिशाको छोडकर जलाशय बनवाने में शेष सबदिशा उत्तम है पूर्व उत्तर ईशान और पश्चिम दिशाओंमें कियाहुआ जलस्थान सुख और पुत्रका दाता होता है ॥ ८२ ॥

नपूर्वकंवारुणदिक्स्थितञ्चविवर्जयेन्मध्यगृहस्थितञ्च ॥ क्रमेणगर्गादिवसिष्ठमुख्यादिशास्थितानाञ्चजलाशयानाम् ॥ ९८३ ॥ पुत्रार्तिवह्निश्चभयंविनाशः स्त्रीणाङ्कलिर्वाप्यथ दौष्ट्यमेव ॥ नैःस्वन्धनम्पुत्रविवृद्धिरुक्तापूर्वादिदिक्षुफलमेत देव ॥ ९८४ ॥ व्यासप्रमाणंद्विगुणञ्चगुण्यंहारस्यहारोत्तर तोत्तरस्य ॥ मध्येष्टहारेष्वपिपिण्डसंज्ञमेकादिहाराविषमाःप्र शस्ताः ॥ ९८५ ॥

पूर्व और वरुणकी दिशामेंभी पूर्वोक्त फल होता है और घरके बीचमें जलाशय बनवाना उचित नहींहै गर्ग वसिष्ठादि ऋषियोंने जलाशयोंका यह फल कहा है ॥ ८३ ॥ पूर्वादि दिशाओंमें जलाशय बनवानेसे पुत्रकी पीडा, अग्निभय, विनाश, स्त्रियोंका कलह, और दुष्टता, धनका नाश, धन और पुत्रोंकी वृद्धिहोती है ॥ ८४ ॥ जलस्थानके व्यासको दूना करे और हारके उत्तरोत्तरके जो हार हैं उनमेंसे आठ हारोंमें पिण्ड संज्ञा होती है उनमें १, ३, ५, ७, ९ ये विषम हार उत्तम कहे हैं ॥ ९८५ ॥

एकान्तरंसन्धिसमेक्षितानांव्याधिर्विनाशोभयशोकमुग्रम् ॥ आद्यन्तयोर्मध्यवियुक्तमेतत्तदाविनाशंकुरुतेसपत्न्याः॥९८६॥ पूर्वापरौचोत्तरयाम्यगेषुच्छिद्रेषुहारेष्वपिमध्यभागे ॥ कुर्वन्ति शोकंवधबन्धुनाशंहारेषुमध्येष्वपिचिन्त्यमेतत् ॥ ९८७ ॥ आद्यन्तयोर्हारगतेषुसूत्रसर्वेषुहाराग्रगतेशुभास्यात् ॥ भ्रातॄन्कलत्रादियथोत्तराणिहारस्यहारोत्तरतोत्तरस्य ॥ ९८८ ॥ दिग्मध्यसंस्थाःशुभदानराणांव्यङ्गेषुबन्धंपशुपातीविनाशम् ॥ याम्योत्तरंहीनधनङ्करोतिहीनोदकंहीनधनङ्करोति ॥९८९॥

चतुर्थाष्टमगैःपापैर्लग्नगेवाखलग्रहे ॥ चन्द्रेष्टमेतदाकर्ताम्रिय तेमासमध्यतः ॥ १९० ॥ केन्द्रपापग्रहैर्युक्तेअष्टमेचान्यथेपि वा ॥ धर्मस्थानगतैर्वापितज्जलंक्षीयतेचिरात् ॥ १९१ ॥

एक हारकी दूरीपर सन्धिस्थानमें जलस्थान दीखै तो व्याधिविनाश, भय, महान् शोक होता है और हारके मध्यभागको छोडकर आदिअन्त में जलस्थान होय तो सपत्नीके नाशका सूचक है ॥ ८६ ॥ पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणके जो छिद्र और हार हैं उनके बीचमें जलस्थान हो तो शोक मरण और बन्धुओंका नाशहोता है यह बात बीचके हारोंमेंभी विचारने योग्य है ॥ ८७ ॥ जो हारके सूत्र आदि अन्तमें गतहों और हारके मध्यभाग में जलाशय होय तो शुभ होता है इसीतरह हारके उत्तरोत्तर क्रमसे जलाशय भ्राता और कलत्रआदिकों के लिये शुभ कहे हैं ॥ ८८ ॥ यदि दिशाके मध्य में स्थित जलाशय होय तो मनुष्योंको शुभदायी होता है ॥ और व्यंगभाग में होय तो बंधन पशु और स्वामीका नाश होता है दक्षिण उत्तरमें जलाशय होय तो धन को कम करता है और न्यून जल होय तोभी धनकानाश करता है ॥ ८९ ॥ चौथे आठवें स्थानमें पापग्रह हों, लग्नमें खलग्रह हों, चंद्रमा अष्टमहो तो घरबनाने वाला एक मासमें मरता है ॥ १९० ॥ केन्द्र पापग्रहोंसे युक्त हो अथवा आठवें बारहवें स्थानमें हो तो थोडेही दिनमें जल नष्ट होजाता है ॥ १९१ ॥

केन्द्रगैःसौरिभौमार्कैरष्टमस्थेनिशाकरे ॥ तज्जलंवर्षमध्येतुनतिष्ठतिजलाश्रये ॥ ९२ ॥ एकः पापोष्टमस्थोपिचतुर्थेसिंहिकासुतः ॥ नवमेभूमिपुत्रस्तुतज्जलंविषवत्स्मृतं ॥ ९३ ॥ नन्दाद्याःपूजनीयाश्चपूर्वोक्तेनैवमार्गतः ॥ ईशानादिक्रमेणैवन्यसेदिक्शोधितेस्थले ॥ मध्येपूर्णांविनिःक्षिप्यकुंभोपरिशुभेदिने ॥ वरुणस्यविधायादौपूजांमंत्रैश्चवारुणैः ॥ ९४ ॥ वटवेतसकीलानांशिरास्थानेनिवेशनं ॥ ततोग्रहार्चनंवास्तुपूजाविधिमतः परं ॥ १९५ ॥

केन्द्र स्थानमें शनैश्चर, मंगल, सूर्य हों, चन्द्रमा अष्टम स्थान मेंहो ऐसे लग्नमें बनाये हुए जलाशय में वर्ष दिनभी जल नहीं ठहरता ॥ ९२ ॥ जो

अष्टम स्थानमें एक भी पापग्रह बैठाहो, चतुर्थ भवनमें राहु हो और नवममें मंगल होतो उस जलस्थानका जल विषके तुल्य कहा है ॥ ९३ ॥ पूर्वोक्त विधिसे नन्दा आदिकोंका पूजन करै, ईशान आदि क्रमसे दिक् शोधित स्थलमें उनका स्थापन करै मध्यमें कुंभके ऊपर शुभ दिनके समय पूर्णाका स्थापन करै, वरुणके मंत्रोंसे प्रथम वरुणकी पूजा करके ॥ ९४ ॥ शिराके स्थानमें वट और वेंतकी कीलोंका निवेश करै फिर ग्रहोंकी पूजा और वास्तुपूजा को करै ॥ ९५ ॥

सौम्यायनेकीटगतेपतङ्गेमधुंविनाशीतकरेसुपूर्णे ॥ तथाविरिक्तेविकुतेचवारेकार्याप्रतिष्ठाचजलाशयानां ॥ ९६ ॥ लग्नेषुसौम्यग्रहवीक्षितेषुकार्याप्रतिष्ठाखलुतत्रतेषां ॥ जलोदये पूर्णशशीचकेन्द्रेजीवोविलग्नेभृगुजेस्तगेवा ॥ ९७ ॥ एकोपिचान्येभवनेस्वकीयेकेन्द्रस्थितोवाशुभदोनराणां ॥

उत्तरायण सूर्य हो और वृश्चिकराशिका सूर्य हो और चैत्रके विना चंद्रमा पूर्णहो और रिक्तासे भिन्न तिथि हों और विकुलवार होय तब जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥ लग्नको सौम्यग्रह देखते हों, पूर्ण चंद्रमा जलोदयराशिका हो केन्द्रमें बृहस्पति हो, लग्नमें वा सप्तम स्थानमें शुक्र हो तो प्रतिष्ठा करना शुभ होता है ॥ ९७ ॥ और जो कोई अन्यग्रह अपने स्थानकेहो तो मनुष्योंको शुभदायी होते हैं ॥

एकोपिजीवज्ञसितासितानांस्वोच्चस्थितानांभवनेस्वकीये ॥ ९८ ॥ येकुर्वन्तिनराःपुण्याः पुरेपानीयशालकं ॥ विष्णुनासहमोदन्तेयावद्भूमन्डलेजलं ॥१०००॥ इति वास्तुशास्त्रेजलाशयादिकरणऽष्टमोऽध्यायः ८ ॥

बृहस्पति, बुध, शुक्र, और शनैश्चर इनमें से कोईभी उच्च भवनके वा अपने भवनकेहों ॥ ९९८ ॥ वा केन्द्र वा त्रिकोणमें होतो मनुष्योंके लिये वह जल स्थिर और शुभदायक होता है ॥ ९९९ ॥ जो पुण्यात्मा मनुष्य नगरमें प्याऊ वा कूपादि बनवाते हैं वे विष्णुके संग उस समयतक आनन्द भोगते हैं जबतक भूमंडल पर जल रहता है ॥ १००० ॥ इति वास्तुशास्त्रे जलाशयाधिकरणे भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथातः शृणुविप्रेन्द्रदारूणांछेदनेविधिम् ॥ सुरदारुचन्दनशमीमधूकतरवस्तथा ॥ १००१ ॥ ब्राह्मणानांशुभावृक्षाःसर्वकर्मसुशोभनाः ॥ क्षत्रियाणान्तुखदिरम्बिल्वार्ज्जुनकशिंशिपाः ॥ १००२ ॥ शालतूनीकसरलाः नृपवेश्मनिसिद्धिदाः । वैश्यानांखादिरंसिन्धुस्यन्दनाश्चशुभावहाः १००३ तिन्दुकार्ज्जुनशाशाश्चवैसराम्राश्चकण्टकाः ॥ येचान्येक्षीरवृक्षाश्चतेशूद्राणांशुभावहाः ॥ १००४ ॥ द्व्यंगराशिगतेसूर्येमाघेभाद्रपदेतथा । वृक्षाणाञ्छेदनङ्काष्ठसञ्चयार्थंनकारयेत् ॥ १००५ ॥ सूर्य्यर्क्षाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ॥ चन्द्रर्क्षेदारुकाष्ठानाञ्छेदनंशुभदायकं ॥ १००६ ॥

इसके अनन्तर हे विप्रेन्द्र काष्ठछेदनेकी विधिको सुनो देवदारु, चंदन, छोंकरा और महुआ ये वृक्ष ॥ १ ॥ ब्राह्मणों के लिये उत्तम और सब कामों में श्रेष्ठ कहे हैं, क्षत्रियोंके लिये खैर बेल, अर्जुन, सिरस ॥ १००२ ॥ शाल, तून और सरल ये वृक्ष राज महलोंमें सिद्धि के दाता होते हैं और वैश्यों के लिये खैर सिंधु, स्यंदन, ये शुभदायक होते हैं ॥ ३ ॥ शूद्रोंके लिये तिंदुक, अर्जुन, शाश, वैसर, आम, कंटक और अन्य क्षीरवृक्ष शुभदायक होते हैं ॥ ४ ॥ द्विस्वःभावराशिके सूर्यमें, माघ, और भाद्रपद में काष्ठसंचय के लिये वृक्षोंको कटवाना उचित नहीं है ॥ १००५ ॥ सूर्य के नक्षत्रसे इनचार, दो, छः, दश, तेरह, बीस इनके समान चन्द्रमा होतो काष्ठछेदन अच्छा होता है ॥ १००६ ॥

सर्वेषामपिवर्णानांदारवःकथिताःशुभाः ॥ सुरदारुचन्दनशमीशिंशिपाःखादिरस्तथा ॥ १००७ ॥ शालाशालविस्तृताश्चप्रशस्ताःसर्वजातिषु ॥ एकजात्यद्विजात्यावात्रिजात्यावामहीरुहाः ॥१००८॥ कारयेत्सर्वगेहेषुतदूर्द्ध्वन्नैवकारयेत् ॥ एकदारुमयागेहाःसर्वशल्यनिवारकाः ॥ १००९ ॥ द्विजात्यामध्यमाः प्रोक्ताः॥त्रिजात्याअधमाःस्मृताः ॥ क्षीरिणंफालिनञ्चैवकण्टकाढ्यंचवर्जयेत ॥ १०१० ॥

ब्राह्मणादि सब वर्णोंके लिये पूर्वोक्त काष्ठ शुभदायक कहे गयेहैं देवदारु. चंदन शमी, शीशम, खैर ॥ ७ ॥ शाल और शालके समान अन्य वृक्ष सबजातियोंमें श्रेष्ठहैं एक, दो, वा तीन जातियों के वृक्षही ॥ ८ ॥ सब घरोंमें लगावै इनकेऊपरके चार वा पांच जातिके कदापि न लगावै और एक काष्ठके जो घरहै वे सब दुःखोंके निवारक होतेहैं ॥ ९ ॥ दो जातिके काष्ठ मध्यम और तीनजातिके अधम होतेहैं दूधवाले या फलवाले और कांटेदार वृक्षोंको काममें लाना उचित नहीं है ॥ १०१० ॥

श्मशानेनाग्निनाचैवदूषितेप्यथवाभुवा ॥ वज्रेणमर्दितंचैव-वातभग्नंतथैवच ॥ मार्गवृक्षंपुराछन्नंचैत्य ङ्कल्पञ्चदैवकं ॥ १०११ ॥ अर्द्धभग्नार्द्धदग्धाश्चअर्द्धशुष्कास्तथैवच १२ ॥ व्यङ्गाःकुब्जाश्चकाणाश्चअतिजीर्णास्तथैवच ॥ त्रिशीर्षान-हुशीर्षाश्चअन्यवृक्षेणभेदिताः ॥ १०१३ ॥ स्त्रीनाम्नाये-चतरवस्तेवर्ज्यागृहकर्मणि ॥ क्षीरिणःक्षीरनाशायफलिनःपुत्र-नाशनं ॥ १०१४ ॥ कण्टकीकलहंकुर्यात्काकाछन्नन्धनक्ष-यं ॥ गृध्रवृक्षम्महारोगंश्मशानस्थंमृतिप्रदं ॥ १०१५ ॥

श्मशान, अग्नि और भूमि इनसे दूषित और बज्रसे मर्दित और पवनसे टूटे हुए वा रस्तेमें उगे हुए वा लताओंसे ढकेहुए वा चैत्य वृक्ष कल्प वृक्ष वा देवताका वृक्ष ॥ ११ ॥ अर्द्धभग्न अर्द्धदग्ध. अर्द्धशुष्क ॥ १२ ॥ टेढे तिरछे कूबडे काणे अत्यन्त जीर्ण और तीन सिर वाले और बहुत सिर वाले वा अन्य वृक्ष के धक्के से गिरे हुए ॥ १३ ॥ स्त्री नाम वाले वृक्ष है ये सब घर के कामों में निषिद्ध होते हैं दूधवाले वृक्ष दूधको और फल वृक्ष पुत्रों को नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥ कांटे दार वृक्ष कलह करते है और जिस पर कौए बैठते हों वे धन का क्षय करते है । जिन वृक्षों पर गिद्ध बैठते हैं वे महा रोग उत्पन्न करते हैं और श्मशान के वृक्ष मृत्युकारक होते हैं ॥ १५ ॥

वज्राङ्कंवज्रभयंदवातदंवातदूषितम् ॥ मार्गवृक्षेकुलध्वस्तं पुरच्छन्नंभयप्रदम् ॥ १०१६ ॥ कुल्यवृक्षेभवेन्मृत्युर्दैववृक्षे धनक्षयम् ॥ चैत्येगृहपतेर्मृत्युर्दैववृक्षेभयम्भवेत् ॥ १०१७ ॥ अर्द्धभग्नंविनाशायअर्द्धशुष्कन्धनक्षयम् ॥ व्यङ्गेमृतप्रजा

ज्ञेयाः कुब्जेकुब्जास्तथैवच ॥ १०१८ ॥ काणेराजभयं विन्द्यादतिजीर्णेगृहक्षयः॥ त्रिशीर्षेगर्भपातः स्याद्बहुशीर्षेमृत प्रजाः ॥ १९ ॥ अन्यभेदेशत्रुभयमुद्यानेखेभयन्तथा ॥ वल्लीवृतेदरिद्रत्वंपुष्पवृक्षेकुलक्षयः ॥ २० ॥

जिस पर बिजली गिरी हो वह वज्र के भय को देता है और जो पवन से दूषित हो वह वात के भय को देता है मार्ग के वृक्ष से कुल का नाश होता है और पुरच्छन्न वृक्ष भय दायक होता है ॥ १६ ॥ कुल के वृक्ष से मृत्यु और देववृक्षसे धन का नाश और चैत्य के वृक्ष से गृह के स्वामी की मृत्यु और कुलदेवके वृक्ष से भय होता है ॥ १७ ॥ अर्द्ध भग्न वृक्ष नाश और अर्द्ध शुष्क धन के नाश को करते हैं टेढे वृक्षों से संतति का मरण होता है और कुवडे वृक्ष से संतान कुवडी होती है ॥ १८ ॥ काणेवृक्ष से राज भय और अत्यन्त जीर्णवृक्ष से घर का क्षय होता है तीन शिर के वृक्ष से गर्भपात और अनेक शिर वाले वृक्ष से संतान का मरण होता है ॥ १९ ॥ अन्यवृक्ष के धक्के से टूटे हुए वृक्ष से शत्रुका भय होता है उद्यान के वृक्ष से आकाश सम्बंधी भय होताहै और जो लताओं से ढका हो उस से दरिद्रता और फूलवाले वृक्ष से कुल का नाश होता है ॥ २० ॥

सर्पयुक्ते सर्पभयन्देवालयगतेक्षयः ॥ कन्याजन्मातुकन्याङ्केसच्छिद्रेस्वामिनोभयम् ॥ लिङ्गेवाप्रतिमायांवातथाशक्रध्वजेपिच ॥ १०२१ ॥ आग्नेयपञ्चकेचन्द्रेनविदध्यात्कदाचन ॥ गृहेदेवालयेवापिपरीक्षेतप्रयत्नतः मासदग्धंवारदग्धंतिथिदग्धन्तथैवच ॥ १०२२ ॥ रिक्तातिथिञ्चदर्शञ्चतिथिंषष्ठींचवर्जयेत् ॥ एकार्गलन्तथाभद्रांयेचयोगाःकुसंज्ञकाः ॥२३॥ उत्पातदूषितमृक्षंसंक्रान्तौग्रहणेषुच॥ वैधृतौचव्यतीपाते नविदध्यात्कदाचन ॥ १०२४ ॥

सर्पवाले वृक्षसे भय देवालयके वृक्षसे नाश होताहै और कन्यांकित वृक्ष से कन्याओंका जन्म होताहै छिद्रयुक्त वृक्षसे स्वामीको भय होताहै लिंग वा प्रतिमा वा इंद्रध्वजाको ॥ २१ ॥ कृत्तिका आदि पांच नक्षत्रोंमें चंद्रमा हो तो कदाचित् न बनवावै । घर अथवा देवालय में भी यत्नसे इसकी परीक्षा

करै और मासदग्ध, वारदग्ध, तिथिदग्ध ॥ २२ ॥ और रिक्ता तिथि, अमावास्या और षष्ठी इनकोभी त्याग देना चाहिये एकार्गल दोष, भद्रा, तथा अन्य कुयोग, ॥ २३ ॥ उत्पातसे दूषित नक्षत्र तथा संक्रांति, ग्रहण वैधृति व्यतीपात इनमें घरको कदाचित् न बनवावै ॥ २४ ॥

सौम्यंपुनर्वसुंमैत्रंकरम्मूलोत्तराद्वये ॥ स्वातौचश्रवणेचैव वृक्षाणाञ्छेदनंशुभम् ॥ १०२५ ॥ समभूमिर्वनेयस्मिंस्तस्मिन्वृक्षंप्रपूजयेत् ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यम्बलिन्दद्याद्विशेषतः२६ वस्त्रेणाच्छादितंकृत्वावेष्टयेत्तंतुनातथा ॥ श्वेतवर्णानुवर्णेनवर्णानुक्रमेणच ॥ १०२७ ॥ मंत्रैरेतैर्यथान्यायंप्रार्थयेत्तंपुनःपुनः ॥ आचार्यः सूत्रधारश्चरात्रौतमधिवास्यच॥१०२८॥ स्पृष्ट्वावृक्षमिमंमंत्रंब्रूयाद्रात्रौविधानवित्॥ यानीहवृक्षेभूतानितेभ्यःस्वास्तिनमोस्तुवः ॥१०२९॥ उपहारंगृहीत्वेमंक्रियतांवासपर्ययः॥प्रार्थयित्वावरयतेस्वास्तितेस्तुनगोत्तम ॥ १०३० ॥

मृगासिर, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मूल, दोनों उत्तरा, श्रवण, इनमें वृक्षका छेदन शुभ फलदायक होता है ॥ २५ ॥ समान भूमिवाले वनमें वृक्षका पूजन करै और गंध, पुष्प, नैवेद्य और विशेषकर बलि प्रदानकरै ॥ २६ ॥ और वस्त्रसे ढक कर सूत्रसे लपेटे । वर्ण से श्वेतवर्ण हो वा चार वर्णोंके कहे हुए वर्णका हो ऐसे सूत्रसे लपेटै ॥ २७ ॥ इन मंत्रोंसे उस वृक्षकी बारबार विधिपूर्वक प्रार्थना करै और आचार्य अथवा सूत्रधार रात्रिके समय उस वृक्षके समीप शयन करै ॥ २८ ॥ विधिका ज्ञाता आचार्य वृक्षका स्पर्श करके रात्रिके समय इस मंत्रका उच्चारण करै कि इस वृक्षमें जो भूत है उनके निमित्त स्वस्ति हो और उनको नमस्कार है ॥ २९ ॥ इस उपहार को लेकर किसी अन्य वृक्ष पर जावसो इस तरह प्रार्थना करके वर मांगै हे वृक्षों में श्रेष्ठ आपका कल्याणहो ॥ ३० ॥

गृहार्थंवान्यकार्यार्थंपूजेयंप्रतिगृह्यताम् ॥ परमान्नमोदकौदनदधिपल्लौलादिभिर्दशैः १०३१ ॥ मद्यैः कुसुमधूपैश्च गन्धैश्चैवतरुम्पुनः ॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरविनायकाश्च ॥ गृह्णन्तुमत्प्रयुक्तांवृक्षंसंस्पृश्यचब्रूयात् ॥ यानीह भूतानिवसंतितानिबलिंगृहीत्वाविधिवत्प्रयुक्तम् ॥ १०३२ ॥

अन्यत्रवासंपरिकल्पयन्तुक्षमन्तुतानद्यनमोस्तुतेभ्यः॥ ३३ ॥ वृक्षंप्रभातेसलिलेनसिक्त्वामध्वाज्यलिप्तेनकुठारकेण ॥ पूर्वोत्तरस्यांदिशिसंनिकृत्त्यप्रदक्षिणंशेषमतोविहन्यात् ॥१०३४॥

घरके लिये वा अन्य कार्यके लिये इस पूजाको ग्रहण करो परम अन्न, जलौदन, दधि, पल्लोल, आदि दशोंसे ॥ ३१ ॥ फिर मद्य, पुष्प, गंध, इन से वृक्षका पूजन करके कहै कि सुर, पितर, पिशाच, राक्षस, सर्प, असुर, विनायक ये सब मेरी दी हुई बलिको ग्रहण करो तदनन्तर वृक्षका स्पर्श करके कहै कि जो भूत इस वृक्षमें वसते हैं वे विधिसे दीहुई मेरी बलिको ग्रहण करके ॥ ३२ ॥ अन्यस्थानों में चले जाओ और क्षमा करो अब उनको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ प्रातः कालके समय वृक्षको सींचकर मधु और घी से लिप्त कुठारसे पूर्वउत्तरकी दिशामें दाहिनी ओर को जाते हुए एक चोट लगावै फिर सब वृक्षको काट डालै ॥ ३४ ॥

छेदयेद्वर्तुलाकारंपतनञ्चोपलक्षयेत् ॥ प्राग्दिशःपतनं कुर्याद्धनधान्यंसमर्चितम् ॥ आग्नेय्यामग्निदाहःस्याद्दक्षिणेमृत्युमादिशेत् ॥ नैर्ऋत्येकलहंकुर्यात्पश्चिमेपशुवृद्धिदम् ।३५। वायव्येचौरभीतिःस्यादुत्तरेचधनागमम् ॥ ईशानेचमहाश्रेष्ठं नानाश्रेष्ठन्तथैवच ॥ १०३६ ॥ भग्नंवायद्भवेत्काष्ठंयच्चान्यत्तरुमध्यगम् ॥ तन्नशस्तंगृहेवर्ज्यन्दोषदंकर्मकारयेत् ।३७।

इसमें जो छेद कियाजाय वह गोलाकार होना चाहिये और इसबात पर ध्यान रक्खै कि वृक्ष किधरको गिरताहै पूर्व दिशामें गिरै तो धन और धान्यसे पूरित घर होताहै, अग्निदिशामें पडै तो अग्निका दाह करता है, दक्षिण का पतन मृत्युसूचक होता है नैर्ऋत्यमें कलह करता है और पश्चिमका पतन पशुओंकी वृद्धि करता है ॥ १०३५ ॥ वायव्यमें चौरोंका भय होताहै उत्तर में गिरैतो धनका आगम होता है ईशानमें गिरैतो महाश्रेष्ठ और अनेक उत्तम फलोंको देता है ॥ ३६ ॥ टूटा हुआ काठ तथा अन्यवृक्षके मध्यमें जमेहुये काठ घरमें लगाना अच्छानहीं है यह निषिद्ध होताहै और दूषित कर्मको करवाता है ॥ १०३७ ॥

भग्नकाष्ठेहतानारीस्वामीनायुधसंज्ञके ॥ कर्मकर्त्तारमन्तस्थंधननाशकरम्महत् ॥ १०३८ ॥ एकमाद्यम्महाश्रेष्ठंधनधा

न्यसमृद्धिदम् ॥ पुत्रदारपशूंश्चैवनानारत्नसमन्वितम् ।३९।
द्विभागंसफलम्प्रोक्तन्त्रिभागन्दुःखदंस्मृतम् ॥ चतुष्षष्ठेबन्धन
ञ्चपञ्चमेमृत्युमादिशेत् ॥ १०४० ॥

टूटेहुए काठ से नारीका मरण होताहै, शस्त्रसे छेदनाकिये काठसे स्वामी का नाश होताहै, मध्यका काठ कारीगर को नष्ट करता है अन्तस्थ काठ धनका नाश करनेबाला है ॥ ३८ ॥ एकही काठ महाश्रेष्ठ होताहै और धन धान्यकी वृद्धि करता है और पुत्र, दारा, पशु और अनेक रत्नोंसे युक्त घरको करताहै ॥ ३९ ॥ दोभागका वृक्ष सफल कहाहै तीन भागका दुःखदायी होताहै और चार तथा छः भागका काठ बंधन करता है और पांचभाग का काठ मृत्युकारक है ॥ १०४० ॥

जर्ज्जरेधननाशः स्यान्मध्येछिद्रेंगदप्रदम् ॥ निष्फलेनिष्फलेगेहेसफलेफलमेवच १०४१ ॥ विरूपेधननाशः स्यात्सक्षतेरोगमेवच ॥ हीनांगेक्षीरनाशञ्चविकटेकन्यकोद्भवम्।४२।
काष्ठन्नोभज्यतेकीटैर्यादिपक्षंधृतंजले ॥ कृष्णपक्षेछेदनञ्चन शुक्लेकारयेद्बुधः ॥ १०४३ ॥ उद्धृत्यकाष्ठंशकटैर्मनुष्यैर्वासमन्ततः ॥ धेन्यानाशेतस्यनाशः आरभंगेबलक्षयः ॥४४ ॥

जीर्ण काठसे धनका नाश तथा वीचमें छेदवाला रोग कारक होता है फलहीन वृक्षसे घर निष्फल होता है और सफल से सफल होताहै ॥ ४१ ॥ विरूपसे धनका नाश, घुनेहुए काठसे रोग होताहै, अंगहीनसे दूधका नाश और विकट वृक्षसे कन्याओं का जन्म होताहै ॥ ४२ ॥ यदि पन्द्रह दिन तक काठ जलमें पडारहै तो उसमें घुन नहीं लगता है. लकडी को कृष्णपक्षमें काटना चाहिये शुक्लपक्ष में कदापि न काटै ॥ ४३ ॥ गाडी में लादकर वा मनुष्यों के शिरपर धरवाकर लकडियां इकट्ठी करै वेणी अर्थात् गाडा की फडके टूटनेपर स्वामीका नाश होताहै आरके टूटने से बलका नाश ॥ ४४ ॥

अर्थक्षयोक्षभेदेचतथाभंगेचवर्धके ॥ विजयायभवेच्छ्वेतः पीतारोगप्रदोमतः ॥ १०४५ ॥ जयदाश्चित्ररूपश्चरक्तैःशस्त्राद्भयंभवेत् ॥ प्रवेशेचैवदारूणांबालकाश्चापितारुणाः ॥४६।
यद्भावाचंकथयन्तितत्तथैवभाविष्यति ॥ रज्जुच्छेदेबालपीडा

यंत्रभेदेतथैवच ॥१०४७॥ इतिप्रोक्तम्मयावृक्षच्छेदनार्थंविधानतः ॥ शकुनानिपरीक्षेतदारुच्छेदनकर्मणि ॥ १०४८॥ इतिवास्तुशास्त्रेवृक्षच्छेदनविधौनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

धुरी वा रस्सीके टूटने से धनका नाश होता है सफेद लकडी विजय कारक पीली लकडी रोगकारक ॥ १०४५ ॥ चित्ररूप जयकी दाता लाल शस्त्रसे भय करती है लकडी को घरके भीतर लेजाते समय बालक ॥ ४६ ॥ और तरुण जिस वाणीको कहते हैं वह उसीप्रकार सत्य होती है । रज्जूके छेदन और यन्त्रके भेदमें बालकोंमें पीडा होतीहै ॥ ४७ ॥ यह वृक्षछेदनकी विधि मैंने कहीहै लकडी के काटने मेंभी शकुनकी परीक्षा लेनी चाहिये॥४८॥ इति वास्तुशास्त्रे वृक्षच्छेदनविधौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथप्रवेशोनवमन्दिरस्यसौम्यायनेजीवसितेबलाढ्ये ॥ स्याद्वेशनेज्येष्ठतपोत्यमाधवेमार्गेशुचौमध्यफलप्रदंस्यात् ॥ माघेर्थलाभःप्रथमप्रवेशेपुत्रार्थलाभःखलुफाल्गुनेच ॥ ४९ ॥ चैत्रेर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासेपशुपुत्रलाभः ॥ ज्येष्ठेचमार्गेचशुचौचमासेमध्यःप्रदिष्टःप्रथमप्रवेशः ॥ यात्रानिवृत्तौमनुजाधिपानांवास्त्वर्चनम्भूतबलिश्चपूर्वं ॥ ५० ॥

अब नये घरमें प्रवेशका वर्णनकरतेहैं ' उत्तरायण सूर्य बृहस्पति और शुक्रके बलवान् होनेपर ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख वा मार्गशिरमें गृहका प्रवेश उत्तमकहा है और आषाढमें मध्यमफल देताहै । माघमें प्रवेश होय तो धनका लाभ फाल्गुनम पुत्र और धनकालाभ॥४९॥चैत्रमें धनकी हानि और वैशाखमें धन धान्य पशुपुत्रका लाभ होताहै । ज्येष्ठ, मार्गशिर तथा आषाढ में प्रथम प्रवेश मध्यम होता है राजाओं की यात्रा होने पर प्रथम वास्तुपूजा और भूतबलि को करै ॥ १०५० ॥

दिनेप्रदद्यादथदिक्क्रमेणमांसह्यसृक्चाप्ययुतञ्चतुर्षु ॥ येभूतानीतिमन्त्रेणचतुर्दिक्षुबलिंहरेत् ॥ ५१ ॥ गृहमूलेबलिन्दद्याद्गृहस्योर्द्धेतथैवच ॥ दद्याद्दीपम्पूर्वदिनेवास्तुपूजान्तश्चरेत् ॥ ५२ ॥ घृतन्दुग्धन्तथामांसंलड्डुकंमधुसंयुतम् ॥

पूर्वादिक्रमयोगेनबलिन्दद्याद्विशेषतः ॥ ५३ ॥ स्कन्धधरादियक्षाणांईशानादिक्रमेणच ॥ चकारादिबलिञ्चैवविदिक्षु विनिवेदयेत् ॥५४॥ विष्णोरराटिमन्त्रेणपूजयेद्वास्तुपूरुषं ॥ नमोस्तुसर्पेभ्यइतिसर्पराजंप्रपूजयेत् ॥ १०५५ ॥

और वह बलि प्रवेश के दिन से पहिले दिन करै फिर दिशाओं के क्रम से मांस और रुधिर की बालि चारों कोनों में दे और 'ये भूतानि' इस मंत्र से चारों दिशाओं में बलि दे ॥ ५१ ॥ घरके मूल में और घरके ऊपर भी इसी रीति से बलि प्रदान करै और पहिले दिन दीपदान करके फिर वास्तुपजा करै ॥ ५२ ॥ घी, दूध, मांस, लड्डु, और शहत इनकी बलि पूर्वआदि दिशाओं के क्रमसे दे ॥ ५३ ॥ और स्कंधधर आदि यज्ञों को ईशान आदि क्रमसे चकोर आदि की बलि को विदिशाओं में दे ॥ ५४ ॥ विष्णोरराट इस मंत्र से वास्तु पुरुष का पूजन करै " नमोस्तु सर्पेभ्यः०" इस मंत्र से सर्पराजकापूजन करै ॥ ५५ ॥

अन्येषामपिदेवानाङ्गायत्रीमंत्रईरितः ॥ अपूर्वसंज्ञेतुगृहेविधिरेषउदाहृतः ॥ ५६ ॥ कालशुद्धिविचारोत्रकर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ कुम्भेर्कफाल्गुनेमार्गेकार्तिकेतुशुचौतथा ५७ नववेश्मप्रवेशन्तुसर्वथापरिवर्जयेत् ॥ द्वंद्वसौपूर्विकगृहेमासदोषोनविद्यते ॥ ५८ ॥ सुचिरप्रवासेनृपतेर्दर्शनेगृहवेशने ॥ भानुशुद्धिःप्रकर्तव्याचांद्रमासेप्रवेशनम् ॥ ५९ ॥ निर्गमान्नवमेवर्षेमासेवादिवसेपिवा ॥ प्रवेशोनिर्गमश्चैवनैवकुर्यात्कदाचन ॥ १०६० ॥

और अन्यदेवताओं का भी गायत्री मंत्र कहा है अपूर्वनाम के घर में यही विधि कही गई है ॥ ५६ ॥ शुभका अभिलाषी मनुष्य इस में काल शुद्धि के बिचार को करै कुंभ के सूर्य तथा फाल्गुन, मार्गशिर, कार्तिक और आषाढ में ॥ ५७ ॥ नये घर में कभी प्रवेश न करना चाहिये दो मनुष्यों और पुराने घर में मासका दोष नहीं है ॥ ५८ ॥ चिरकालतक परदेश के वास में राजा के दर्शन में और घर के प्रवेश में सूर्य को शुद्ध देखना और चंद्रमा के मासमें प्रवेश करना चाहिये ॥ ५९ ॥ जिस दिन घर से

जाय उस दिन के नवें वर्ष और नवें मास और नवें दिनमें प्रवेश न करै और प्रवेश के समय से उन दिनों में यात्रा को भी कदाचित् न करे ॥ ६० ॥

यद्येकदिवसेराज्ञःप्रवेशोनिर्गमस्तथा ॥ तदाप्रावेशिकञ्चिन्त्यंबुधैर्नैवतुयात्रिकम् ॥ ६१ ॥ गृहारम्भादिनेमासेधिष्ण्येवारेविशेद्गृहम् ॥ विशेत्सौम्यायनेहर्म्यन्तृणागारंतुसर्वदा ॥ ६२ ॥ कुलीरकन्यकाकुंभेदिनेशेनविशेद्गृहम् ग्रामंवानगरंवापिपत्तनम्वातथैवच ॥ मृदुध्रुवर्क्षैः शुभदन्नववेश्मप्रवेशनम् ॥ पुष्यस्वातीयुतैस्तैश्च जीर्णस्याद्वासवद्वये ॥ १०६४ ॥

यदि एकही दिन में राजा का प्रवेश और यात्रा होय तो प्रवेश के समय की शुद्धि को विचारै यात्रा की शुद्धि को न विचारै ॥ ६१ ॥ घरके आरम्भ में जो दिन मास नक्षत्र बारहै उनमें ही गृह प्रवेश करै सूर्य के उत्तरायण होने पर प्रवेश करै और तृण के घर में तो सदैव प्रवेश करै ॥ ६२ ॥ कर्क, कन्या, कुम्भ, इनके सूर्यमें घर, ग्राम, नगर और शहरमें प्रवेश न करै ॥ ६३ ॥ मृगाशिर, चित्रा, अनुराधा, रेवती तीनों उत्तरा और रोहणी संज्ञक नक्षत्रों में नवीन घर क प्रवेश शुभफलदायक होता है और पुष्य, स्वाति और धनिष्ठा शतभिषा से युक्त पूर्वोक्त नक्षत्रों में पुराने घर में प्रवेश शुभ होता है ॥ १०६४ ॥

क्षिप्रैश्चैश्चनक्षत्रैर्नववेश्मप्रवेशनम् ॥ नकुर्यादुग्रनक्षत्रैर्दारुणैर्वाकदाचन ॥ ६५ ॥ उग्रोहन्तिगृहपतिंदारुणेषुकुमारकम् ॥ द्विदैवभेपत्निनाशमग्निभेत्वग्निजंभयम् ॥ ६६ ॥ प्रवेशनन्द्वारभैः स्यादन्यदिक्स्थैनकारयेत् ॥ रिक्तातिथिंभौमवारं शनिंवानैवकारयेत् ॥ केचिच्छनिंप्रशंसन्तिचौरभीतिस्तुजायते ॥ ६७ ॥

क्षिप्रसंज्ञक और पुनर्वसु, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, भरणी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद और दारुण संज्ञक नक्षत्रों में नये घरमें प्रवेश न करना चाहिये ॥ ६५ ॥ उग्र नक्षत्र घर के स्वामी का, दारुण नक्षत्र बालक का और विशाखा नक्षत्र स्त्री का नाश करता है और कृत्तिका नक्षत्र में प्रवेश करै तो अग्नि से भय होता है ॥ ६६ ॥ द्वारके नक्षत्रों में ही प्रवेश करना शुभ है अन्य दिशा में

स्थित नक्षत्रों में प्रवेश कदापि न करै रिक्तातिथि, मंगलवार और शनिवार को प्रवेश न करै कोई २ आचार्य शनैश्चर के दिन प्रवेश को अच्छा कहते हैं परंतु उस में चोरों का भय होता है ॥ ६७

कुयोगेपापलग्नेवाचरलग्नेचरांशके ॥ शुभकर्मणियेवर्ज्यास्तेवर्ज्याास्मिन्प्रवेशने ॥ नन्दायांदक्षिणद्वारंभद्रायाम्पश्चिमेनतु ॥ ६८ ॥ जयायामुत्तरद्वारंपूर्णायांपूर्वमाविशेत् ॥ व्याधिहाधनहाचैववित्तदोबन्धुनाशकृत् ॥ ६९ ॥ पुत्रहाशत्रुहास्त्रीघ्नः प्राणहापिटकप्रदः ॥ सिद्धिदोधनदश्चैवभयकृज्जन्मराशितः ॥ ७० ॥

कुयोग, पापलग्न, चरलग्न और चरलग्नका नवांशक तथा शुभ कर्म में जो वर्जित हैं वे इस प्रवेश में भी वर्जित हैं । नंदातिथि को दक्षिण द्वार में भद्रा तिथि को पश्चिम के द्वार में ॥ ६८ ॥ जयातिथि को उत्तर के द्वार में और पूर्णा तिथि को पूर्व के द्वार में प्रवेश करना चाहिये और जन्म की राशि से व्याधिनाश, धननाश धनलाभ, बंधुनाश, ॥ ६९ ॥ पुत्रनाश, शत्रुनाश स्त्रीनाश, प्राणनाश, पिटक लाभ, सिद्धि, काम धन प्राप्ति और भय ये बारह प्रकार के फल होते हैं ॥ ७० ॥

लग्नस्थक्रमतोराशिर्जन्मलग्नात्प्रवेशने ॥ लग्नंसौम्यान्वितंकार्यन्नतुक्रूरैः कदाचन ॥ ७१ ॥ निन्दिताअपिलग्नांशाश्चरराशिगतायदि ॥ शुभांशसंयुताः कार्याः कर्तृभोपचयस्थिताः ॥ ७२ ॥ भूयोयात्राभवेन्मेषेनाशःकर्कटकेपिवा ॥ व्याधिंतुलाधरेलग्ने मकरेधान्यनाशनम् ॥ ७३ ॥ एतदेवांशकफलंयदिसौम्ययुतेक्षितौ ॥ चरांशेचरलग्नेचप्रवेशन्नैवकारयेत् ॥ ७४ ॥

लग्नमें स्थित क्रम से प्रवेश में जन्मलग्न से राशि लेनी और लग्न भी सौम्य ग्रहों से युक्त ग्रहण करनी चाहिये और क्रूर ग्रहों से युक्त लग्न को प्रवेश में कदापि ग्रहण न करै ॥ ७१ ॥ लग्न के अंश यद्यपि निन्दितहो और चरराशि के भी हों और शुभ ग्रह के नवांशक से हों तो प्रवेश में ग्रहण करने चाहिये जो वे प्रवेश कर्ता की राशि के उपचय भवन में स्थित हों ॥ ७२ ॥

मेषलग्न में प्रवेश करने से यात्रा फिर होती है कर्कलग्न में प्रवेश करने से नाश होता है, तुला लग्न में करने से व्याधि है मकरलग्न में धान्य का नाश होता है ॥ ७३ ॥ यही फल नवांशकका होता है यदि वह नवांशक सौम्य ग्रह से युक्त और दृष्ट हो और चरराशि के नवांशक में और चर लग्न में प्रवेश कदापि न करै ॥ ७४ ॥

चित्राशतभिषास्वातीहस्तः पुष्यः पुनर्वसुः ॥ रोहिणी रेवतीमूलंश्रवणोत्तरफाल्गुनी ॥ धनिष्ठाचोत्तराषाढाभाद्रपदोत्तरान्विताः ॥ अश्विनीमृगशीर्षञ्चअनुराधास्तथैवच ॥ वास्तुपूजनमेतेषुनक्षत्रेषुकरोतियः ॥ संप्राप्नोतिनरोलक्ष्मीमितिशास्त्रेषुनिश्चयः ॥ ७५ ॥ नित्ययानेगृहेजीर्णेप्राशने परिधानके ॥ वधूप्रवेशेमांगल्येनमौढयङ्गुरुशुक्रयोः ।७६।

चित्रा, शतभिषा, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तराफाल्गुन, धनिष्ठा उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, मृगशिर, अनुराधा, इन नक्षत्रों में जो मनुष्य वास्तुपूजन करता है वह मनुष्य लक्ष्मी को प्राप्त होता है यह शास्त्रों में कहागया है ॥ ७५ ॥ नित्य प्रति यात्रा, पुराना घर, अन्नप्राशन, वस्त्र धारण, वधूप्रवेश और मंगल कर्म इन में गुरु और शुक्रके अस्तका दोष नहीं लियागया है ॥ ७६ ॥

त्रिकोणकेन्द्रगैः सौम्यैः स्थिरेद्व्यङ्गेखलग्रहैः ॥ द्विकात्रिकोणकेन्द्राष्टवर्जितैः प्रविशेद्गृहम् ॥ ॥ १०७७ ॥ अभिजिच्छ्रवणयोर्मध्येप्रवेशेसूतिकागृहे ॥ नृपादीनांब्राह्मणानांनावधेयङ्कदाचन ॥ १०७८ ॥ क्रूरयुक्तङ्क्रूरविद्धंमुक्तंक्रूरग्रहेणच ॥ यद्भन्तव्यन्नतच्छस्तंत्रिविधोत्पातदूषितम् ॥ १०७९ ॥ लत्तयानिहतंयच्चक्रान्तिसाम्येनदूषितम् ॥ प्रवेशेत्रिविधेत्याज्यंग्रहणेनाभिदूषितम् ॥ १०८० ॥

त्रिकोण और केंद्र स्थानों में सौम्य ग्रह हों, स्थिर द्विःस्वभाव लग्न हों और अष्टमस्थानसे अन्य स्थानों में स्थित हों ऐसे लग्न में घर में प्रवेश करना चाहिये ॥ ७७ ॥ अभिजित् श्रवण के मध्यमें, प्रवेश में और सूतिकागृह में राजालोग और ब्राह्मणों का तिरस्कार कदापि न करै ॥ ७८ ॥

क्रूर ग्रहसे युक्त और क्रूर ग्रह से विद्ध और क्रूर ग्रह से मुक्त और जिसपर क्रूर ग्रह जाने वाला हो और तीन प्रकार के उत्पातों से दूषित नक्षत्र में गृह प्रवेश उत्तम नहीं होता ॥ ७९ ॥ लत्तासे निहत और क्रांतिसाम्य से दूषित नक्षत्र और ग्रहण से दूषित यह तीन प्रकारका प्रवेश वर्जित है ॥८०॥

यावच्चन्द्रेणभुक्तंनदृशेनैवतुशोभनम् ॥ जन्मभाद्दशमङ्क्षंसांघातर्क्षन्तुषोडशम् ॥ १०८१ ॥ अष्टादशंसामुदायंत्रयोविंशंविनाशकम् ॥ मानसंपञ्चविंशाख्यंनाचरेदेषुशोभनम् ॥ १०८२ ॥ स्वोच्चसंस्थेगुरौलग्नेशुक्रेवावेश्मसंस्थिते ॥ यस्यात्रवेशोभवतितद्गृहंसौख्यसंयुतम् ॥ १०८३ ॥

चंद्रमासे भुक्त नक्षत्र भी श्रेष्ठ नहीं है और जन्म के नक्षत्रसे दसवां तथा युद्धका नक्षत्र और सोलहवां नक्षत्र ॥ ८१ ॥ अठारहवां समुदाय तेईसवां ये विनाशक होतेहैं मानस नामक पच्चीसवां इनमें शुभकर्मों को कदापि न करै ॥ ८२ ॥ अपने उच्चस्थान का गुरु लग्नमें हो अथवा शुक्र अपने स्थान में हो ऐसे लग्नमें जिसका प्रवेश होताहै वह घर सदा सुखसे भरा रहताहै ॥ ८३ ॥

स्वोच्चास्थेलग्नगेसूर्येचतुर्थेदेवपूजिते ॥ यस्यात्रयोगोभवतिसंपदाढ्यंगृहंभवेत् ॥ गुरौलग्नेस्तगेशुक्रेषष्ठेर्केलाभगेशनौ ॥१०८४॥ प्रवेशकालेयस्यायंयोगः शत्रुविनाशदः ॥ लग्नेशुक्रेसुखेजीवेलाभेर्केरिपुगेकुजे ॥ वेश्मप्रवेशोयोगेस्मिञ्शत्रुनाशकरः परः ॥ १०८५ ॥ गुरुशुक्रौचहिबुकेलाभगौकुजभास्करौ ॥ प्रवेशोयस्यभवतितद्गृहंभूतिदायकम् ॥ १०८६ ॥

और अपने उच्चका सूर्य लग्न में हो, वृहस्पति चौथे भवन में हो ऐसे लग्न में योग होने से वह घर सर्वसंपत्तियों से युक्त रहता है और गुरु लग्न में हो शुक्र अस्त हो छठे स्थान में सूर्य हो लाभमें शनि हो ॥ ८४ ॥ यह योग जिसके प्रवेश समय में हो वह घर शत्रुओं का नाशक होता है लग्नमें शुक्र हो चौथे भवनमें गुरु हो लाभमें सूर्य हो छठे स्थान में मंगल हो ऐसे लग्नमें गृह प्रवेश शत्रुओंका नाश करनेवाला होताहै ॥ १०८५ ॥ यदि गुरु और शुक्र चौथे स्थानमें हों मंगल और सूर्य ग्यारहवें स्थानमें हों ऐसे समय में जिसका प्रवेश होता है वह घर ऐश्वर्य का बढाने वाला होताहै ॥ ८६ ॥

एकोपिजीवज्ञशशिसितानांस्वोच्चगः सुखे ॥ खभेवात-दूगृहंसौख्यदायकंलग्नगेपिवा ॥ अष्टमस्थेनिशानाथेयदि-योगशतैरपि ॥ १०८७ ॥ तदातेनिष्फलाज्ञेयावृक्षावज्रहता-इव ॥ क्षीणचन्द्रोन्त्यषष्ठाष्टसंस्थितोलग्नतस्तथा ॥ भार्यावि-नाशनंवर्षात्सौम्ययुक्तोत्रिवर्षतः ॥ १०८८ ॥

गुरु बुध चंद्रमा शुक्र इनमें से एकभी ग्रह अपने उच्च का होकर चौथे वा दसवें घर में बैठा हो वा लग्न में हो तो घर सुखदायक होताहै जो अष्ट-म घर में चंद्रमा होय तो चाहै सौ भी उत्तम योग हों ॥ ८७ ॥ तो भी वे बिजली से मारे हुए वृक्ष की तरह निष्फल हो जाते हैं यदि क्षीण चंद्रमा बारहवें, छठे, वा आठवें भवन में वा लग्नमें हो तो एक वर्षमें स्त्री मरजाती है और सौम्यग्रहसे युक्त लग्न हो तो तीन वर्षमें स्त्रीका नाश होताहै ॥८८॥

जन्मभादष्टमंस्थानंलग्नाद्वाथतदंशकम् ॥ त्यजेच्चसर्वकर्माणिदुर्लभंयदिजीवितम् ॥ १०८९ ॥ प्रवेशलग्नान्निधनेयः कश्चित्पापखेचरः ॥ क्रूरर्क्षेहन्तिवर्षार्द्धाच्छुभर्क्षेवाष्टवत्सरात्॥ ॥ १०९० ॥ रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात्पञ्चस्वर्केस्थितेक्रमात् ॥ पूर्वाशादिसुखङ्गेहाद्विशेद्वामोभवेद्यतः ॥ गुरुदेवाग्निगोविप्र ऊर्ध्वपादैर्धनक्षयम् ॥ १०९१ ॥ सौम्यंप्रत्यक्छिरोमृत्युर्वंशाद्यारुक्सुतार्तिदा ॥ प्राक्छिराःशयनेविद्याद्दक्षिणेसुखसंपदः॥ पश्चिमेप्रबलाचिन्ताहानिर्मृत्युंतथोत्तरे ॥ १०९२ ॥ स्वगेहे प्राक्छिराः सुप्याच्छ्वाशुरेदक्षिणाशिरः ॥ प्रत्यक्छिरःप्रवासेतु नोदक्सुप्यात्कदाचन ॥ १०९३ ॥

जन्मलग्न से आठवें स्थान और जन्मलग्नसे आठवें नवांशक में कोई कर्म न करना चाहिये यदि करै तो जीवन दुर्लभ होताहै ॥ ८९ ॥ प्रवेशके लग्नसे अष्टम स्थानमें यदि कोईभी पापग्रह पडाहो और जो वह क्रूर राशिपर हो तो छः महिनेमें और शुभ राशिपर हो तो आठ वर्षमें स्वामीका नाश करताहै ॥ ९० ॥ दसवें पांचवें नवें और ग्यारहवें स्थानसे पंचम भवनमें सूर्य स्थित हो तो क्रमसे पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर मुखके घरमें प्रवेश करै और गुरु देवता अग्नि विप्र इनको वाम भागमें रक्खै ऊर्ध्वपाद नक्षत्रोंसे धनका नाश

होता है ॥ ९१ ॥ उत्तर और पश्चिमको शिर करके शयन करने से मृत्यु होतीहै और शय्याकी पाटी आदिभी रोग और पुत्रोंको पीडा देनेवाली होतीहै खाटपर पूर्व वा दक्षिण को सिर करके सोवै तो सुख और संपदाओंको सदैव प्राप्त होताहै और पश्चिमको शिर करनेसे प्रबल चिंता होतीहै और उत्तरको शयन करनेसे हानि और मृत्यु होतीहै ॥ ९२ ॥ अपने घरमें पूर्वको सिरकरके शयन करे श्वशुरके घरमें दक्षिणको, और प्रदेशमें पश्चिमको सिर करके शयन करै और उत्तरको सिर करके कदापि न सोवै ॥ ९३ ॥

शय्या के लक्षण ।

कथयामिसमासेनदारुकर्मक्रमेणच ॥ आयशुद्धातथाकार्यायथागोहरिकुञ्जराः ॥ १०९४ ॥ तथैवदोलिकायानंयथाशोभंविधीयते ॥ प्रमाणंश्रृणुविप्रेंद्रयत्प्राप्तोहंबृहद्रथात् ॥ ॥ १०९५ ॥ कथयामितथाशय्यायेनसौख्यमवाप्नुयात् ॥ अशनस्पन्दनचन्दनहरिद्रुसुरदारुतिंदुकीशालाः ॥ काश्मर्यार्ज्जुनपद्मकशाकाम्राशिंशिपाचशुभाः ॥ १०९६ ॥

अब क्रमपूर्वक संक्षिप्तरीति से काठके कर्मको कहते हैं जैसे गौ घोडा हाथी आय शुद्धिसे किये जाते हैं उसी तरह शय्याभी लंबाई चौडाईसे शुद्ध बनवानी चाहिये वैसीही डोली पालकी आदि सवारीभी बनवानी चाहिये ॥ ९४ ॥ हे विप्रेंद्र अबमें उस प्रमाणको कहता हूं जो मुझे बृहद्रथ ने बताया है ॥ ९५ ॥ और शय्याका सुख उत्पन्न करने वाला वर्णन करताहूं अशन स्यंदन, चंदन,हरिद्रु, देवदारु, तिंदुकी, शाल, काश्मरी, अर्जुन, पद्मक, शाक, आम्र, शिंशपा ये वृक्ष शय्याके बनानेमें शुभ होते हैं ॥ ९६ ॥

अशनिजलानिलहस्तिप्रपातितामधुविहङ्गकृतनिलयाः॥ चैत्यश्मशानपथिजार्द्धशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च ॥ कण्टकिनोये स्युर्महानदीसङ्गमोद्भवायेच ॥ १०९७ ॥ सुरप्रासादगायेच याम्यपश्चिमदिग्गताः ॥ १०९८ ॥ प्रतिषिद्धवृक्षजायेयेचान्येपिअनेकधा ॥ त्याज्यास्तेदारवस्सर्वेशय्याकर्मणिकर्मवित्॥ ॥ १०९९ ॥ कृतेकुलविनाशः स्याद्व्याधिः शत्रोर्भयानिच ॥ ११०० ॥

बिजली, पवन, वा हाथीके गिराये हुये वृक्ष तथा जिनपर मधुमक्खियों का छत्ता लगाहो वा पक्षिओं का निवास हो और चैत्य वा मरघटमें उत्पन्न वृक्ष वा आधा सूखा और लताओं से लिपटा हुआ ॥ ९७ ॥ वा कांटेदार और नदियों के संगमपर उत्पन्न होनेवाला और जो देवता-के मंदिरमें हों और जो दक्षिण और पश्चिम दिशामें उत्पन्न हुये हों ॥ ९८ ॥ और जो निषिद्ध वृक्षसे उत्पन्न हुयेहों और जो अन्यभी भिन्न भिन्न प्रकार के हैं ऐसे वृक्षों की लकडियां शय्या बनाने में वर्जित हैं ॥ ९९ ॥ और इन पूर्वोक्त निषिद्ध वृक्षोंकी शय्या बनवानेसे कुलका नाश रोगोत्पत्ति और शत्रुभय होता हैं ॥ ११०० ॥

पूर्वंछिन्नंयत्रदारुभवेदारंभयेत्ततः ॥ शकुनानिपरीक्षेतकुर्यात्तस्यपरिग्रहः ॥ श्वेतपुष्पाणिदन्त्यश्चदध्यक्षतफलानिच॥ पूर्णकुम्भाश्चरत्नाश्चमङ्गल्यानिचयानिच ॥ तानिदृष्ट्वाप्रकुर्वीत अन्यानिशकुनानिच ॥ यवाष्टकानामुदरेवितुषेऽङ्गुलंस्मृतं ॥ ११०१ ॥ तेनमानेनस्थपतिः शयनादीन्प्रकल्पयेत् ॥ शताङ्गुलातुमहतीशय्यास्याच्चक्रवर्त्तिनां ॥ ११०२ ॥ अष्टांशहीनमस्यार्द्धंविस्तारंपरिकीर्त्तितं ॥ आयामस्त्र्यंशकोभागः पादोच्छ्रायः सकुक्षिकः ॥ ११०३ ॥ सामन्तानाञ्चभवति साषड्भातथैवच ॥ कुमाराणञ्चसाप्रोक्तादशोनाचैवमान्त्रिणाम्॥ १०४ ॥ त्रिषट्कोणाञ्चलेशानांविंशोनाचपुरोधसाम् ॥ षडंशहीनमस्यार्द्धंविस्तारम्परिकीर्तितम् ॥ १०५ ॥ आयामस्त्र्यंशकोभागस्त्र्यंशहीनस्तथैवहि ॥ पादोच्छ्रायश्च-कर्तव्यश्चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः क्रमात ॥ ११०६ ॥

यदि शय्या बनाना आरंभ करनेसे पहिले कटी हुई लकडी रक्खी हो तो उसके शकुनों की परिक्षा करके लेनी चाहिये श्वेतपुष्प, दंत, दधि, अक्षत, फल ॥ ११२० ॥ जलसे पूर्ण घट रत्न अन्य मांगलिक वस्तु देखकर संग्रह करै और अन्य शकुनोंकीभी परीक्षा करै और तुषरहित आठ जौ जिनके भीतर आजाय उसको अंगुल कहतेहैं ॥ २ ॥ उसी नापसे शय्या बनवाना उचित है सौ अंगुलकी शय्या बडी कहीहै वह चक्रवर्ती राजाओंकी होतीहै

आठ भागसे हीन जो इसका अर्द्धभागहै वह शय्याकी चौडाई कहीहै ॥ ३ ॥ और आयाम तीसरे भागका होताहै और पायोंकी उंचाई कुक्षि पर्यंत होतीहै वह शय्या सामंत राजा आदि और चतुर मनुष्योंकी होती है और उससे दस अंगुल कम कुमारोंकी होतीहै ॥ ४ ॥ और अठारह अंगुल कम पुरोहितोंकी कहीहै इससे छः भाग कम जो इसका अर्द्धभाग है वह चौडाई कहीहै ॥ ५ ॥ तीसरे अंशका जो भाग है वह आयाम होताहै अथवा तीसरे भागसे कम होता है और पादोंकी उंचाई चार तीन दो अंगुलोंके क्रमसे कही है अर्थात् इन अंगुलोंसे कम चतुर्थ भागकी उंचाईके पाये वनवावे ॥ ६ ॥

सर्वेषामेववर्णानांसार्द्धहस्तत्रयंभवेत् ॥ एकाशीत्यङ्गु-लैःकार्याशय्यादेवविनिर्मिता ॥ ७ ॥ अशनेरोगहर्त्ताचपि-त्तकृत्तिन्दुकोद्भवः॥ रिपुहाचन्दनमयोधर्मायुर्यशदायकः ८ शिंशिपावृक्षसम्भूतः समृद्धिङ्कुरुतेमहान् ॥ यस्तुपद्मकपर्य्य ङ्कोदीर्घमायुःश्रियंसुतम् ॥ वित्तम्बहुविधन्दत्तेशत्रुनाशन्तथै-वच ॥ ९॥ शालःकल्याणदःप्रोक्तःशाकेनरवितस्तथा ॥९॥ केवलञ्चन्दनेनैवानिर्मितंरत्नचित्रितं॥ सुवर्णगुप्तमध्यासभ्यं-ङ्कपूज्यतेसुरैःअनेनैवसमायुक्ताशिंशिपातिन्दुकीतिच॥ शुभा सनन्तथादेवदारुश्रीपर्णिनापिवा ॥ १० ॥ शुभदौशाकशा-लौतुपरस्परयुतौपृथक् ॥ तद्वत्पृथक्प्रशस्तौहिकदंबकहरिद्रकौ-॥ ११ ॥ सर्वकाष्ठेनरचितोनशुभः परिकल्पितः ॥ आम्रेण-वाप्राणहरश्चासनोदोषदायकः ॥ १११२ ॥

और संपूर्ण वर्णोंकी शय्या साढेतीन हाथ और इक्यासी अंगुलोंकी बन-वानी चाहिये इसे देवनिर्मित शय्या कहतेहैं ॥ ११०७॥ अशनकी शय्या रोग-हर्ता तिंदुककीशय्या पित्तकर्ता, चंदनकी शय्या शत्रुनाशक और धर्म आयुतथा यशको देतीहै ॥ ८ ॥ शीशमकी शय्या महान् समृद्धिको करती है और पद्मकका पलंग दीर्घ अवस्था लक्ष्मी पुत्र तथा अनेक प्रकार का धन देता है और शत्रुओंका नाश करताहैं ॥ ९ ॥ शाल कल्याण कारक हैं और शाक और सूर्यके वृक्षसे और केवल चंदनसे बनी हुई खाट जो रत्न जटितहो और जिसका मध्यभाग सुवर्णसे मढाहो उस की देवताभी पूजा

करते हैं और ॥ ११० ॥ इसकेही समान शिंशपा और तिंदुकी कही है और शुभासन देवदारु और श्रीपर्णी ये पूर्वोक्तकेही समान होते हैं और सब प्रकारके शाक और शाल शुभदायी होतेहैं ॥११॥ उसीतरह कदंब और हलदी भी उत्तम होते हैं और सब लकडियों से बनी हुई खाट शुभ नहीं है औरआम्रकी शय्या प्राणनाश है और असन दोषोंको करती है ॥ ११२ ॥

अनेनसहितोह्येष करोतिधनसंक्षयं ॥ आम्रेडुम्बरवृक्षाणाञ्चन्दनस्पन्दनाशुभा ॥ १११३ ॥ फलिनान्तुविशेषणफलदंशयनासनं ॥ गजदन्ताश्चसर्वेषांयोगेशुभफलाःस्मृताः ॥ १११४ ॥ प्रशस्तेनचदन्तेनकार्योलंकारमेतयोः ॥ दन्तस्यमूलपरिधीव्यायतंप्रोह्यकल्पयेत् ॥ १११४ ॥ शय्याफलकमूलेतुचिन्हञ्चासनकोणके ॥ न्यूनङ्किरिचराणान्तुकिंचित्किञ्चित्प्रशस्यते ॥ १११५ ॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानैश्चध्वजंछत्रञ्चचामरम् ॥ छेद्रदृष्टेतुह्यारोग्यंविजयन्धनवृद्धिदम् ॥१६॥

यदि अशन वृक्ष का काठ किसी दूसरे काठके संग में लगाया जाय तो धन की क्षणिता होतीहै और आम गूलरके वृक्ष और चन्दन और स्यंदन शुभ होते हैं और फलवाले वृक्षों के जो पर्यंक और आसनहैं वे विशेष फलदायक होते हैं ॥ १३ ॥ और हाथी के दांत सब योगों में शुभ फल के दाता हैं और उत्तम चंदन से इनको आभूषित करै और हाथी के दांत की जड़ को परिध के समान मुटाई करै ॥ १४ ॥ और खाट की पट्टियों के मूल में और आसन के कोण में चिन्ह होना चाहिये और जो किरिचर है उनमें भी यह चिन्ह श्रेष्ठ होता है ॥ १५ ॥और श्रीवृक्ष और वर्द्धमान वृक्ष इनकी ध्वजा छत्र चामर बनवावै. और उनमें छिद्र दृष्ट हो तो आरोग्य बिजय और धन की वृद्धि को देता है ॥ १११६ ॥

प्रहरणाभेजयोज्ञेयोनन्द्यावर्तेलभेन्महीम् ॥ लोष्टेतुलब्धपूर्वस्यदेशस्याप्तिर्भविष्यति ॥ १७॥ स्त्रीरूपेअर्थनाशःस्याद्भृङ्गराजेसुतस्यच ॥ लाभः कुंभेनिधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नञ्चदण्ड के ॥ १८ ॥ कृकलासभुजङ्गाभेदुर्भिक्षंवानरेणच ॥

गृध्रोलूकश्येनकाकसदृशोमकरोमहान् ॥ १९ ॥ पाशेवाथ कबन्धेवामृत्युर्जनविपद्भवेत् ॥ रक्तस्नुतेचकुणपेचशावेदुर्गन्धिवान्भवेत् ॥ ११२० ॥ शुक्लैःसमैःसुगन्धैश्चस्निग्धैश्छेदःशुभावहः ॥ अशुभाचशुभायेचछेदास्तेशयनेशुभाः ॥२१॥ ईशादिगोप्रदक्षिण्याप्रशस्तमथवातथा ॥ अपसव्येदिक्त्रये चभयम्भवतिभूतजम् ॥ ११२२ ॥ एकेनवाविशरणेवैकल्यं पादतःशुभम्॥द्वाभ्यांनतीर्यतेवातंत्रिचतुःक्लेशबन्धदौ११२३

यदि शस्त्रके समान चिन्ह हो तो विजय और गोल होय तो स्वामीकोपृथ्वी लाभ, होता है और लोष्ट् के समान हो तो पूर्व देश की प्राप्तिहोती है ॥ १७ ॥ स्त्री का रूप दीखे तो अर्थनाश और भांगरा दीखने से पुत्र लाभ होताहै, कुंभके दीखने पर निधि की प्राप्ति होतीहै और दंडकमें यात्रामें विघ्न होता है ॥ १८ ॥ किरकेंटा और भुजंग के सदृश वा वानर दीखै तो दुर्भिक्ष होता है गिद्ध, उलूक, शिकरा वा काक के समान तथा बड़े मगर के सदृश दिखाई दे ॥ ९१ ॥ अथवा पाशबद्ध वा कबंध दिखाई दे तो मृत्यु और विपत्ति का सूचक है रक्तस्राव वा मुर्दा दिखाई दे तो दुर्गंधवान् होता है ॥ २० ॥ और सफेद सुगंधित चिकने छेद दिखाई दे तो शुभ होता है अशुभ और शुभ जो छेद है वे शय्या में शुभदायी होते हैं ॥ २१ ॥ ईशान दिशाआदि में दाहिनी ओर से छेद होय तो श्रेष्ठ होता है और बांई से तीन दिशाओं में होंय तो भूत का भय होता है ॥ २२ ॥ एकवार के ही छेदन में विकलता पांव में होजाय तो शुभ होता है और दो विशरणों से पवन का तरना नहीं होता तीन चार विशरण क्लेश और बंध के दाता होते हैं ॥ २३ ॥

सुषिरेवाविवर्णेवाग्रन्थौपादोशरेतथा ॥ व्याधिः कुम्भेथवापादेग्रन्थिर्वदनरोगदा ॥ २४ ॥ कुम्भाद्यभागेजंघायांजंघारोगन्तथाभवेत् ॥ तस्याश्चाधोपदाधोवाद्रव्यनाशकरः परः ॥ २५ ॥ खुरदेशेयदाग्रन्थिः खुराणाम्पीडनंभवेत् ॥ शिशीर्षत्रित्रिभागसंस्थोपिनशुभप्रदः ॥ २६ ॥ निष्कुटञ्चार्थकीलाख्यंधृष्टिनेत्रञ्चवत्सकम् ॥ कोलकम्बंधुकञ्चैवसंक्षेपः छिद्रकस्यतु ॥ २७ ॥

छिद्र वा विवर्ण दीखै वा ग्रंथि वा शरपाद में दीखे तो रोग होता है कुंभ वा पाद में ग्रंथि होय तो मुख रोग होता है ॥ २४ ॥ कुंभ के प्रथम भाग वा जंघा में छिद्र होय तो रोग होता है उस के नीचे वा पाद के नीचे छिद्र होय तो परम रोग होता है ॥ २५ ॥ खुर के स्थान में ग्रंथि होय तो खुरों में पीडा होती है यदि शिर के तीन तीन भाग में गांठ होय तो शुभ फल दायक नहीं होता ॥ २६ ॥ निष्कुट, कोलाख्य, घृष्टिनेत्र, वत्सक, कोलक और बंधुक इतने प्रकार के छिद्र सामान्य रीति से होते हैं॥ २७ ॥

घटवत्सुषिरञ्चैवसङ्कटाख्यंचनिष्कुटम् ॥ छिद्रन्निःपावनीलञ्चकोलाख्यन्तद्बुधैःस्मृतम् ॥ २८ ॥ विषमंघृष्टिनयनम्वैवर्ण्यम्मध्यदीर्घकम् ॥ वामावर्त्तेचभिन्नंचयथावद्वत्सनाभकम् ॥ २९ ॥ कोलकङ्कृष्णवर्णञ्चबन्धुकंयद्द्विधा ॥ दारंसवर्णछिद्रंचतथापापम्प्रकीर्तितम् ॥ ११३० ॥

घड़े के सदृश छेदों को सङ्कट और निष्कुट कहते हैं. और जो छेद अपवित्र और नीले रंग का हो उसको कोलाख्य कहतेहैं ॥ २८ ॥ जो छिद्र विषम हो उसे घृष्टिनयन कहतेहै. और जो विवर्ण हो और जिसके पीछे का भाग दीर्घ हो और जो बांई ओरसे भिन्न हो उस छिद्रको वत्सनाभ कहतेहैं ॥ २९ ॥ जिसका वर्ण काला हो वह कोलक होता है और जो दो प्रकार का हो वह बन्धुक होता है और समान वर्ण जिसमें हो ऐसे छिद्र को दार और पाप भी कहतेहैं ॥ ११३०

निष्कुटेद्रव्यनाशःस्यात्कोलाख्येकुलनाशनम् ॥ शस्त्राद्भयंशूकरेचवत्सनाभङ्गदप्रदम् ॥ ३१ ॥ कालबन्धूकसंज्ञश्चकीटैर्वर्धनशोभनम् ॥ सर्वग्रन्थियुतंयच्चदारुसर्वत्रनोशुभम् ३२॥ एकद्रुमेणधान्यंस्याद्वृक्षद्वयाविनिर्मितम् ॥ धन्यंत्रिभिश्चपुत्राणांवृद्धिदम्परिकीर्तितम् ॥ ३३ ॥ अर्थंयशश्चतुर्भिश्चपञ्चत्वम्पञ्चभिः स्मृतम् ॥ षट्सप्तरचिते काष्ठेकुलनाशोभवेद्ध्रुवम् ॥ ११३४ ॥

निष्कुट में द्रव्यनाशक कोलाख्य में कुलनाशक शूकर में शास्त्रभय और वत्सनाभभंग कारक है ॥ ३१ ॥ काल बन्धूक नामक छिद्र कीड़ों को

बढाता है और शुभदायक होता है. और जो काठ गांठों से भराहुआ होता है वह सब कामोंमें शुभ नहीं होताहै ॥ ३२ ॥ एक वृक्ष की लकड़ी से धान्य होताहै और दो वृक्षोंके काठसे जो पलंग बनायाजाय वहधन्य होता है जिसमें तीन प्रकार के वृक्ष का काठ लगा हो वह पुत्रों की वृद्धि करता है ॥ ३३ ॥ और चार वृक्षों से धन और यश होता है पांच वृक्षों के काठ लगाने से मरण होता है और छः सात वृक्षके काठ से बनीहुई खाटमें निश्चय कुलका विध्वंस होता है ॥ ११३४ ॥

शिरोमूलञ्चवृक्षाणामग्रेपादाः प्रकीर्तिताः ॥ अनारण्ये- चन्दनेतुयतोमूलन्ततःशिरः ॥ ३५ ॥ इतिप्रोक्तम्मयाविप्राः शयनासनलक्षणम् ॥ भङ्गेचदोषाःकथिताःस्वामिनासहिते- नच ॥ ३६ ॥ पादभङ्गेमूलनाशमरणोधनसंक्षयः ॥ शीर्षेतु मरणंविद्यात्पादेहानिर्महान्भवेत् ॥ ११३७ ॥

वृक्षों के शिर और जड़ को क्रमसे अग्रभाग और पाद कहते है और अनारण्य चन्दन में तो जिस भाग में मूलहै उसी भागमें शिर होताहै ॥ ३५ ॥ यह शयन और आसन का लक्षण कहा गया है तथा स्वामिसहित भङ्ग के दोषों का वर्णन किया गयाहै ॥ ३६ ॥ पाद में भंग होय तो मूलका नाश होता है. अराणि होय तो धनका नाश होताहै शिर में होय तो मरण और पाद में छिद्र होय तो महान् हानि होती है ॥ ११३७ ॥

घण्टाकारंलिखेच्चक्रंरविधिष्ण्यक्रमेणच ॥ शुद्धेशुभेदिने- चैवकृत्वातांनिशिविन्यसेत् ॥ ३८ ॥ शयीतदक्षिणेगेहेसुस्व प्नंशुभदंभवेत् ॥ मुखैकंदिक्षुचत्वारित्रीणिचगुदकण्ठयोः ३९ एवञ्चक्रंसमालिख्यप्रवेशार्थंसदाबुधैः ॥ अग्निनाशोमुखेप्रो- क्तउद्वासः पूर्वतोभवेत् ॥ दक्षिणेचार्थलाभश्चपश्चिमेश्रीप्र- दोभवेत् ॥ ११४० ॥

घंटा के आकार का चक्र लिखे और उस पर सूर्य के नक्षत्रसे सब नक्षत्रों को क्रमसे लिखै और शुद्ध शुभ दिनमें उसे बनाकर रात्रि को रखकर ॥ ३८ ॥ दक्षिण की ओरके घरमें सोवै यदि निद्रा भवन में अच्छा स्वप्न दिखाईदे तो सुखदायी होता है और मुख में एक नक्षत्र और चारों दिशाओं में चार चार

और गुदा और कण्ठ में तीनं तीन लिखै ॥ ३९ ॥ प्रवेश के लिये बुद्धिमान् मनुष्य इस चक्र को भली प्रकार लिखै मुख के नक्षत्रोंमें प्रवेश होय तो अग्नि का नाश कहा है पूर्वके नक्षत्रों में उद्वास दक्षिणके नक्षत्रोंमें धनलाभ, पश्चिम के नक्षत्रों में लक्ष्मी प्राप्ति होती है ॥ ११४० ॥

उत्तरेकलहश्चैवगर्भेगर्भविनाशनम् ॥ स्थिरताचगुदेकण्ठे कलशस्यप्रकीर्तिता ॥ ४१ ॥ स्नातः शुचिर्निराहारोलङ्कारेणविभूषितः॥पुत्रदारसमायुक्तः सामात्यः सपुरोहितः ॥४२॥ गन्धपुष्पञ्चवस्त्रञ्चपरिधायपुनर्नवम् ॥ पुष्पमालान्वितङ्कायैरुचिरश्चित्रचित्रितम् ॥ प्राकारंम्वेष्टयेत्तत्रमालयापरिशोभितम् ॥ ११४३ ॥

उत्तर के नक्षत्रों में कलह और गर्भके नक्षत्रोंमें गर्भनाश होताहै कलशके अधो भाग और कंठमें स्थिरता कही है ॥४१॥ स्थान आदि से शुद्ध हो कर निराहार और भूषणोंसे भूषित अपने स्त्री पुत्र मंत्री और पुरोहितों को लेकर यजमान गंध पुष्प नवीन वस्त्र इनको धारण करै ॥ ४२ ॥ और फूलमालाओंसे युक्त रुचिर और चिन्हों से आभूषित प्राकार को माला से लपेटै ॥४३॥

वस्त्रेणाच्छादितम्मार्गङ्कृत्वाराजासुखासने ॥ निवेश्याग्रेतथाराज्ञींनिवेश्यविजितेन्द्रियः ॥ गीतोत्सवादिभिर्युक्तोगीतवाद्यादिसंयुतः ॥ ११४४ ॥ अग्रेसुपूर्णान्कलशान्विप्रान्वेदविशारदान् ॥ गायकान्गणिकाश्चापिसुवासिन्योविशेषतः ॥ ४५ ॥ व्यस्तैर्यात्रादिशकुनैर्द्वारमार्गेणभूपतिःवितानैस्तोरणैः पुष्पैः पताकाभिर्विशेषतः ॥ ४६ ॥ अलंकृत्यनवंगेहंदेहलींपूजयेत्ततः ॥ दिक्पालांश्चतथाक्षेत्रपालंग्रामपदेवतान् ॥ ११४७ ॥

मार्गमें कपड़ा बिछाकर राजा सुखदायी आसनपर बैठै और रानीको भी पहिले सुखासनपर बैठाकर जितेंद्रिय हो गीत, उत्सव, और बाजोंसेयुक्त अग्र भागमें जलसे भराहुआ कलश और वेदवित् ब्राह्मणोंको और गानेवाली और विशेषकर सुहागिनियोंको आगे करके पृथक् २ यात्रा आदिके शकुनों से राजा द्वारके मार्गसे वितान, तोरण, पुष्प और पताकाओंसे नवीन घरको

॥ ४६ ॥ भूषित करके फिर देहलीका पूजन करे फिर दिशाओंके स्वामी और क्षेत्रपाल और ग्रामके देवताओंका पूजन करे ॥ ४७ ॥

प्रणम्यविधिवत्पूज्यद्वारमार्गोविशेद्गृहम् ॥ पूजयेद्गणनाथञ्चमातृकाञ्चविशेषतः ॥ वसोर्धाराम्पातयित्वाग्रहांश्चैव तुपूजयेत् ॥४८॥ वास्तुनाथञ्चसंपूज्यब्राह्मणान्पूजयेत्ततः॥ दक्षिणाञ्चततोदद्याद्विद्वद्भ्योवित्तशक्तितः ॥ गोदानम्भूमिदानञ्चकारयेच्चयथाविधि ॥४९॥ पुरोहितञ्चदैवज्ञंस्थपतीन्परितोष्यच ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्चदद्याद्दानञ्चभोजनम् ॥ ११५० ॥

फिर विधिवत् प्रणाम करके द्वारकेमार्गसे घरमें प्रवेश करे और गणेशजी और षोडशमातृकाओंका विशेषकर पूजन करे और वसोर्धाराका पात कराकर ग्रहोंका पूजन करे॥ ४८ ॥ और वास्तुनाथका पूजन करके ब्राह्मणोंका पूजन करे फिर धनकी शक्तिके अनुसार विद्वानोंको दक्षिणा दे और गोदान, भूमिदान विधिवत् करे ॥ ४९ ॥ और पुरोहित तथा ज्योतिषी और स्थपति इनका यथार्थ संतोषकर के दीन अंध और कृपण इनको दान और भोजन दे ॥ ५० ॥

लिङ्गिनञ्चविशेषेणबन्धुवर्गञ्चपूजयेत ॥ दानमानैश्च तान्सर्वान्परितोष्ययथाविधि ॥ ५१ ॥ भोजयेद्बन्धुवर्गांश्च स्वयंभुञ्जीतवाग्यतः ॥ राजाचान्तः पुरोवध्वास्त्रीजनैश्चसमन्वितः ॥ ५२ ॥ भोजयेच्छक्तितश्चान्तःपुरस्थान्स्वजनांस्ततः ॥ विहरेच्चसुखंराजास्वावासेभार्ययान्वितः ॥ ५३ ॥ इतिश्रीवास्तुशास्त्रेगृहप्रवेशविधिप्रकरणेदशमोऽध्यायः॥१०॥

और सन्यासी तथा विशेषकर बंधुवर्गोंको पूजै और दान मानसे यथाविधि संतुष्ट करके ॥ ५१ ॥ बंधुवर्गोंको भोजन करावे और मौन होकर आप भोजन करै और राजा अंतःपुरमें बंधु और स्त्रीजनोंसहित भोजन करै ५२ ॥॥ और शक्तिके अनुसार अंतः पुरमें स्त्रियोंको फिर स्वजनोंको भोजन करावे फिर राजा अपने घरमें भार्या सहित सुखपूर्वक विहार करै ॥ ५३ ॥ इति वास्तुशास्त्रे गृहप्रवेशविधिप्रकरणे भाषाटीकायां दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

अथातःश्रृणुविप्रेन्द्रदुर्गाणाङ्करणन्तथा ॥ येनविज्ञानमात्रेणअबलःसबलोभवेत् ॥ ११५४ ॥ यस्याश्रयबलादेवराज्यं कुर्वन्तिभूतले ॥ विग्रहञ्चैवराज्ञान्तुसामान्यैःशत्रुभिस्सह ॥ ॥ ११५५ ॥ विषमन्दुर्गमंघोरंवक्रंभीरुंभयावहम् ॥ कपिशीर्षसमंचैवरौद्रादलकमन्दिरम् ॥ ११५६ ॥ स्थानंविचिन्त्यविषमन्तत्रदुर्गम्प्रकल्पयेत ॥प्रथमंमृन्मयम्प्रोक्तञ्जलकोटिन्द्वितीयकम् ॥ ५७ ॥ तृतीयंग्रामकोटञ्चचतुर्थङ्गिरिगह्वरम् ॥ पञ्चमम्पर्वतारोहंषष्ठङ्कोटञ्चडामरम् ॥ ५८ ॥ सप्तमंवक्रभूमिस्थंविषमाख्यन्तथाष्टमम् ॥ चतुरस्रंचतुर्द्वारंवर्तुलञ्चतथैवच ॥ ५९ ॥ दीर्घंद्वारन्द्वयाक्रान्तन्त्रिकोणमेकमार्गकम् ॥ वृत्तदीर्घञ्चतुर्द्वारमर्द्धचन्द्रन्तथैवच ॥ ११६० ॥

तदनन्तर दुर्गनिर्माण की विधिको कहता हूं ॥ ५४ ॥ और जिस दुर्गके आश्रयके बलसे ही भूतलमें राजा राज्य करते हैं और युद्धादिक भी सामान्य शत्रुओंके संग दुर्गके ही आश्रयसे होताहै ॥ ५५ ॥ विषम दुर्गम और घोर वक्र भीरु भयका दाता और वानरके शिरकी तुल्य समान रौद्र अलक मंदिर ॥ ५६ ॥ ऐसे स्थानको विचारकर उसमें विषमदुर्ग किले का पहिला परकोटा मिट्टीका कहाहै दूसरा कोट जलकी खाईका होताहै ॥ ५७ ॥ तीसरा ग्रामकोट होताहै चौथा गिरिगह्वर होताहै पांचवां पर्वतारोह होता है, छटा कोट डामर होताहै ॥ ५८ ॥ सातवां कोट वक्रभूमिमें होताहै आठवां कोट विषमहोताहै चौकोन, ॥ ५९ ॥ और दीर्घ जो दो द्वार उनसे आक्रांत हो और त्रिकोण हो और जिसका एक मार्गहो और गोल और दीर्घ जिसके चारद्वार हों और जो अर्द्धचंद्राकार हो ॥ ११६० ॥

गोस्तनञ्चचतुर्द्वारन्धानुषम्मार्गकण्टकम् ॥ पद्मपत्रनिभञ्चैवछत्राकारन्तथैवच ॥ ११६१ । दशप्रकाराणिमयाप्रोक्तानिद्विजपुंगव ॥ मृन्मयेखननान्द्भीतिंजलस्थेमोक्षबन्धनात् ॥ ॥ ६२ ॥ ग्रामदुर्गेऽग्निदाहाच्चप्रवेशाद्गह्वरस्यच ॥ पर्वतेस्थानभेदाञ्चडामरेभूबलाद्भयम् ॥ ६३ ॥ वक्राख्येकावियोगाच्च विषमेस्थायिनान्तथा ॥ बलाबलाद्यमपदम्पुनरन्यत्प्रवच्म्यहम् ॥ ११६४ ॥

गौस्तनके तुल्य जिसके चार द्वार हों और धनुषाकार और मार्गकंटक और पद्मपत्रके समान और छत्रके आकारके सदृश ॥ ६१ ॥ हे द्विजों में श्रेठ ये दशप्रकारके दुर्ग मैंने कहे मृन्मयदुर्गमें खोदने से भीति होतीहै और जलमें स्थित दुर्गमें मोक्षबंधनसे भय होताहै अर्थात् पुलके टूटनेका भय होताहै ॥ ६२ ॥ और ग्रामदुर्गमें अग्निके दाहसे और गह्वरमें प्रवेशका भय होताहै पर्वतमें स्थानके भेदसे और डामरमें भूमिके बलसे भय होताहै ॥ ६३ ॥ और वक्रनामके दुर्गमें वियोगसे और विषमदुर्गमें रहनेवाले राजाओंको भय होताहै और बल अबलसे मैं फिर यमपदको कहताहूं ॥ ११६४ ॥

अतिदुर्गङ्कालवर्णञ्चक्रावर्तंचाडिंबरम् ॥ नालावर्तश्चपद्माक्षंपक्षभेदश्चसर्वतः ॥ ११६५ ॥ कारयेत्प्रथमंराजापश्चाद्दुर्गं समाचरेत् ॥ प्राकारेविन्यसेदादौबाह्यस्थान्पूजयेत्ततः ।६६। परिखाश्चततःकृत्वातन्मध्येचततःपुनः ॥ सव्यापसव्यमार्गेण-भागन्तस्यप्रकल्पयेत् ।६७। गृहाणिबाह्यसंस्थानिकोणेकोणेषु विन्यसेत् ॥ कोणस्थान्बाह्यतोगेहान्विषमान्कारयेत्ततः ६८

अतिदुर्ग कालवर्ण, चक्रावर्त और डिंबर, नालावर्त और पद्माक्ष और चारोंओरसे पक्षभेद इनको ॥ ६५ ॥ प्रथम करवावै और फिर दुर्ग बनावै पहिले प्रकार बनावै फिर बाहर के स्थानका प्रारंभ करै ॥ ६६ ॥ और उस दुर्गकी खाई बनवाकर बांई और दाहिनी ओरसे उस दुर्गके मार्गकी कल्पना करै॥ ६७॥ और बाहिर की ओर स्थित जोघरहैं उनको कोण २ में बनवावै और बाह्यदेश में जो कोणोंमें स्थित घर हैं उनको विषम अर्थात् गमन के अयोग्य बनवावै ॥ ११६८ ॥

प्रतोलिम्पत्रकालाख्यां परिखाकालरूपिणीम् ॥ रणयंत्रंकृत्वायेयाच्छकलीयंत्रमंडितम् ॥ ११६९ ॥ मुशलैर्मुद्गरैःप्रासैर्यन्त्रैः खंगैर्धनुर्धरैः॥संयुतंसुभटैःशूरैःसंयुतानिचकारयेत् ७०
तन्मोक्षोत्रपुरानोहान्कोणेकोणेप्रदापयेत ॥ तद्बाह्योपरिखाकाराकालरूपासुविस्तरा ॥ ७१ ॥ समेप्रदेशमध्येतुमहागेहानि विन्यसेत् ॥ तत्रसंपूजयेद्वास्तुकोटपालन्तथैवच ॥ ७२ ॥ क्षेत्रपालञ्चविधिवत्पूर्ववत्तंप्रपूजयेत् ॥ एतद्विधानंसर्वेषुदुर्गेषु चविधानतः ॥ ११७३ ॥

पत्रकालाख्य परिखाकी ऐसी कालरूपिणी प्रतोली बनावे और उसमें शकलीयंत्रोंसे अर्थात् छिद्रोंसे युक्त सुशोभित यंत्र बनवाकर ॥ ६९ ॥ मुशल, मुद्गर, भास, यंत्र, खड्ग धनुर्धर इनसे युक्त बनवावे और शूरवीर जो योद्धा है उनसे संयुक्त करवावे ॥ ११७० ॥ और एक कौनेमें उन शस्त्रोंके चलानेके छिद्र बनवावे उसके बाहर की ओर परिखाका आकार बहुत चौड़ा बनवावै ॥ ७१ ॥ और बीचमें जो समभूमि हो उसमें बडे २ घर बनवावै उन घरोंमें वास्तु और कोटपाल का पूजन करै ॥ ७२ ॥ और विधिपूर्वक क्षेत्रपालका पूजनकरै यह विधि संपूर्ण दुर्गोंमें शास्त्रोक्तविधिसे की जातीहै।७३।

कारयेद्विषमेस्थानेपर्वतेचविशेषतः ॥ बाह्येचपरिखाकार्या प्राकारन्तस्यमध्यतः ॥ ७४ ॥ तन्मध्येचपुनर्भित्तिंभित्तिमध्ये गृहानपि ॥ गृहाणाम्मध्यभागेतुपरिखान्नैवकारयेत ॥ ७५ ॥ पूर्ववत्कोणभागेषुगृहान्विन्यस्यपूर्ववत ॥ त्रिपञ्चसप्तप्राकारा न्कारयेन्मध्यमध्यतः ॥ ७६ ॥ तन्मध्येतुमहापद्मंपूर्ववत्परिक ल्पयेत् ॥ तत्रैवस्थापयेद्वास्तुंकोटपालन्तथैवच ॥ ११७७ ॥

विषमस्थान पर्वत भूमिमें भी यही विधि करै और चारों ओर खाई बनवाकर बीचमें प्राकार बनवाना चाहिये ॥ ७४ ॥ और बीचमें भीत बनवाकर घरोंको बनवावै और घरके भीतर खाई बनवाना उचित नहींहै॥७५॥ पूर्वके समान कोणके भागमें पहिली रीतिसे घर बनवाकर मध्य २ में तीन पांच सात प्राकारोंको बनवावे ॥ ७६ ॥ और उनके बीचमें पूर्वके समान महापद्मकी रचना कर और उस महापद्मके मध्यमें वास्तुपुरुष और कोटपाल को स्थापन करै ॥ ७७ ॥

दीर्घेदीर्घगृहान्कुर्याद्वृत्तेवृत्तांस्त्रिकोणके ॥ त्रिकोणान्कार येद्धीमांस्वबुद्ध्यावातथैवच ॥ ७८ ॥ धानुषेधनुषाकारांगोस्त नेगोस्तनाकृतिम् ॥ त्रिकोणेछत्रखण्डेवाद्वारम्पातालतोभवेत् ॥ ७९ ॥ प्राकारस्थोधनुर्द्धारीसर्वत्रअबलोकने ॥ तथाभित्तिः प्रकर्तव्यासुदृढाविस्तराशुभा ॥ ८० ॥ एवम्मयाविनिर्दिष्टा न्कोटान्करोतुबुद्धिमान ॥ कोटस्थान्बाह्यभागस्थान्यः सर्वान वलोकते ॥ ११८१ ॥

दीर्घ दुर्गमें दीर्घ घर और गोलमें गोल घर और त्रिकोणमें त्रिकोण घर अपनी बुद्धिसे बनवाने चाहिये ॥ ७८ ॥ और धनुषाकार दुर्ग में धनुषाकार और गोस्तनके समान दुर्गमें गोस्थनीके आकार के घर बनवावै और त्रिकोण और छत्रखंडमें पाताल द्वार होते हैं ॥ ७९ ॥ ऐसी सुन्दर, दृढ और चौडी भीत बनवावै जिनके परकोटे पर बैठकर योद्धा लोग दूर दूर देख सकें इस प्रकार मेरे कहे हुए कोटोंको जो बुद्धिमान बनवाताहै वह कोटोंपर खडा होकर बाहरवाले सबको देख सकताहै ॥ ८१ ॥

तादृक्पुराणिसर्वाणिकारयेत्स्थपतिः क्रमात् ॥ अथातःसं प्रवक्ष्यामियदुक्तम्ब्रह्मयामले ॥ ८२ ॥ यदाकोटस्यनक्षत्रेस्वामिऋक्षेतथैवच॥गोचराष्टकभेदेनस्तंभानांभेदनेतथा ॥८३॥ पापाक्रान्तेमध्यकोटेजन्मर्क्षेग्रहदूषिते ॥ वज्रास्त्राग्न्यादिदोषे षतथाभूकम्पदूषिते ॥ ११८४ ॥

उन संपूर्ण पुरोंको राजा क्रमसे बनवावै इसके अनन्तर उसका वर्णन करताहूं जो ब्रह्मयामलमें कहा है ॥ ८२ ॥ जब कोटके नक्षत्रमें स्वामी का नक्षत्रहो और गोचराष्टकके भेदसे स्तंभोंके छेदनमें पूर्वोक्त नक्षत्र एकहो ॥८३॥ और मध्य कोटका नक्षत्र पापग्रह करके आक्रांतहो और जन्मका नक्षत्र ग्रहोंसे दूषितहो और वज्र, अस्त्र, अग्नि, आदिका दोष हो वा भूकंप से दूषित हो ॥ ८४ ॥

कोणभेराहुणायुक्तेग्रहणोत्पातदूषिते ॥ तत्रशान्तिः प्रकर्तव्यायथावद्विधिनोदिता ॥ ११८५ ॥ तत्पुरेमण्डपंकुर्यात्पताकाभिरलङ्कृतम् ॥ अष्टकुंभांस्तत्रकुर्यात्सर्वौषधिभिरन्वितान् ॥ ११८६ ॥ सर्वबीजैः पञ्चरत्नैस्तीर्थतोयैश्चपूरितान् ॥ भूमिञ्चावाहयेत्पूर्वेद्वितीयेनागनायकम् ॥ ८७ ॥ तृतीयेकोटपालञ्चस्वामिनञ्चचतुर्थके ॥ पञ्चमेवरुणञ्चैवषष्ठेरुद्रन्तथैवच ॥ ११८८ ॥

कोणका नक्षत्र राहुसे युक्त हो वा ग्रहण के उत्पातसे दूषित हो तो ऐसे समय में शास्त्रोक्त रीति से करनी चाहिये ॥ ८५॥ वहां पताकाओं से अलंकृत मंडप बनवावै और अष्ट कुंभोंको वहां सर्वौषधि से युक्त करके रक्खै ॥ ८६ ॥ सवबीज, पंचरत्न और तीर्थके जल उनमें करै प्रथम घटमें भूमिका आवाहन

करै दूसरे घटमें नागराजाका आवाहन करै ॥ ८७ ॥ तीसरेमें कोटपालका और चौथे घटमें स्वामीका आवाहन करे पांचवें में वरुणका, छटेमें रुद्रका आवाहन करै ॥ ८८ ॥

सप्तमेचण्डिकान्देवीम्मातृभिःसप्तभिर्युताम् ॥ अष्टमेसुरनाथञ्चतत्तन्मन्त्रैश्चपूजयेत् ॥ ८९ ॥ वास्तुपूजान्ततः कुर्याद्ग्रहमण्डलगान्ग्रहान् ॥ गन्धैः पुष्पैस्तथाधूपैर्दीपैःकर्पूरसंभवैः ॥ ९० ॥ नैवेद्यैश्चापिभूयिष्ठैःफेणिकैःपूरिकादिभिः ॥ शष्कुलीभिस्सखर्ज्जूरैर्लड्डुकैर्मोदकैस्तथा ॥९१॥ नानाविधैः फलैश्चापिविधिवत्तोषयेत्सुरान् ॥ द्वाराग्रेभैरवन्देवंविधिवत्पूजयेत्ततः ॥ ११९२ ॥

सातवें में सातमातृकाओंसे युक्त चंडिका देवीका, और आठवेंमें इंद्र का आवाहन करै और इन सबका उन २ के मंत्रोंसे पूजन करै ॥ ८९ ॥ फिर वास्तुपूजा करके ग्रहमंडलके मध्यमें जो ग्रह है उनका गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, कपूर ॥ ९० ॥ नैवेद्य, फैनी, पूरी, शष्कुली, खजूर, लड्डू और मोदक आदिसे इन का पूजनकरै ॥ ९१ ॥ और नाना प्रकारके फलोंसे विधिपूर्वक देवताओं को संतुष्ट करके द्वारके आगे विधिपूर्वक भैरव का पूजन करै ॥ ९२ ॥

दिक्पालान्पूजयेद्बाह्येक्षेत्रपालञ्चमध्यतः ॥ होमङ्कुर्याद्ग्रहाणान्तुस्वशाखोक्तविधानतः ॥ ९३ ॥ वास्तुहोमन्ततः कुर्याद्भूम्यादीनान्तथैवच ॥ भैरवीभैरवाःसिद्धिग्रहानागाउपग्रहाः ॥ ९४ ॥ भैरवस्यसमीपस्थांस्तान्सम्पूज्ययथाविधि ॥ क्षेत्रपालस्यमन्त्रेणहोमंकुर्याद्विधानतः ॥ ९५ ॥ होमान्तेपञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्ववीजैस्तथापिवा ॥ वास्तुहोमम्प्रकुर्वीतकोटपालस्यनामतः ॥ ११९६ ॥

बाह्यदेशमें दिक्पालों को तथा घर के बीचमें क्षेत्रपालको पूजै और अपनी शाखामें कही हुई विधिसे ग्रहोंके निमित्त होमकरै ॥ ९३ ॥ फिर वास्तुहोम करै और भूमि आदिकों के निमित्त होम करै और भैरवी भैरव सिद्धिग्रह नाग और उपग्रह ॥ ९४ ॥ जो भैरवके समीपमें स्थित हैं उनका यथाविधि पूजन

करके विधिसे क्षेत्रपालके मंत्रसे होम को करै ॥ ९५ ॥ और होम के अंतमें पांच बेलके वा बेलके बीजोंसे कोटपालके नामसे वास्तुहोम करै ॥ ९६ ॥

स्वमिनामस्यमन्त्रेणप्रणवाद्येनवैद्विज ॥ भूर्भुवः स्वरितिपूर्वेणपूजांवाहोममेवच । दुष्टग्रहाणाम्मन्त्रैश्चहुनेदष्टोत्तरंशतम् ॥ प्रत्येकञ्जुहुयाद्विद्वांस्तिलैर्वाथघृतेनवा ॥ ९७ ॥ उष्ट्रिमन्त्रंजपेन्मध्येसहस्रेणशतेनवा ॥ अष्टोत्तरंशतंहुत्वाबलिन्दद्यादतः परम् ॥ ९८ ॥ पूरिकायाबलिम्पूर्वेदक्षिणेकृशरन्ततः ॥ पश्चिमेपायसन्दद्यादुत्तरेघृतपायसम् ॥ ११९९ ॥

स्वामी के नामसे प्रणवादि से भूर्भुवः स्वः से पूजा वा होम करै और दुष्ट ग्रहों के मंत्रों से १०८ आहुति दे और प्रत्येक ग्रह के नाम से तिल व घृतसे होम करै ॥ ९७ ॥ और मध्य में एक सहस्र वा शत उष्ट्र मंत्र का जप करै. आर उससे १०८ आहुति देकर बलिदान करै ॥ ९८ ॥ पूर्व में पूरीकी बलि, दक्षिण में खिचड़ी की, पश्चिम में खीर की, और उत्तर में घी तथा खीर की बलि प्रदान करै ॥ ११९९ ॥

दिक्पालानाम्बलिञ्चैवक्षेत्रपालबलिन्ततः कोटपालबलिश्चैवकोटस्वामिबलिन्ततः ॥ १२०० ॥ पुरोपरिपशुन्दद्याद्द्वाराग्रेमहिषन्ततः ॥ यमश्लोकञ्जपेत्पूर्वंसहस्रस्यप्रमाणतः ॥ १ ॥ पूर्णान्दत्वाथविधिवत्स्वशक्त्यादक्षिणाचरेत । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाततःसिद्धिर्भविष्यति ॥ २ ॥ पुरकर्मततःकृत्वासन्ध्याकालेचनैर्ऋते ॥ बलिन्दद्याद्विधानेनमंत्रान्पूर्वोदितान्पठेत ॥ ३ ॥

प्रथम दिक्पालोंकी बलिदेकर फिरक्षेत्रपालकी बलि पीछे कोटपालकी बलि फिर कोटस्वामीकी बलि दे ॥ १२०० ॥ पुरके ऊपर पशुकी और द्वारके आगे भैसे की बली दे और एकसहस्र यमश्लोकको जपे ॥ १२०१ ॥ और विधि वत् पूर्णाहुति देकर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे फिर ब्राणह्मोंको भोजन करावै ऐसा करनेसे सिद्धि होती है ॥ १२०२ ॥ फिर पुरकर्म समाप्त करके संध्या के समय नैर्ऋतमें विधिपूर्वक बलिदे और पूर्वोक्त मंत्रोंको पढे ॥ १२०३ ॥

मांसोदनबलिञ्चैवमंत्रमेतदुदीरयेत ॥ ॐ ह्रीं सर्वे विघ्नानुत्सारयननननननमोहिनिस्तंभिनिममशत्रूंमोहयमोहयस्तंभयस्तंभयअस्य दुर्गस्य रक्षांकुरु कुरुस्वाहा० ॥ बलिन्दत्वाद्यनेनापिकृतकृत्योभवेन्नरः ॥ दुष्टऋक्षस्ययः स्वामी तन्मन्त्रेणचकारयेत् ॥ ४ ॥ खादिरस्यचकीलन्तुद्वादशांगुलमानतः ॥ मृत्युंजयेनमन्त्रेणअभिमंत्र्यसहस्रधा ॥ ५ ॥ स्थिरलग्नेस्थिरांशेचशुभलग्नेसुदिनेततः ॥ रोपयेद्दुर्गमध्येतु ततः सिद्धिर्भविष्यति ॥ ६ ॥

मांसओदनकी वालिदे ओर इस मंत्रको पढै ओंह्री सर्वे विघ्नान् उत्सारय न न न न न न मोहिनि स्तंभिनि मम शत्रून् मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय अस्य दुर्गस्य रक्षां कुरु २ स्वाहा और इस मंत्रसे भी बलि देकर मनुष्य कृतकृत्य होताहै और दुष्ट नक्षत्रका जो स्वामी है उसके मंत्रसेभी बली और होम करवावै ॥ ११०४ ॥ खैर की लकडी की बारह अंगुलकी कील लेकर उसका मत्युंजय मंत्रसे सहस्रवार अभिमंत्रण करके ॥ १२०५ ॥ स्थिर लग्न और स्थिरलग्नके नवांशकमें शुभ दिन और शुभलग्नमें दुर्गके बीच में रोपण करै ऐसा करनेसे सिद्धि हो जाती है ॥ १२०६ ॥

सर्वदासुखभागीचकोटपोभवतिध्रुवं ॥ उष्ट्रीमंत्रः ॐ ह्रीं उष्ट्रिविकृतदंष्ट्राननेत्रुंफट् ॥ ७॥ उष्ट्रिमंत्रंदशसहस्राणिजपित्वा घृतमधुनाण्डैः सहस्रमेकं जपेत् ततः सिद्धो भवति ८ यम श्लोकंद्वात्रिंशाक्षरंद्वात्रिंशत्सहस्राणि जपेत्ततःसिद्धोभवति।९ तथापूर्वविधिनाशतशतानिहोमयेत ततः सिद्धो भवति ९ तत्तत्सकलंकर्मकरोति १० द्वादशारंलिखेच्चक्रंवृत्तत्रयविभूषितं॥ उष्ट्रिमन्त्रश्चतद्वाह्येयमश्लोकौचमध्यतः ॥ ११ ॥ वज्रार्गलविधानन्तुकर्त्तव्यन्दुर्गलक्षणे ॥ भजनेयमराजाख्यमित्युक्तम्ब्रह्मयामले ॥ १२ ॥ मृत्युंजयमंत्रः ॐ जूंसः इति वास्तुशास्त्रेकोटवास्तौएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ऐसाकरनेसे कोटका स्वामी सदा सुखका भागी होताहै उष्ट्रीमंत्रयहहै ॐ उष्ट्रि विकृतदंष्ट्रानने त्रंफट् स्वाहा ॥ १२०७॥ इस उष्ट्रीमंत्रको दशसहस्र

जपकर घृत मधु पुष्पोंसे एकसहस्र मंत्रसे होमकरै फिर मंत्र सिद्धहोजाता है ॥ १२०८ ॥ और बत्तीस अक्षरवाले यमश्लोकको बत्तीस सहस्र जपै तो सिद्ध होजाता हैं ॥१२०९॥ इसीतरह पूर्वोक्तविधिसे शास्त्रोक्त मंत्रोंसे होमकरै तो सिद्धि होती है और उन सब को करता है ॥ १० ॥ जिस में बारह खडी लकीर हों ऐसा गोलकार बनावै उस के चारों ओर दो चक्र और उस मंत्र के बाहर उष्ट्रि मंत्र को और मध्य में यम के श्लोकों को लिखै ॥ ११ ॥ और दुर्गकी रक्षा के लिये वज्रार्गलविधान को करै और भजन करने में यमराजनामके विधान को करै यह ब्रह्मयामलमें कहा है ॥ १२ ॥ मृत्युंजयका मंत्र यह है " ओंजूंसः ,, इति वास्तु शास्त्रे भाषाटीकायां कोटवास्तौ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

परंप्रवक्ष्यामिशल्यज्ञानविधिंशृणु ॥ येनविज्ञानमात्रेण गृहेशः सुखमाप्नुयात् ॥ १२१३ ॥ गृहारंभेचकंडूतिःस्वाङ्गे यत्रप्रवर्तते ॥ शल्यमासादयेत्तत्रप्रासादेभवनेतथा ।१२१४। सशल्यंभयदंयस्मादल्पसिद्धिप्रदायकम् ॥ कारयित्वा नमस्कारंयजमानं परीक्षयेत् ॥ १५ ॥ यदङ्गंसंस्पृशेत्कर्तामस्तकंशल्य मुद्धरेत् ॥ अष्टतालादधस्तस्मिन्तत्रशल्यंनसंशयः ॥ १२१६

घर के प्रारंभ के समय अपने शरीर के जिस अवयव में (खुजली) चले प्रासाद और भवन में उसी स्थान में शल्य जाने ॥ १४ ॥ क्योंकि शल्य सहित घर भय कारक और अल्प सिद्धि का दाता होताहै इसलिये नमस्कार करवा कर यजमान की परीक्षा करे ॥१५॥ जिस मस्तक आदि अंग का स्पर्श यजमान करै उसके ही दुःखको दूर करै और आठ ताल की ध्वनि के भीतर नीचेके अंग का स्पर्श करै तो उस अंग में शल्य होता है इस में संशय नहीं ॥ १२१६ ॥

नासिकास्पर्शनेकर्तुर्वास्तोः शल्यन्तदल्पकं ॥ स्थितंविनिश्चितम्ब्रूयात्तल्लक्षणमथोच्यते ॥ १७ ॥ शिरसः स्पर्शनेवास्तोः सार्द्धहस्तादधः स्थितं ॥ मौक्तिकन्तुकरत्रेणमुखस्पर्शेतिदेहिनः ॥ १८ ॥ वाजिदंतंमहाशल्यमुद्धरेद्वास्तुतंत्रवित्॥ करस्पर्शेकरेवास्तोः खड्गाङ्गंचकरादधः ॥ १९ ॥ अथापरमपि ज्ञानङ्कथयामिसमासतःषड्गुणीकृतसूत्रेणशोधयेद्धरणीतले।२०।

नासिका के स्पर्श में कर्ता और वास्तुको अल्प दुःख होता है इस मर्य्यादा को समझ लेना चाहिये अब उस के लक्षण को कहते है ॥ १७ ॥ वास्तु के शिरका स्पर्श करै तो डेढ हाथ नीचे शल्य होता है यदि मौक्तिक का स्पर्श करै वा किसी देही के मुख का स्पर्श करै ॥ १२१८ ॥ तो वास्तु तंत्रज्ञ अश्वों के दांतों के दुःख को दूर करता है हाथ का स्पर्श करै तो वास्तु के हाथ में और खट्वा का स्पर्श करै तो कर से नीचे दुःख होता है ॥ १२१९ ॥ अब संक्षेप से अन्य बातों को कहता हूं कि छः गुने डोरे से पृथ्वी तल को शुद्ध करै ॥ १२२० ॥

सुधृतेसमयेतस्मिन्सूत्रङ्केनापिलंघितं ॥ तदस्थितत्रजानीयात्पुरुषस्यप्रमाणतः ॥१२१ ॥ आसक्तोदृश्यतेयस्मादिशंशल्यंसमादिशेत॥तस्यामेवतदस्थीनिसप्तत्यंगुलमानतः।२२। सूत्रितेसमयेयत्रआसनोपरिसंस्थितः ॥ तदस्थितत्रजानीयात्क्षितौक्षणेनसंशयः ॥ २३ ॥ नवकोष्ठीकृतेभूमिभागेप्राच्यादितोलिखेत् ॥ अकचटतपयशान्क्रमाद्वर्णानिमानिचः ॥ २४ ॥ प्रारंभः स्याद्यदिप्राच्यांनरशल्यंतदाभवेत् ॥ सार्द्धहस्तप्रमाणेनतच्चमानुष्यमृत्यवे ॥ २५ ॥ अग्नेर्दिशिचकः प्रश्नेखरशल्यंकरद्वयोः ॥ राजदंडोभवेत्तस्मिन्भयञ्चैवप्रवर्त्तते ॥ २६ ॥ याम्यांदिशिकृतेप्रश्नेनरशल्यमधोभवेत् तद्गृहस्वामिनोमृत्युङ्करोत्याकटिसंस्थितं ॥ ११२७ ॥

उस सूत्र के भली प्रकार धारणा करने के समय यदि कोई उस सूत्रका लंघन करै उसकाही अस्थि उस भूमि के भाग में समझना चाहिये ॥ १२२१ ॥ और जिस दिशा में आसक्त अस्थि दीखै उसी दिशा में शल्य को कहै और उसी दिशा में उस के अस्थि सत्तर अंगुल के प्रमाण से जानै ॥ १२२२ ॥ और सूत्र धारण के समयमें जहां आसन पर बैठा हुआ मनुष्य हो उस के ही अस्थि को वहां जानै इस में संशय नहीं है ॥ १२२३ ॥ नौ कोठे वाले भूमि को भागमें पूर्व आदि दिशाओं के क्रमसे अ क च ट त प य श इन वर्णों के क्रमसे लिखै ॥ १२२४ ॥ यदि पूर्व दिशा में प्रारंभ होय तो मनुष्य को दुःख होताहै वह डेढ़ हाथकेनीचे होता है और वह मनुष्यकी मृत्युका हेतु होता है ॥११२५॥ अग्निदिशाओंमें प्रश्न होय तो दोनों हाथ

में खर शल्य होता है और उसीमें राजदंड और भय होता है ॥ २६ ॥ दक्षिण दिशामें प्रश्न किया जाय तो नीचेके भागमें नरशल्य होता है और वह घरके स्वामीकी मृत्यु को कमर के भागतक करता है ॥ ११२७ ॥

नैर्ऋत्यान्दिशितःप्रश्नेसार्द्धहस्तादधस्तले ॥ शुनोस्थिजायतेतत्रडिंभानांजनयेन्मृतिम् ॥ २८ ॥ प्रश्नेचपश्चिमायान्तु शिवशल्यंप्रजायते ॥ सार्द्धहस्तेप्रवासायसदनंस्वामिनःपुनः ॥ २८ ॥ वायव्यांदिशितुप्रश्नेनराणां वाचतुष्करे ॥ शल्यंसमुद्धरेद्धीमान्करोतिमित्रनाशनम् ॥ ३० ॥ उत्तरस्यांदिशिप्रश्नेगर्दभास्थिनसंशयः ॥ सार्द्धहस्तचतुष्केचपशुनाशायतद्भवेत् ॥ १२३१ ॥

ई.	पू.	अ.
उ.	म.	द.
वा.	प.	नै.

नैर्ऋत्य दिशामें प्रश्न करै तो डेढ हाथ नीचे कुत्तेकी अस्थि होती है उसमें डिंभोंकी मृत्यु होतीहै ॥ १२२८ ॥ पश्चिम दिशामें प्रश्न होय तो शिव शल्य होताहै उसका प्रमाण भी डेढ हाथ होताहै और वह स्थान स्वामी के प्रवास का कारण होताहै ॥ १२२९ ॥ वायव्य दिशामें प्रश्न हो तो मनुष्योंके चतुष्करमें शल्य में शब्द होताहै इससे मित्रका नाश जाना जाताहै ॥ ३० ॥ उत्तर दिशामें प्रश्न होय तो साढे चार हाथ पर गर्दभके अस्थि को जानै और वह पशुओंके नाशको करताहै ॥ १२३१ ॥

ईशानदिशियःप्रश्नोगोशल्यंसार्द्धहस्ततः ॥ तच्चगोधननाशायजायतेगृहमेधिनः ॥ ३२ ॥ मध्यकोष्ठेचयःप्रश्नोवक्षोमात्रादधस्तदा॥ केशाःकपालंमर्त्यास्थिभस्मलोहेचमृत्यवे ।३३। मंत्रश्चॐह्रींकूष्मांडिकौमारिममहृदयेकथयकथयह्रींस्वाहा ॥ एकविंशतिवारमनेनमंत्रेणाभिमंत्र्यप्रश्नमानयेत् ॥ अत्रदिशः सूर्योदयाद्गणनीयाः

ईशान दिशामें प्रश्न होय तो डेढ हाथपर गौके शल्यको जानै और वह ग्रहस्थीके गोधन को नष्ट करताहै ॥ ३२ ॥ मध्यकोष्ठ में जो प्रश्न होय तो वक्षःस्थल पर्य्यन्त पृथ्वीके नीचे केश, कपाल, अस्थि, लोहा ये जानने और ये मृत्युके कर्ता होतेहैं ॥ ३३ ॥ मंत्र यहहै "ॐह्रींकूष्मांडि कौमारिमम हृदये कथय २ ह्रीं स्वाहा,, इक्कीस बार इस मंत्रसें अभिमंत्रित करके प्रश्न को लावै और इसमें सूर्योदयसे दिशा गिनना चाहिये ।

जलान्तंप्रस्तरांतंवापुरुषान्तमथापिवा ॥ ३४ ॥ क्षेत्रंसंशोध्यचोद्धृत्यशल्यंसदनमारभेत् ॥ शल्यानेकविधाःप्रोक्ताधातुकाष्ठास्थिसंभवाः ॥ ३५ ॥ तानपरीक्ष्यप्रकर्तव्योगृहारंभोद्विजोत्तम ॥ यदानजायतेशल्यंगृहारंभणकर्मणि ॥ ३६ ॥ फलपाकेनशल्यंतज्ज्ञातव्यंकर्मवेदिभिः ॥ सशल्येवास्तुसदनेपूर्वन्दुःस्वप्नदर्शनम् ॥ ३७ ॥ हानिर्वारोगमतुलंधननाशस्तथैवच ॥ अन्यानिवास्तुशल्यानिकथयामिसमासतः ।१२३८।

जलके निकालने वा प्रस्तर के अन्त पर्यंत वा पुरुष के प्रमाण तक ॥ ३४ ॥ पृथ्वी का शोधन करके शल्य को निकाल कर स्थान का प्रारम्भ करै और धातु काष्ठ अस्थि इनसे पैदा हुये शल्य अनेक प्रकार के कहे हैं । ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तम ! परीक्षा करके घर का प्रारम्भ करना उचित है. यदि घर के प्रारम्भ में शल्य न जाना जाय ॥ ३६ ॥ तो किसी काष्ट के होने पर शल्य को जानले क्योंकि शल्य वास्तुस्थान में पाहिले बुरा स्वप्न दिखाई देता है ॥ ३७ ॥ हानि वा अत्यन्त रोग और धनका नाश उस दुःस्वप्न से होता है अन्य भी वास्तुशल्यों को भी संक्षेप से कहताहूँ ॥ ११३८ ॥

सप्ताहाद्वासितेरात्रौगौर्वागोष्ठेथबन्धकी ॥ रोदन्तेवारुणोश्वोवाश्वानोवागृहमूर्द्धनि ॥ ३९ ॥ वन्योवाप्रविशेद्यस्यनिर्विशंकोथवामृगः ॥ श्येनोवाथकपोतोवाव्याघ्रोगोमायुवातथा४० गृध्रोवाप्यथवाकृष्णसर्पोवाथशुकोपिवा ॥ नरास्थीनिगृहीतश्चचाङ्गुलोवाथकारणात् ॥ १२४१ ॥ वज्रेणदूषितंयच्चयच्चवातान्निदूषितम् ॥ यक्षोवाराक्षसोवापिपिशाचोवातथैवच ।१२४२।

जिस घर में सात दिन तक रात्रि के समय में गौ शब्द करै वा गोष्ठ में बंधकी शब्द करै और जिसमें हाथी अश्व शब्द करैं वा घर के ऊपर श्वान शब्द करै ॥ ३९ ॥ अथवा जिस घर में वन का मृग निडर होकर घुस जाय वा श्येन कपोत व्याघ्र वा गीदड घुस जाय ॥ ४० ॥ गीध वा कालासर्प वा जङ्गली तोता मनुष्य अस्थि लेकर किसी हेतु से घुस जाय ॥ ४० ॥ और जो घर बज्र से दूषित हो पवन वा अग्नि से दूषित हो और यक्ष, राक्षस वा पिशाच घुस जाय ॥ ४२ ॥

काकोवाताडयतेरात्रौभूतोवापिगृहेथवा ॥ कलहश्चदिवारात्रौयोषितांयुद्धमेवच ॥ ४३ ॥ तत्रापिशल्यंजानीयाद्ये चान्येगृहदोषकाः॥ काष्ठेपिशल्यंजानीयाद्दारूणांव्यत्ययेतथा ॥ ४४ ॥ गोशल्येवान्यकल्येवाशल्योद्धारन्ततश्चरेत् ॥ वंशादीनाञ्चयच्छल्यंच्छल्यन्द्वारमार्गतः ॥ ४५ ॥ बाह्यवेधस्ययच्छल्यंतद्दोषञ्चविनाशयेत् ॥ तस्मादनेकशल्यानांज्ञानन्नास्तितदानरैः ॥ ४६ ॥

रात्रि के समय कौए वा भूत को ताडना दीजाय और जिस घर में रात दिन कलह वा युद्ध हो ॥ ४३ ॥ उस घरमें भी शल्य जानै और जो अन्य घर के दोष हैं उन में और काष्ठ के दीखने में भी और काष्ठोंके व्यत्यय में भी शल्यको जानै ॥ ४४ ॥ गौका वा अन्य शल्य जिस स्थान में हो वहां के शल्य को निकाले वंशआदि को शल्य और द्वारमार्ग के शल्य ॥४५॥ और बाह्यवेध के शल्योंको भी शल्योद्धार नष्ट करता है, क्योंकि अनेक प्रकार के शल्यों का ज्ञान मनुष्यों को नहीं हो सकता ॥ १२४६ ॥

अवश्यमेवकर्तव्यंशल्योद्धारंहितेप्सुभिः ॥ वास्तुपूजांच विधिवत्कारयेत्पूर्वकेदिने ॥ ४७ ॥ सुदिनेशुभनक्षत्रेचन्द्रताराबलान्विते ॥ शुद्धेकालेप्रकर्तव्यंशल्योद्धारंद्विजोत्तमैः ॥ ४८ ॥ शिलांकुर्यात्समांश्लक्ष्णांहस्तमात्रांदृढांशुभाम् ॥ चतुरस्रांत्रिभागेनपट्टिकाभिर्विनिर्मिताम् ॥ ४९ ॥ तावत्प्रमाणामाधारशिलांकृत्वाविधानवित् ॥ नन्दायांमस्तकंप्रोक्तं भद्रायांदक्षिणङ्करम् ॥ ५० ॥

हिताभिलाषियों को उचित है कि शल्योद्धार अवश्य करें। नन्दा में और पहिले दिन विधि से वास्तुपूजा को करै ॥ १२४७ ॥ सुन्दर दिन शुभ नक्षत्र और चन्द्र बल, तारा बल से युक्त शुद्ध काल में शल्योद्धारको करै ॥ ४८ ॥ समान चिकनी हाथ भर की दृढ शुभ चौकोंन और स्थान के त्रिभाग में वर्तमान और पट्टिकाओं से बनाई हो ऐसी शिला बनवावै ।४९। और उतने ही आधार शिला बनवावै उस के मस्तक और भद्रा में दक्षिण हाथ कहा है ॥ १२५० ॥

रिक्तावामकरेप्रोक्ताजयायांचरणौतथा ॥ नाभिदेशेतथा पूर्णासर्वाङ्गंवास्तुपूरुषम् ॥ ५१ ॥ सर्वदेवमयंपुंसांसर्वेषांशोभनंभवेत् ॥ तस्मान्मध्यप्रदेशेतुशिलैकांस्थापयेद्बुधः ।५२। गृहमध्येनाभिमात्रङ्कृत्वागर्तंसमंततः ॥ शिलामध्येलिखेद्यंत्रं स्वस्तिकाख्यंसुशोभनम् ॥ ५३ ॥ खनित्वास्थपतिस्तस्मिंस्त्रिभागान्कारयेद्बुधः ॥ तन्मध्येस्वस्तिकाकारांकारयेच्चसमन्ततः ॥ ५४ ॥

रिक्ता में उसका वांया हाथ, और जया में उस के चरण कहे हैं और नाभिदेश में पूर्णा जाननी और उसका संपूर्ण अंग वास्तुपुरुषरूप है ॥ ५१॥ संपूर्ण देवस्वरूप वास्तुपुरुष सब के लिये शुभफलदायक होता हैं उस के मध्यप्रदेश में एक शिला का स्थापन करै ॥ ५२ ॥ घर के बीच में नाभि तक गड्ढा खोदकर शिला के मध्य में स्वस्तिक नाम के शोभन यंत्र को लिखै ॥ ५३ ॥ और उस में बुद्धिमान् कारीगर तीन भाग कर के बीच में चारों ओर साथियों के आकारों को बनवावै ॥ ५४ ॥

ईशानादिचतुष्कोणेशिलांसम्पूज्यवेदवित् ॥ ईशानकोणे नन्दायाः पूजनञ्चैवकारयेत् ॥ ५५ ॥ आग्नेयकोणेभद्रायां नैऋत्येचजयांतथा ॥ रिक्तावायव्यदिक्कोणेपूर्णास्वस्तिकमध्यतः ॥ ५६ ॥ पूर्ववत्पूजयेत्तांतुक्रमेणैवविधानवित् ॥

ईशान आदि चारों कोनों में वेदका वेत्ता शिला को अच्छी तरह पूज कर ईशान कोण में नंदा के पूजन को करै ॥ ५५ ॥ और अग्निकोण में नन्दा का और नैर्ऋत्य कोण में जया का और वायव्यकोण में रिक्ता का और स्वस्तिक के मध्य में पूर्णा का पूजन करै ॥ ५६ ॥ और क्रिया कुशल आचार्य उसका पहिले की तरह पूजन करै ॥

चतुराशिपलंकुम्भंताम्रोद्भूतंदृढंशुभम् ॥ ५७ ॥ हस्तमात्रंभवेद्गर्भंशुद्धंस्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ कण्ठंरसाङ्गुलन्तस्य पिहितंवसुवर्चसम् ॥ १२५८ ॥

चार राशि पलका तांबे का दृढ कलश ॥ ५७ ॥ जिस का उदर हाथ भर का हो शुद्ध हो और चार अंगुल जिस का मुख हो और छः अंगुल कंठ हो और ढकाहुआ हो और भली प्रकार तेजस्वी हो ॥ ५८ ॥

अष्टौकुम्भाश्चहिः स्थाप्याः पूरयेद्भोजनौषधैः ॥ दिक्ष्वष्ट
सुक्रमेणैवदिक्पालानांचमंत्रकैः ॥ १२५९ ॥ तीर्थतोयेनसं
पूर्यतथापञ्चनदीजलैः ॥ पञ्चरत्नैर्युतंतच्चसफलैर्बीजपूरकैः
॥६०॥कुंकुमञ्चन्दनश्चैवकस्तूरीरोचनातथा ॥ कर्पूरन्देवदा
रुञ्चपद्माख्यंसुरभिस्तथा ॥६१॥ अष्टगन्धन्तथान्यानिगन्धा
न्यस्मिन्विनिःक्षिपेत्॥वृषशृङ्गोद्भवासिंहनखोद्भूतातथैवच६२
वाराहवारणरदेलग्नाश्चाष्टमृदस्तथा ॥ देवालयद्वारमृदः पञ्च
गव्यंसमंत्रितम् ॥ ६३ ॥ पञ्चामृतन्तथापञ्चपल्लवान्पञ्च
वात्वचः ॥ काषायान्पञ्चवातस्मिन्कलशेतुविनिःक्षिपेत ।
॥ ६४ ॥ त्रिमधुश्चतथासप्तधान्यान्पारदसंवृतान् ॥ तत्रा
वाह्यगणेशादीन्लोकपालांस्तथैवच ॥ १२६५ ॥

ऐसे घटको बीचमें स्थापित करके उसके बाहरकी ओर आठ घटोंको स्थापन करै उन घटोंको खाद्य पदार्थ और औषधोंसे भरै और उन आठों घटोंको क्रमसे आठों दिशाओंमें दिक्पालोंके मंत्रोंसे स्थापन करै ॥१२५९॥ फिर उनमें तीर्थका जल तथा पांच नादियोंका जल भरके पंचरत्न, फल और बिजौरा रक्खै ॥ ६० ॥ और कुंकुम, चंदन, कस्तूरी, गोरोचन, कपूर, देवदारु, पद्म और अन्य सुगंधित द्रव्य ॥६१॥ अष्टगंध और औरभी सौगंधिक पदार्थ उस घटमें भरै और बैलके सींग वा सिंहके नखोंसे खोदीहुई मिट्टी ॥ ६२ ॥ और वाराह और हाथीके दांतोंकी लगीहुई मिट्टी, तथा अन्य आठ प्रकारकी मिट्टी और देवालयके द्वारकी मिट्टी और मंत्र पढेहुये पंचगव्यको ॥ ६३ ॥ और पंचामृत पंचपल्लव, पंच वल्कल, और पांच कषाय इन सबको उस कलसमें भरदे ॥ १४ ॥ तीन मधु और सप्तधान्य जो पारेसे युक्तहों उन कोभी डालै उसमें गणेश आदि देवता और लोकपालोंका आवाहन करै॥६५।

वरुणञ्चग्रहेस्थाप्यरायकन्नागनायकम् ॥ आवाह्यवेदम
न्त्रैश्चपूर्वोक्तेनविधानतः ॥ १२६६ ॥ आगमोक्तैश्चमन्त्रैश्च
मन्त्रैः पुराणसम्भवैः ॥ गायत्र्याष्टशतेनैवव्याहृत्याष्टशतेन
वा ॥ ६७ ॥ त्रीणिपदेतिशतधातद्विप्रासइतिवातथा ॥ अ
तोदेवाइतितथादिव्यमन्त्रैः शतत्रयम् ॥ ६८ ॥ हुत्वाग्नौवि

धिवद्भिप्रावास्तुहोमन्ततश्चरेत् ॥ अष्टाधिकन्तथाहोमंगृहहोमन्तथैवच ॥ १२६९ ॥

फिर घरमें वरुणको स्थापनकर नागनायक श्रीशेषजी की स्थापना करै और पूर्वोक्त विधिसे वेदोक्त मंत्रोंद्वारा आवाहन करके ॥ ६६ ॥ आगमोक्त तथा पुराणोक्त मंत्रोंसे और आठसौ गायत्रीसे और ८०० व्याहृतियों से ॥ ६७ ॥ और सौवार त्रीणिपदानि० इसमंत्रसे वा सौवार तद्विप्रासो० इसमंत्र और अहोदेवा यह जो दिव्यमंत्रहै इससे तीनसौ वार ॥ ६८ ॥ विधिसे पूर्वक्त होम करके उसके अन्यदेवताओंके निमित्त वास्तुहोम करै और १०८ आहुति तथा उसीतरह गृहहोम करै ॥ १२६९ ॥

गणपत्यादिमंलोकपालादीनांहोममाचरेत ॥ दिक्पालानान्तथाक्षेत्रपालस्यापिविशेषतः ॥ ७० ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानांहोममन्त्रञ्चकारयेत ॥ सुलग्नेसुमुहूर्तेतुशिलास्थापनमाचरेत् ॥ ७१ ॥ तत्पश्चिमेमहादीपंमहाकुंभंशिरोपरि ॥ स्थापयेत्पूर्वभागेचशल्यमंत्रानुदीरयेत् ॥ ७२ ॥ नन्देनन्दयवासिष्ठेवसुभिश्चाहितप्रजे ॥ तिष्ठाप्यस्मिन्गृहान्तेत्वंसर्वदासुखदाभव ॥ १२७३ ॥

प्रथम गणपतिके निमित्त होम करके लोकपाल दिक्पाल और विशेषकर क्षेत्रपालके निमित्त होम करै ॥ १२७० ॥ और दिव्य अंतरिक्ष भूमि इनके भी होम मंत्रोंसे होमकरै फिर शुभ लग्न मुहूर्तमें शिला स्थापन करै ॥ ७१ ॥ उसके पश्चिमभागमें महाकुंभके शिरके ऊपर बडा दीपक रक्खै पूर्वभागमें शल्यके मंत्र पढै ॥ ७२ ॥ हे नंदे ! तू आनंद कर, हेवासिष्ठे ! हेप्रजाके हितकारिणि ! इसघरमें तू निवासकर और सदा सुखकी दाता हो ॥ १२७३ ॥

भद्रेत्वम्भद्रदापुंसाङ्कुरुकाश्यपनान्दिनि ॥ आयुरारोग्यमतुलंसर्वशल्यान्निवारय ॥ ७४ ॥ जयेभार्गवदायादेप्रजानांहितमावह ॥ स्थापयाम्यत्रदेवित्वांसर्वाञ्छल्यान्निवारय ॥ ७५ ॥ रिक्तेत्वंरिक्तदोषघ्नेसिद्धिदेसुखदेशुभे ॥ सर्वदासर्वदोषघ्नेतिष्ठास्मिन्नत्रिनन्दिनि ॥ ७६ ॥ अव्यङ्गेचाक्षतेपूर्णेमुनेराङ्गिरसः सुते ॥ इष्टकेत्वम्प्रयच्छेष्टंशुभञ्चगृहिणांकुरु ॥ ७७ ॥

हे भद्रे हे काश्यपिनंदिनि, तू पुरुषों को कल्याण दे और अतुल आयु तथा आरोग्य कर और संपूर्ण शल्यों को दूरकर ॥ ७४ ॥ हे जये तू भार्गव की पुत्री है इससे प्रजा के हितको कर, हे देवी तुमारी यहां स्थापना करताहूं तू संपूर्ण शल्यों को दूर कर ॥ १२७५ ॥ हे रिक्ते ! तू रिक्त दोष को नाशकरनेवाली है, हे सिद्धिकी दाता, हे सुखदाता, हे शुभे, हे सवकाल में सबदोषोंकी नाशक, हे अत्रिनंदिनी तू इस घर में रह ॥ १२७६ ॥ हे अव्यंगे, हे अक्षते, हे पूर्णे, हे अंगिरा सुते, हे इष्टके तू मनोकामना पूरी कर और गृहस्थियों का कल्याण कर ॥ १२७७ ॥

ताम्रकुंभञ्चनिःक्षिप्याशिलांद्वीपंतथैवच ॥ गीतवादित्रनिर्घोषंकृत्वातम्पूरयेन्मृदा ॥ ७८ ॥ हृदिकृत्वाशिलाकुंभंमन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ वास्तुपुरुषनमस्तेस्तुभूमिशय्यारतप्रभो ॥ ७९ ॥ मद्गृहंधनधान्यादिसमृद्धंकुरुसर्वदा ॥ नागनाथनमस्तेस्तुशल्यमुद्धरणेक्षम ॥ ८० ॥

ऐसाकरके ताम्रकलश को गर्तमें डाल शिला द्वीपकाभी उसीमें डालदे गीत और बाजके शब्द करके उस गर्त को मिट्टीसे भरदे ॥ १२७८ ॥ और शिला कुंभको हृदय में लगाकर इनमंत्रों का उच्चारण करै हे वास्तु पुरुष, हे भूमिशय्यामें रमण कर्ता, हे प्रभो, आपको नमस्कार है ॥ १२७९ ॥ मेरे घरको धनधान्यादि से पूर्ण करो, हे नागनाथ, हे शल्य के उद्धार करने में समर्थ आपको नमस्कार है ॥ १२८० ॥

वास्तुरूपोविश्वधारीप्रजानांहितमावह ॥ पृथ्वीत्वयाधृतालोकादेवित्वंविष्णुनाधृता ॥ त्वञ्चधारयमान्देविपवित्रङ्कुरुवासनम् ॥ ८१ ॥ गणपत्यादयोलोकादेवादिक्पालकास्तथा ॥ सायुधाः सगणोपेताः शुद्धंकुर्वन्तुमेगृहम् ॥ ८२ ॥ इतिमन्त्रान्पठित्वातुदद्याद्वाह्यबलिन्ततः ॥ राक्षसानाम्पिशाचानांगुह्यकोरगपक्षिणाम् ॥ ८३ ॥ भूतानाञ्चतथायक्षगणानांग्रामवासिनाम् ॥ पूर्वोक्तैरागमैर्मन्त्रैर्विधानेनविधानवित् ॥ ८४ ॥ गृह्णन्तुबलयः सर्वेतृप्ताःशल्यंहरन्तुमे ॥ कुम्भाष्टकानान्तुजलैस्तद्गृहंचाभिषिंचयेत् ॥८५॥

भेदत्रयन्तथोत्पाताग्रहपीडाश्चदारुणाः ॥ तेसर्वेनाशमायान्तु-शल्योद्धारेकृतेगृहे ॥ १२८६ ॥

तू वास्तुरूप है और विश्वका धारण करनेवाला है इससे प्रजाओं की हितकर पृथ्वी तू लोकोंको धारण करती है और हे देवि तुझे विष्णुने धारण किया है और हे देवि तू मुझे धारण कर और आसन को भी पवित्र कर ॥ १२८१ ॥ गणपति आदि लोक, और देवता और दिक्पाल ये सब सशस्त्र अपने अपने गणों सहित मेरे घरको शुद्धकरो ॥ १२८२ ॥ इन मंत्रों को पढकर राक्षस, पिशाच गुह्यक, उरग, पक्षी ॥ १२८३ ॥ भूतों, यक्षोंके गण और ग्रामवासी देवताओं को विधिपूर्वक पूर्वोक्त आगम मंत्रों से उक्त बलि दे ॥ १२८४ ॥ और यह कहै कि देवताओ बलिको ग्रहण करो और तृप्त होकर मेरे शल्य को हरो और आठों कुंभों के जलसे उस घर को छिडके ॥ १२८५ ॥ तीन प्रकार के भेद, उत्पात और दारुण ग्रहके उत्पात ये सब उस घरमें नष्ट होजाते हैं जिसमें शल्यका उद्धार कियाजाताहै ॥ १२८६ ॥

आचार्यायचगान्दद्यादृत्विग्भ्योदक्षिणान्तथा ॥ दानमानेनसंतोष्यदैवज्ञंस्थपतिन्तथा ॥ ८७ ॥ अन्यांश्चविधिवत्पूज्यदक्षिणाभिःस्वशक्तितः॥ दीनान्धकृपणेभ्योपिलिङ्गिभ्योपिविशेषतः ॥८८॥ गायकेभ्यस्तथान्येभ्योनटेभ्योदक्षिणान्ततः दद्यात्स्ववेश्मनियथाशक्त्याविप्रांश्चभोजयेत ॥८९॥ भुञ्जीतबन्धुभिस्सार्द्धंविहरेच्चसुखंततः ॥ एवंयःकुरुतेविप्राः शल्योद्धारंस्ववेश्मनि ॥ ९० ॥ सुखवान्दीर्घजीवीस्यात्पुत्रान्पौत्रांश्चविन्दति ॥ ९१ ॥ इतिवास्तुशास्त्रेशल्योद्धारनिर्णयोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

आचार्यों को गौ और ऋत्विजों का दक्षिणा दे और दान मानसै ज्योतिषी और स्थापतिको संतुष्ट करके ॥ १२८७ ॥ औरों को भी अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देवै तथा दीन, अंधे कृपण और विशेषकर ब्रह्मचारी वा संन्यासी और ॥ १२८८ ॥ गायक अन्य नट आदिकोंको दक्षिणादे और अपनी शक्तिके अनुसार अपने घरमें ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १२८९ ॥फिर बंधुओंके संग स्वयं भोजन करै और उस मंदिरमें सुख-

विहार करै हे ब्राह्मणों इसतरह जो मनुष्य अपने घरमें शल्योद्धार करता है ॥ १२९० ॥ वह सुखका भागी और दीर्घ जीवी होता है और पुत्र और पौत्रोंको प्राप्त होता है ॥ १२९१ ॥ इति वास्तुशास्त्रे भाषाटीकायां शल्योद्धार निर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अतःपरम्प्रवक्ष्यामिगृहाणाम्वेधनिर्णयं ॥ अन्धकंरुधिरञ्चैवकुब्जङ्काणंवधीरकं ॥९२॥ दिग्वक्रञ्चिपिटञ्चैव्यङ्गजंमुरजन्तथाकुटिलङ्कुट्टकञ्चैवसुप्तञ्चशङ्खपालकं ।९३। विकटञ्चतथाकङ्कङ्कैकरंषोडशस्मृतं ॥ अंधकञ्छिद्रहीनञ्चविच्छिद्रंदिशिकाणकं ॥ ९४ ॥ हीनाङ्गङ्कुब्जकञ्चैवपृथ्वीद्वारंबधीरकम् ॥ रन्ध्रम्विकीर्णन्दिग्वक्रंरुधिरञ्चाविपद्गतम् ॥ १२९५ ॥

अब गृहोंके वेधनिर्णयको कहताहूं अंधक, रुधिर, कुब्ज काण विधिर ॥ १२९२ ॥ दिग्वक्र चिपिट व्यंगज मुरज कुटिल कुट्टक सुप्त शंखपालक ॥ १२९३ ॥ विकट कैंक और कैंकर यहपूर्वोक्त सोलहप्रकारका वेध स्थानोंमें होता है जो घर छिद्रों से हीन उसमें अंधक भेद होता है और जो विच्छिद्र दिशाओंमें हो वह काण होता है ॥ १२९४ ॥ अंगहीन को कुब्जक और पृथिवीमें द्वार वाले को बंधिर कहते है जिसमें इधर उधर बिखरेहुए छिद्रहों उसे दिग्वक्र कहते हें ॥ १२९५ ॥

तुङ्गहीनञ्चाचिपिटम्व्यङ्गंचानर्थदर्शनं ॥ पार्श्वोन्नतञ्चमुरजङ्कुटिलन्तालहीनकं ॥ ९६ ॥ शङ्खपालञ्जङ्घहीनन्दिग्वक्रम्विकटंस्मृतं ॥ पार्श्वहीनन्तथाकङ्कङ्कैकरंचहलोन्नतं ॥ १२९७ ॥ इत्येतेअधमाः प्रोक्तावर्जनीयाः प्रयत्नतः । अन्धकेरोगमतुलंरुधिरेऽतीसारजंभयं ॥ ९८ ॥ कुब्जेकुष्ठादिरोगस्यात्काणेंधत्वंप्रजयते ॥ पृथ्वीद्वारेसर्वदुःखंमरणम्वाप्रजायते ॥ १२९९ ॥

जिसमें ऊंचाई नहो वह चिपिट होता है और जिसमें अनर्थ दिखाईदे उसे व्यंग कहते हैं और जो इधर उधर ऊंचा हो वहमुरजहोता है और जो तालसे हीन हो वह कुटिल होता है ॥ १२९६ ॥ जंघासे हीन को शंखपाल

टेढे को विकट कहते है पार्श्वभागजिसमें नहो उसे कंक कहते है और जो हलकेसमान ऊंचा हो उसे कैंकर कहते हे ॥ १२९७ ॥ ये पूर्वोक्त घर अधम होते है इनको त्याग देना उचितहै अंधकघरमें अतुल रोग और रुधिर नामके घरमें अतीसार रोगका भय होता है ॥ १२९८ ॥ कुब्जघरमें कुष्ठ आदि रोग होते हैं और काणे घर में अंधे मनुष्य पैदा होते हैं और पृथ्वी द्वार में दुःख वा मरण होता है ॥२९९

दिग्वक्रेगर्भनाशः स्याच्चिपिटेनीचसङ्गतिः ॥ व्यङ्गेचव्यङ्गता-नैःस्वंमुरजेकुटिलेक्षयः ॥ १३०० ॥कुट्टकेभूतदोषः स्यात्सुप्तेगृहपतेःक्षयः ॥ शङ्खपालेकुरूपंस्याद्विकटेपत्यनाशनं ॥ १३०१ ॥ कङ्कैशून्यङ्कैकरेचस्त्रीहानिः प्रैष्यताभवेत् ॥

दिग्वक्र में गर्भनाश, चिपिट में नीचों की संगति, व्यंगघर में व्यंगता, मुरज में धनका अभाव और कुटिल में क्षय होता है ॥ १३०० ॥ कुट्टक में भूतदोष सुप्त में स्वामी का मरण, शंखपाल में कुत्सित रूप और विकट में संतान का नाश होताहै ॥ १३०१ ॥ कङ्कमें शून्यता, कैंकरमें स्त्री की हानि और दासत्व होता है ॥

कुलिशेनाहतेदारोर्गृहान्तस्थेमृतिर्भवेत् ॥ १३०२ ॥ वह्निदग्धेनिर्धनत्वमपत्यादिक्षयोभवेत् ॥ विरूपाजर्जराजीर्णाअग्रहीनार्द्धदग्धिताः ॥ १३०३ ॥ अङ्गहीनाछिद्रहीनाछिद्रयुक्ताश्चवर्जयेत ॥ वक्रेचपरदेशः स्याच्छुष्कार्द्धेस्वामिनोभयम् ॥ १३०४ ॥ व्यङ्गेरोगभयंघोरंसर्वच्छिद्रेमरणंभयम् ॥ पाषाणान्तर्गतङ्गेहंशुभंसौख्यंविवर्द्धनम् ॥ १३०५ ॥ गेहमध्यस्थितंयच्चसर्वदोषकरंभवेत् ॥ विस्तीर्णमानंयद्गेहन्तदूर्ध्वं परिकीर्तितम् ॥ १३०६ ॥ शेषाश्चैवत्रिभागन्तुतद्गृहञ्चोत्तमंस्मृतम् तुङ्गमूनाधिकंरोगभयङ्करोतिविस्मृतम् ।१३०७।
त्रिकोणन्निधनंशीघ्रंगृहन्दीर्घन्निरर्थकम् ॥

घरके भीतर जो बिजली से टूटा हुआ काठ लगाहो तो मृत्यु होती है ॥ १३०२ ॥ अग्निदग्ध काष्ठ घरमें लागहो तो निर्धनता और संतानका नाश होता है ; कुरूप, जर्जर, जीर्ण, अग्रहीन, अर्द्धदग्ध, ॥ ३ ॥ अंगहीन

छिद्रहीन और छिद्रयुक्तको काममें लानाचाहिये और टेढाकाठ होय तो परदेश में वास होताहै और अर्द्धशुष्क में स्वामी से भय होताहै ॥ ४ ॥ व्यंग में घोर रोगका भय सर्वाछिद्रमें मृत्युका भय होता है और पत्थरों के बीचका घर शुभदायक और सुखवर्द्धक होता है ॥ ५ ॥ और घरके बीचमें लगा हुआ पत्थर संपूर्ण दोषोंको करता है और विस्तीर्णमान घर ऊर्द्ध कहलाता है॥६॥ जिसकी उंचाई लंबाई से तिहाई हो वह घर उत्तम कहा है और इससे न्यून वा अधिक जिसकी उंचाई हो वह विस्तार रोग भयको करता है ॥ ७ ॥ त्रिकोण घर शीघ्रही धनसे हीन होताहै और लंबा घर निरर्थक होताहै ॥

अथान्यान्दशवेधांश्चकथयामिबहिः स्थितान् ॥ ०८ ॥ कोणदृक्छिद्रद्दक्छायाऋतुवंशाग्रभूमिकाः ॥ संघातदंतयोश्चैवभेदाश्चदशधास्मृताः ॥ १३०९ ॥ कोणाग्रेवान्यगेहेच कोणात्कोणान्तरंपुरः ॥ तथागृहार्द्धसंलग्नंकोणंनशुभदंस्मृतम् ॥ १३१० ॥ कोणवेधेभवेद्व्याधिर्धननाशोरिविग्रहम् ॥ एकम्प्रधानद्वारस्याभिमुखेन्यच्चप्रधानकम् ॥१३११ ॥ द्वारं गृहाच्चद्विगुणंताद्दग्वेधंप्रचक्षते ॥ दृष्टिवेधेभवेन्नाशोधनस्यमरणन्ध्रुवम् ॥ १३१२ ॥ समक्षुद्रंक्षुद्रवेधेपशुहानिकरंपरम् ॥ द्वितीयेतृतीयेयामेछायायत्रपतेद्गृहे ॥ १३१३ ॥ छायावेधन्तुतद्गेहंरोगदंपशुहानिदम् ॥ आदौपूर्वोत्तरापंक्तिः पश्चाद्दक्षिणपाश्चिमे ॥ १३१४ ॥ वास्त्वन्तरेभित्तिसमंशुभदं तत्प्रकीर्तितम् ॥ विषमेदोषबहुलमृतुवेधम्प्रजायते॥१३१५॥

अब और भी बाह्य देश में स्थित दश प्रकार के बेधों को कहता हूँ ॥ १३०८ ॥ कि कोण, दृक, छिद्र, छाया, ऋतु, वंश, अग्र, भूमि, और दाता ये बाह्य के देश वेध कहे हैं ॥ १३०९ ॥ जिस घर के कोण के अग्रभाग में अन्य घर हो वा जिसके कोणके सन्मुख अन्य कोण हो और घरके अर्द्धभाग से मिला हुआ अन्य घरका कोण होय तो वह घर शुभदायक नहीं होताहै ॥ १३१० ॥ कोणवेध घरमें व्याधि, धन का नाश, और शत्रुओं के संग विग्रह होता है ॥ एक प्रधान द्वार के सन्मुख अन्य घर का द्वार हो ॥ १३११ ॥ और घर से दूना द्वार हो उसको भी दृग्वेध कहतेहैं इस में धननाश, और

मरण होता है ॥ १३१२ ॥ समान और छोटा घर क्षुद्रवेध होनेपर पशुहानि करता है और जिस घर में दूसरे वा तीसरे पहर में अन्य घर की छाया पड़े ॥ १३१३ ॥ वह छायावेध कहलाता है यह रोग और पशुओं को करताहै और जिस घर में पहिले घरों की पंक्ति पूर्व उत्तर की हो और पिछली पंक्ति दक्षिण पश्चिम की हो ॥ १३१४ ॥ और वास्तु के मध्यमें जिसकी समान भित्ति हो वह घर शुभदायी कहा है और बिषम घर में अर्थात् जो एक ओर लम्बा और एक ओर कम हो उस में अनेक दोषों का करने वाला ऋजुवेध होता है ॥ १३१५ ॥

ऋजुवेधेमहात्रासोजायतेनात्रसंशयः ॥ वंशाग्रेचान्यवंशः स्यादग्रेबाभित्तिबाह्यगाः ॥ १६ ॥ तद्वंशेवेधयेद्गेहंवंशहानिः प्रजायते ॥ उक्षयोर्यत्रसंयोगोयूकाग्रेषुप्रजायते ॥ १७ ॥ उक्षवेधंविजानीयाद्विनाशङ्कलहंभवेत् ॥ पूर्वोत्तरेवास्तुभूमौविपरीतेथानिम्नका ॥ १८ ॥ उच्चवेधोभवेन्नूनंतद्वेधेनशुभप्रदम् ॥ द्वयोर्गेहान्तरगतंगृहन्तच्छुभदायकम् ॥ १९ ॥ गृहोच्चादर्द्धसंलग्नतथापाराग्रसंस्थितम् ॥ संघातमेलनंयत्रगेहयोर्भित्तिरेकतः ॥ २० ॥ विधिवश्यंशीघ्रमेवमरणंस्वामिनोर्द्वयोः ॥ पर्वतान्निःसृतंचाश्मदन्तवद्भित्तिसम्मुखम् ॥ २१ ॥ तद्दन्तवेधमित्याहुः शोकंरोगङ्करोतितत् ॥ अधित्यकासुयद्गेहंयद्गेहंपर्वतादधः ॥ १३२२ ॥

ऋजुवेध वाले घरमें निश्चय त्रास होताहै और जिस घरके वंशके आगे दूसरा वंश हो वो बाहर की ओर भित्ति हो ॥ १३१६ ॥ ऐसे वंश वेध वाले घरमें वंश की हानि होती है जिस घर की भुजाका संयोग यूकके अग्रभागमें अर्थात् स्तंभ के सन्मुख हो ॥ १३१७ ॥ उसको उक्षवेध कहतेहैं इसमें विनाश और कलह होताहै जिस वस्तुकी पूर्वोत्तर की भूमि विपरीत हो वा नीची हो १३१८ ॥ उसे उच्चवेध कहते हैं और यह शुभ नहीं होताहै ॥ दोघरों के बीच वाला घर शुभ होताहै ॥ ॥ १३१९ ॥ जिस घरकी ऊँचाई से आधे भागपर दूसरा घर हो और पारके अग्रभाग में स्थिति हो और जिस घरमें दो घरोंकी भित्ति एक स्थानमें हो वह संघातवेध होताहै ॥१३२०॥ उन घरोंमें दैववशात्

शीघ्रही दोनों मालिकों की मृत्यु होतीहै ॥ पर्वत से निकला हुआ पत्थर जिसकी भित्ति के सन्मुख हो ॥ १३२१ ॥ उसको दंतवेध कहतेहैं. यह शोक और रोग करने वाली है और जो घर पर्वत के ऊपर के भाग अथवा नीचेके भाग में हो ॥ १३२२ ॥

यद्गेहञ्चाश्मसंलग्नंघोरम्पाषाणसंयुतम् ॥ धाराग्रंसंस्थितं-वापिसंलग्नान्तरपर्वते ॥ २३ ॥ नदीतीरस्थितंवापिशृङ्गान्त रगतन्तथा ॥ भित्तिभिन्नन्तुयद्गेहंसदाजलसमीपगम् २४ ॥ रुदन्तद्वारशब्दार्थङ्काकोलूकनिवासितम् ॥ कपाटच्छिद्रहीन-ञ्चरान्नौचशशनादितम् ॥ २५ ॥ स्थूलसर्पनिवासञ्चयत्र-वज्राग्निदूषितम् ॥ जलस्रावान्वितंभीरुकुब्जङ्काणम्बधीर-कम् ॥ १३२६ ॥

और जो घर पत्थरसे मिलाहो वा विकट पषाणों से युक्त हो वा धाराके सन्मुख बना हो वा पर्वत के बीचमें हो ॥ १३२३ ॥ जो नदी के किनारेपर हो शिखरों के बीचमें हो जो घर भीतोंके द्वार से अलग होगये हों और जो सदैव जल के किनारे पर हो ॥ १३२४ ॥ जिसका द्वार रोता हुआ जिसमें कौए और उल्लूओं को निवास हो, जो कपाट और छिद्रोंसे हीनं हो, जिसमें शशेका शब्द होताहै ॥ १३१५ ॥ जिसमें स्थूल सर्पका निवासहो और जिस पर विजली पड़ी हो और जिसमें जल टपकता हो वा कुब्ज काणा बधिर हो ॥ १३२६ ॥

यच्चोपघातान्विभवंब्रह्महत्यान्वितन्तथा ॥ शालविहीनं-यच्चापिशिखाहीनन्तथैवच ॥ २७ ॥ भित्तिबाह्यवगतैर्दारुका-ष्ठैरुधिरसंयुतम् ॥ कृतङ्कण्टकिसंयुक्तंचतुष्कोणन्तथैवच ॥२८॥ श्मशानेदूषितेयच्चयच्चचैत्यनिकास्थितम् ॥ वासहीनन्तथा-म्लेच्छचांडालैश्चाधिवासितं ॥ २९ ॥ विवरान्तर्गतंवापि-यच्चगोधाधिवासितं ॥ तद्गृहेनवसेत्कर्त्तावसन्नापिनजी-वति ॥ १३३० ॥

जो उपघात और ब्रह्महत्या से युक्त हो और शालारहित वा शिखासे हीन हो ॥ १३२७ ॥ और भित्ति के बाहर वाले काठसे जो रुधिर संयुक्त

हो और जो चारों कोणोंमें कांटेदार हो ॥ १३२८ ॥ और जो श्मशान से दूषितहो वा चैत्यपर बनाहो जिसमें आदमी न वसतेहों अथवा म्लेच्छ, चाण्डाल आदि रहते हों ॥ १३२९ ॥ जो घर विवरोंके अन्तर्गत हों और जिस में गोधाका निवास हो ऐसे घरों में कदापि न रहै और रहेगा तो मरजायगा ॥ १३३० ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवर्जयेन्मतिमान्नरः ॥ अन्यवेश्मास्थितंदारुनैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत् ॥ १३३१ ॥ नगृहंकारयेद्धीमान्पुराणैर्नचदारुभिः ॥ कुर्वन्नाप्नोतिमरणंसंपदांनाशमेवच ॥ ३२ ॥ जीर्णेतुनूतनंशस्तन्नोजीर्णंनूतनेशुभम् ॥ पूर्वोत्तरेनीचगताउच्चस्थादक्षिणापरे ॥ ३३ ॥ तिर्यग्गताः सर्वदिशाभागेपीडावहागृहाः ॥ दक्षिणेयोजनमुच्चंपश्चिमेचार्द्धयोजनम् ॥ ३४ ॥ तदर्द्धमुत्तरेचैवतस्यार्द्धंपूर्वदिक्स्थितम् ॥ एतद्वेधंनृपाणाञ्चगृहाणांकथितान्द्विजाः ॥ १३३५ ॥

ऊपर कहेहुए हेतुओंसे बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि ऐसे घरोंको छोडदे और अन्य घरमें लगे हुये काठको अन्य घरमें न लगावै ॥ १३३१ ॥ पुराने काठोंसे नयाघर न बनवावै और बनवावै तो मृत्यु और धन नाश होता है ॥ १३३२ ॥ जीर्ण घरमें नयाकाठ अच्छा होता है, नये घरमें पुराना काठ अच्छा नहीं होता है और जिस स्थानके घर पूर्व उत्तरमें नीचे और दक्षिण पश्चिममें ऊंचे हो ॥ १३३३ ॥ और जिसकी संपूर्ण दिशा तिरछी हों और जिसके भागमें पीडाके दाता घर हों और जो दक्षिणको एक योजन ऊंचा हो और पश्चिममें अर्द्धयोजन ऊंचा हो ॥ १३३४ ॥ और उससे आधा ऊंचा उत्तरमें हो और उससे आधा पूर्व दिशामें हो यह वेध राजाओंके घरोंका होता है ॥ १३३५ ॥

विशेषेणाद्विजातीनाम्प्रमाणंकथयाम्यतः ॥ पूर्वोत्तरेनीचभागाशतपादान्वितन्तथा ॥ १३३६ ॥ दण्डानाम्पाश्चिमे याम्येद्विशतंसार्द्धसंयुतम् ॥ ऊर्द्धीभूतः पुमान्यस्यगेहाद्गेहान्तरंयदि ॥ ३७ ॥ दक्षिणस्थंप्रपश्येततद्वेधञ्चविनिर्दिशेत् ॥ उच्चस्थोप्यथनीचस्थःसदायाम्यगृहन्त्यजेत् ॥ १३३८ ॥

अब द्विजातियोंके घरोंका प्रमाण कहताहूं कि पूर्व उत्तरके नीचे भागें सौ पेड़ हों ॥ १३३६ ॥ और पश्चिम् दक्षिण में ढाईसौ पेड़ हों और जिसके ऊपरके भागमें स्थित मनुष्य एक घरसे यदि दूसरे घरको ॥ १३३७ ॥ जो दक्षिणमें स्थित हो देख सके वह वेध कहा है और ऊंचे वा नीचे भागमें बनेहुए दक्षिणके घर सदा छोड देने चाहिये ॥ १३३८ ॥

आयुःपुत्रकलत्राणियतः शीघ्रंविनश्यति ॥ पूर्वोत्तरेगृहे नीचेभवेदादौजलान्तिके ॥ १३३९ ॥ मध्यभूमिर्नदोषाय यावद्दृष्टिपथेनयोः ॥ तुङ्गस्थेपूर्वदिग्भागेदण्डाविंशतिसम्मिता न्न ॥ ४० ॥ नचान्यजातीयनरोनृपसद्मवसेन्नरः ॥ सौम्य भागेतथात्रिंशच्चत्वारिंशच्चपश्चिमे ॥ ४१ ॥ याम्येपञ्चाश त्संख्यानिदण्डानिनीचसंस्थितः ॥प्रासादवीथीचतथागृहञ्च आग्नेयवायव्यतथेशरक्षे ॥ त्रिकोणवेधः कथितः क्रमेणसुता र्थिनातत्रविवर्जनीयाः ॥ १३४२ ॥

ऊपर लिखेहुए घरोंमें निवास करनेसे आयु पुत्र कलत्र ये शीघ्र नष्ट होजाते हैं पूर्व उत्तरमें जो घर नीचा और जलके निकटवर्ती भागमें हो तो ॥ १३३९ ॥ बीचकी भूमि दोषकी दाता नहीं होती जबतक आंखोंसे दिखाई देतीरहै और जो घर ऊंचेभागमें स्थित पूर्वदिशाके भागमें बीस दंडोंसे युक्तहो वहभी श्रेष्ठ है ॥ १३४० ॥ अन्यजातिका मनुष्य राजमंदिरमें न वसै और उसके उत्तर भागमें तीस और पश्चिममें चालीस दंडहों ॥ १३४१ ॥ जिसकी दक्षिणदिशामें पचास दंड हों और नीचे भागमें स्थितहों—और प्रासादकी गली घर आग्निकोण ईशानकोण और नैर्ऋत कोणमें जिसके बेध हों यह त्रिकोण वेध होता है पुत्रका अभिलाषी मनुष्य इसको छोडदे ॥ ४२ ॥

आग्नेयन्दृष्टितोविद्धंवायौद्विगुणभूमिषु ॥ नैर्ऋत्येदण्डपथं यावदीशानेत्रिगुणंगृहात् ॥ ४३ ॥ एतन्नृपाणाङ्कथितंवर्णा नामनुपूर्वशः ॥ पूर्वाशादिक्रमेणैवब्राह्मणादिक्रमेणच ॥ पञ्चाशद्धनुषान्नीचैर्विधेयन्द्विजमन्दिरात् ॥ तथासौम्यज नोनीचोदण्डान्सप्ततिसंमितान् ॥ १३४४॥

अग्निकोणका घर दृष्टिसे विद्ध होताहै औरा वायुकोणका घर द्विगुणभू

मियों में विद्ध होताहै और नैऋत्य में जितना दृष्टिगत हो और इशानमें घर से तिगुनेगृहसे वेध होताहै ॥ ४३ ॥ यह राजाओंके घरों का वेध वर्णानुसार कहा है और वह वेध पूर्व दिशाआदिके क्रमसे और ब्राह्मण आदिवर्णों के क्रमसे कहाहै द्विजों के मंदिरसे पचाश धनुष नीचा अन्यजातियों का मंदिर होना चाहिये और शांत स्वभाववाला नीचजातिका मनुष्य सत्तरदंड नीचा घर बनवावै ॥ १३४४ ॥

जलाशासंस्थितोप्युच्चेप्रान्तदण्डान्हरेत्पुरात् ॥ याम्योच्च स्थोहरेद्गेहन्दन्डान्विंशतिसम्मितान् ॥ १३४५ ॥ शूद्राणान्तु समासेनकथयामिपुरात्पुरं ॥ दशदंडानिपर्य्यन्तंप्रयान्तेपूर्वनीचगं ॥ ४६ ॥ उत्तरेद्वादशदंडंनीचस्थानस्थितस्यतु ॥ पश्चिमेत्रिंशद्दण्डानियदिचेदुच्चभूमिषु ॥ ४७ ॥ दक्षिणेशत दंडानिगृहानिपरिवर्जयेत ॥ वैपरीत्येपादहीनान्दंडान्सन्त्य ज्यबुद्धिमान ॥ ४८ ॥ शतन्दंडानिपर्यंतम्पीडयतेपुरवासिनां ॥ समभूमिषुसन्त्याज्योवेधयेद्द्विजपुंगवाः ॥१३४९ ॥

वरुणकी दिशामें स्थित घर ऊंचाई में प्रांत के दंड भर पुरके प्रमाणसे न्यूनहो और दक्षिण दिशाका घर ऊंचाई में बीस दंड कम होना चाहिये ॥ १३४५ ॥ अब संक्षेप से शूद्रों के पुरसे ले कर पुरका वर्णन करता हूं प्रांत भागमें दश दंड तक पूर्व भागमें नीचा हो ॥ ४६ ॥ नीचे स्थान वाले घरके उत्तर भागमें ११ दंड होने चाहियें और पश्चिमका घर यदि उच्चभूमि में हो तो तीस दंड होते हैं ॥ १२४७ ॥ और दक्षिण भाग में सौदंड तक घरों को छोड दे और विपरीतभाग में पूर्वोक्त विधि से पादहीन दंडोंको छोड कर ॥ १३४८ ॥ सौदंड तक पुरवासियों को पीडा होती है और ये वेध द्विजों को समान भूमिमें त्यागने योग है ॥ १३४९ ॥

दक्षिणन्तोदिग्विषयेभवनवरेर्थक्षयोगनादोषाः ॥ सुतमरणंप्रेक्षत्वेभवतिसदातत्रवासिनांपुंसां ॥ गृहंगृहार्द्धञ्चतथाचतुर्थीभावोभवेदिविषयेस्थितोवा ॥ उर्द्धेचनीचेयमादिकस्थतस्यगेहञ्चचाग्रेप्रभवेच्चदोषः ॥ ५० ॥ अमावास्योद्भवाकन्यापितृहायोगताः सुतः ॥ तथायाम्यगृहन्त्याज्यन्नरेण-भूतिमिच्छता ॥ १३५१ ॥

जिस घर का दिशाओं के बीच दक्षिण में अंत हो उसमें धनका क्षय और स्त्रियों में दोष होता है और जो दूसरे घर से दिखाई दे उसमें रहने वाले पुरुषों के पुत्रों का मरण होताहै । पूरा घर वा घरका आधाभाग यह चौथा भाव यदि दिशाओं के विषयमें स्थित हो और दक्षिण दिशामें स्थित घरके ऊंचे, वा नीचे, भाग में आगे दूसरा घर होय तो दोष होता है ॥ १३५० ॥ जैसे अमावास्यामें उत्पन्न हुई कन्या और पुत्र योगसे पिताका मरण होता है ऐसे ही ऐश्वर्य्याभिलाषीको उचित है कि दक्षिण दिशा के घर को त्याग दे ॥ १३५१ ॥

रक्तकेशीघ्रलम्बोष्ठीपिङ्गाक्षीकृष्णतालुका ॥ भर्तारंहन्ति-साक्षिप्रंतथायाम्यगृहात्पुरम् ॥ ५२ ॥ आलस्येनयथादेहंकु-पुत्रेणयथाकुलम् ॥ दरिद्रेणयथाजन्मतथायाम्यगृहात्पुरं ॥ ५३ ॥ उदीचींम्विन्यसेदादौपश्चाद्याम्यन्तुविन्यसेत् ॥ तद्गृहंविद्यतेतत्रपुत्रदारादिनाशनम् ॥ ५४ ॥ ईशानेविन्य-सेच्छागन्नाछागः सिंहभक्षकः ॥ आग्नेयस्थंगृहङ्काकंवाय-व्यस्थंश्येनन्तथा ॥ ५५ ॥ काकंचभक्षयेदादौपश्चान्नैर्ऋ-त्यदिक्कृतम् ॥ छागसदृशमीशानेसिंहनाम्नातुनैर्ऋते ॥५६॥ सिंहोभक्षयतेश्येनंनकाकः श्येनभक्षकः ॥ आग्नेयादिक्रमेणैव-अन्त्यजावर्णसंकराः ॥ १३५७ ॥

जैसे रक्तकेशी, लंबोष्ठी, पिंगाक्षी, कृष्णतालुका कन्या शीघ्र अपने स्वामी को मारती है इसी प्रकार दक्षिण दिशा के घरसे पुर नष्ट होता है ॥ ५२ ॥ और जैसे आलस्य से देह, कुपुत्र से कुल और दरिद्रसे जन्म वृथा होते हैं ऐसेही दक्षिण के घरसे पुरनष्ट होताहै ॥ १३५३ ॥ जहां प्रथम उत्तर दिशामें घर बनायेजांय और दक्षिणदिशामें पीछे बनाये जांय ऐसा घर जहां हो वहां पुत्र और दारा आदिका नाश होता है ॥ १३५४ ॥ ईशान में बकराका स्थापन करै और छाग सिंहका भक्षण नहीं कर सकता अग्निकोणका घर काक होता है और वायव्यदिशा का घर श्येन होता है ॥ १३५५ ॥ वह श्येन प्रथम काकको भक्षण करता है और पीछे नैर्ऋत्य दिशाके कृत्य बनवावै और ईशान में भी छाग के समान चिन्ह बनावै और नैर्ऋत्यका घर

सिंह के नामसे होता है ॥ १३५६ । सिंह श्येनको भक्षण करताहै और काक श्येनका भक्षक नहीं होता और अग्निकोणादि के क्रमसे अन्त्यज और वर्ण संकरों को बसाना चाहिये ॥ १३५७ ॥

ज्ञातिभ्रष्टाश्चचौराश्चविदिक्स्थानैवदोषदाः ॥ वैपरीत्ये-नवेधः स्यात्तद्गृहाणांविरोधतः ॥ १३५८ ॥ उत्तरेद्विगुणा भूमिः समाभूमिश्चपूर्वके ॥ पश्चिमेत्रिगुणाभूमिः क्रोशमेक न्तुदक्षिणे ॥ ५९ ॥ मेखलासंस्थितङ्गेहन्द्वारस्याभिमुखंच-यत् ॥ तद्गृहंनशुभम्प्रोक्तंयदिसौम्योत्तरेस्थितम् ॥ ६० ॥

जाति भ्रष्ट और चार बिदिशाओं में स्थित होंय तो दोषकारक नहीं होते और इससे विपरीत भाव में स्थितहों तो उनके घरों के विरोध से दोष होता है १३५८ घर से उत्तर दिशामें घरसे दुगुनी भूमि, पूर्वमें घरके समान, पश्चिम में तिगुनी, और दक्षिण में एक कोशभर भूमि का मैदान अच्छा होता है ॥ ५९ ॥ और जो घर मेखलापर स्थित हो और जो द्वार के संमुख हो वह घर यदि सौम्य और उत्तर दिशा में स्थित होय तो शुभ नहीं होता ।६०।

दशहस्तामेखलास्याच्चतुर्थांशेनवागृहात ॥ नगराद्विगुणा भूमिः परित्याज्याशुभेप्सुना ॥ ६१ ॥ नगरंकारयेच्चान्यत्त त्रवेधंविनिर्दिशेत् ॥ यस्मिन्मार्गेजनास्सर्वेमृतायान्तिपितृ-क्षयम् ॥ ६२ ॥ मार्गः सएवविज्ञेयः शेषा देशान्तरम्प्रति ॥ गृहभित्तिषुयेलग्नातेगृहागृहिणांसदा ॥ ६३ ॥ भयदाः पुत्र-सन्तापकारकास्तत्रकारयेत् ॥ यथायाम्यन्तथावार्यंयथावा यन्तथाउदक् ॥ १३६४ ॥

दश हाथ की वा घरके चौथाई भाग की मेखला होती है और शुभाभि-लाषी को उचित है कि नगर से दूनी भूमि को त्याग दे ॥ ६१ ॥ और अन्यथा नगर को बनवावै तो उस में वेध को देखै जिस मार्ग से मरेहुये मनुष्य यमलोक को जाते हैं ॥ ६२ ॥ वही मार्ग जानना शेष मार्ग देशांतरों के होते हैं जो गृहस्थियों के घर घरों की भित्तियों से लगे हुये हैं ॥ ६३ ॥ वे भयकारक और पुत्रों को दुःखदायक होते हैं इस से जैसा घर दक्षिण

में बनावै वैसाही पश्चिम में बनावै और जैसा वायु दिशामें हो वैसाही उत्तर दिशा में बनावै ॥ १३६४ ॥

यथाउदक्तथापूर्वेफलंसाम्यंप्रकीर्तितम् ॥ आकर्षयेद्यथा चापमारुह्यभवनंनरः ॥ ६५ ॥ विलोकयतिबाणेनलक्षवत्तं भिनत्तिसः ॥ मूलात्तदीशकाष्ठांतंजलेनापूरितंस्थलम् ॥ ॥ ६६ ॥ नविलीनंक्वचिद्रन्ध्रेतदंतस्थंनदोषकम् ॥ कूपोद्या प्रपावापीतडागचजलाशये ॥ ६७ ॥ मन्दिरेदेवसदनेचैत्ये प्राकारतोरणे ॥ सततंवसतेवास्तुतन्मध्यस्थंगृहेशुभम् ॥६८॥

जैसा उत्तर में हो वैसाही पूर्व में बनवावै तौ समान फल होता है जैसे मनुष्य भवन पर चढकर धनुष को खींचसके ॥ १३६५ ॥ और बाहिर के मनुष्यों को देख सकै वा बाणसे लक्ष्यवाले का भेदन करसकै और मूल से उसके स्वामी की दशा पर्यन्त स्थल जलसे भराहुआ हो ॥ १३६६ ॥ और जो कही भी छिद्रमें छिपा न हो ऐसे स्थलके मध्य का घर दोषदायक नहीं होता कूप उद्यान प्रपा वापी तडाग और जलाशय में ॥ ६७ ॥ मन्दिर देवस्थान चैत्य प्राकार तोरण इनमें निरन्तर वास्तु वसता है उनके मध्य में स्थित घर शुभ होता है ॥ १६८ ॥

दक्षिणोत्तरयोश्चैवतथापश्चिमपूर्वयोः ॥ मार्गयोर्मेलनंय त्रतच्चतुष्पथमीरितं ॥ ६९ ॥ आदौगृहन्दक्षिणभागसंस्थं पश्चात्तथोत्तरं ॥ मध्यस्थानकृतङ्गेहन्नदुष्यतिकदाचन ॥७०॥ तथैवपश्चिमेपूर्वेकृतंमध्यगतङ्गृहं ॥ तथैवसुखदम्प्रोक्तंसदनं पश्चिमेस्थितं ॥ १३७१ ॥

दक्षिण उत्तर में तैसेही पश्चिम पूर्वमें इन चारों में जहां मार्गों का मेलहो उसे चौराहा कहते है १३६ ॥ पहिला घर दक्षिण भागमें और पश्चिमका घर उत्तर भागमें हो इनके बीचमें बनाया हुआ घर भी दूषित नहीं होता ॥७०॥ और इसी तरह पश्चिम और पूर्व के घरों के बीचमें जो घर है वहभी सुखदायक होता है और इसी तरह पश्चिम दिशा का घर सुखदायी होता है ॥ १३७१ ॥

विषमेनभवेद्वेधंनवेधञ्चनतोन्नते ॥ गृहस्यदक्षिणेभागे कूपोदोषप्रदोमतः ॥ १३७२ ॥ अपत्यहानिर्भूनाशस्त्वथवा रोगमद्भुतम् ॥ अदर्शनेनदीपारेदूरेवासमभूमिषु ॥ ७३ ॥ नवेधन्तेगृहाः सर्वेयथोक्तापिदिशिस्थिताः ॥ अश्वत्थश्चप्लक्ष वटोदुम्बराश्चक्रमेणच ॥ ७४ ॥ पूर्वादिदिक्षुवेधःस्यात्सर्वेषां प्राक्तनाविदुः ॥ राजवृक्षंतथानिंबंचाम्रकङ्कदलीफलम् ।७५।

विषम घरमें अथवा ऊंचे नीचे घरमें वेध नहीं होता, घरके दक्षिणभागमें यदि कूप बनायाजाय तौ दोषप्रद होताहै ॥ १३७२ ॥ ऐसा होनेसे संतानकी हानि, भूमिका नाश, अथवा अद्भुत रोग होता है तथा नदीपार वा दूरकी और समान भूमिकी वा जो दिखाई नहीं देतीहै ॥ १३७३ ॥ पूर्वोक्त दिशाओं में स्थित होतोभी वेधको प्राप्त नहीं होते । पीपल पाकर बड़ और गूलर ये चारों वृक्ष क्रमसे ॥ १३७४ ॥ पूर्व आदि दिशाओंमें होंय तो वेध होता है यह बात पहिले आचार्य जानते हैं और राजवृक्ष, नीम, आम, और केला ॥ १३७५ ॥

पूर्वादिक्रमयोगेनवेधन्त्येतद्द्रुमास्तथा ॥ आग्नेयादिक्रमे णैवक्षीरिणोथकदम्बकाः ॥ १३७६ ॥ कण्टकाः कदली स्तम्भाःवेधन्तेचफलद्रुमाः ॥ विवरम्पूर्वदिग्भागेदक्षिणेमठम न्दिरम् ॥ ७७ ॥ पश्चिमेपौष्करन्तोयंखातमुत्तरसंज्ञके ॥ पूर्वेणफलिनोवृक्षाः क्षीरवृक्षाश्चदक्षिणे ॥ ७८ ॥ पश्चिमेज लजावृक्षारिपुतोभयदायकाः ॥ क्षीरिणश्चार्थनाशायफलिनो दोषदामताः ॥ दशदण्डानिपर्यन्तम्पीड्यन्तेपुरवासिनाम् ॥ ॥ ७९ ॥ कलहञ्चाक्षिरोगंचव्याधिशोकन्धनक्षतिः ॥८०॥

ये वृक्ष पूर्व आदि दिशाके क्रमसे ऊंचे हों तो वेध करते हैं और आग्नेय आदि विदिशाओंके क्रमसे दूधवाले वृक्ष कदंब ॥ १३७६ ॥ कांटेदार वृक्ष और केलेके खंभ होंय तो ये फलके वृक्ष वेध करते हैं पूर्व दिशा में छिद्र हो और दक्षिणमें मठ मंदिर हो ॥ १३७७ ॥ और पश्चिममें कमल हो और उत्तर में खाई हो पूर्वमें फलवाले वृक्ष हों और दक्षिणमें दूधके वृक्ष हों ॥ १३७८ ॥ पश्चिममें जलमें उत्पन्न वृक्षहों ये सब शत्रुओंसे भय उत्पन्न करते हैं और दूध

वाले अर्थ नाशक और फलवाले दोषको देते हैं दश दंडतक पुरवासियोंको पीडा देते हैं ॥ १३७९ ॥ और कलह, नेत्ररोग, व्याधि, शोक, और धन नाश करते हैं ॥ १३८० ॥

वीथ्यन्तरेणदोषः स्यान्नदोषम्मार्गमध्यगम् ॥ विदिक्स्थं नैववेधन्तुनवेधन्दूरतः सदा ॥ १३८१ ॥ नीचस्थानेभवेद्वेधः कोणवेधस्तथैवच ॥ भित्त्यंतरेनदोषःस्यान्नदोषञ्चैत्यमध्यमम् ॥ ८२ ॥ नदोषःपुष्करान्तस्थन्नदोषोबाणघातके॥ नदोषन्तुविकोणेतुनदोषंफलवृक्षके ॥ ८३ ॥ नदोषन्नीचजातेषुनदोषंभग्नमन्दिरे ॥ चतुष्पथान्तेनभवेद्वेधोजीर्णगृहान्तरे ॥ ८४ ॥ अत्युच्चमतिनीचञ्चमध्येविषमलंघनम् ॥ अन्तर्जलाद्रिपत्रनेवेधदोषोनविद्यते ॥ ८५ ॥ अन्तरारोपितावृक्षाः बिल्वदाडिमकेसराः ॥ नतत्रवेधदोषःस्यात्सत्यम्ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ॥ ८६ ॥ षड्वर्षेम्रियतेस्वामीगतश्रीर्नवमेभवेत् ॥ चतुर्थेपुत्रनाशः स्यात्सर्वनाशस्तथाष्टमे ॥ १३८७ ॥

वीथीके बीच में दोष होता है और मार्गके मध्यमें दोष नहीं होता विदिशाओंमें स्थित हो और दूरपर होय तो वेध नहीं होताहै ॥ ॥ १३८१ ॥ नीचेके स्थानमें वा कोणमें वेधहोता है भित्तिके बीचमें चैत्य केबीचमें दोष नहीं होताहै ॥ १३८२ ॥ कमलोंके वीचमें वा बाणघातकमें दोष नहींहोता है विकोणोंमें और फलके वृक्षमेंभी दोष नहीं होता है १३८३ ॥ इसी तरह नीच जातियोंमें वा टूटेहुए मंदिरमें दोष नहीं है । चौराहेके अंतमें वा जीर्णघरोंके मध्यमेंभी दोषनहीं है ॥ १३८४ ॥ अत्यंत उंचे, अत्यंत नीचे, और मध्यमें विषमलंघन में और मध्यमें जहां जल और पर्वत हों इनमें भी वेधका दोष नहीं होता ॥ १३८५ ॥ जिस मंदिरके बीचमें बेल आम अनारके वृक्ष लगाये हुये हों उसमेंभी वेधका दोष नहीं है यह ब्रह्माके मुखसे सुनीहुई वात सत्य है ॥ १३८६ ॥ छठे वर्षमें स्वामी मरता है और नवम वर्षमें लक्ष्मीका नाश होता है और चौथे वर्षमें पुत्रका नाश आठवें वर्षमें सर्वनाश होताहै। ३८७

पक्षेणमासेनऋतुत्रयेणसंवत्सरेणापिफलंविधत्ते ॥ शुभाशुभंक्षेममिदंबुधैस्तुनातःपरंतत्रविचारमस्ति ॥ ८८ ॥ मातङ्गो

दक्षिणेभागेपूर्वेपश्चात्तथोत्तरे ॥ सिंहोविधत्तेमरणंपुत्राणान्दोषदम्महत् ॥ ८९ ॥ पूर्वेवृषन्तथातोयेध्वजंदोषकरम्महत् ॥ इतिकण्ठीरवौगेहौयाम्यपश्चिमेदिक्स्थितौ ॥ ९० ॥ पूर्वोत्तरे ध्वजोक्षाणांमहापीडाकरौमतौ ॥ जंबीरैःपुष्पवृक्षैश्चपनसैर्दाडिमैस्तथा ॥ ९१ ॥ जातीभिर्मल्लिकाभिश्चशतपत्रैश्चकेसरैः॥ नालिकेरैश्चपुष्पैश्चकर्णिकारैश्चकिंशुकैः ॥ ९२ ॥ वेष्टितंभवनंनृणांसर्वसौख्यप्रदायकम् ॥

एक पक्ष वा एक महीना वा तीन ऋतु वा एक बर्षमें घरका शुभ वा अशुभ फल मालूम होजाताहै इतनाही अच्छाहै बर्ष दिन पीछे कुछ बिचार नहीं रहताहै ॥ ८८ ॥ जिस मंदिर वा किलेमें हाथीका स्थान दक्षिण भागमें हो और पूर्व पश्चिम उत्तरमें सिंहका स्थान हो तो मृत्यु सूचकहै और पुत्रों को बडा दोषकारकहै ॥ ८९ ॥ पूर्वमें वृष जल वा ध्वजा होय तो अनर्थ कारक होतेहैं यदि कंठीरव नामक घर दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें होंय तो ॥ ९० ॥ और पूर्व उत्तरमें ध्वजा होय तो बैलोंको महापीडा कारक होतेहैं, जंबीर पुष्पके वृक्ष, पनस और अनार इनसे ॥ ९१ ॥ जाती चमेली शतपत्र, केसर, नारियल, पुष्प, और कनेर इनसे ॥ ९२ ॥ आच्छादित घर मनुष्यों कों संपूर्ण सुखका दाता होताहै ॥

आदौवृक्षाणिविन्यस्यपश्चाद्गृहाणिविन्यसेत् ॥ ९३ ॥ अन्यथायदिकुर्यात्तुतद्गृहन्नैवशोभनम् ॥ नगरंविन्यसेदादौ पश्चाद्गेहानिविन्यसेत् ॥ ९४ ॥ अन्यथायदिकुर्वाणस्तदानशुभमादिशेत् ॥

पहिले वृक्षों को लगाकर पीछे घर बनवाना उचित है ॥ ९३ ॥ इससे विपरीत करनेपर घर शुभ नहीं होता. प्रथम नगरका विन्यास करै अर्थात् नगरकी भूमिका निर्णय कर पीछेसे घरोंको बनवावै ॥ ९४ ॥ इससे अन्यथा करै तो शुभ नहीं होता ।

पीताथपूर्वेकपिलाहुताशेयाम्येचकृष्णानिर्ऋतौचश्यामा ॥ शुक्लाप्रतीच्यांहरिताथवायौश्वेताथसौम्येधवलाचईशे१३९५।

ईशानपूर्वयोर्मध्येश्वेतापश्चिमनैर्ऋते ॥ तयोर्मध्येरक्तवर्णापता कापरिकीर्तिता ॥ ९६ ॥ सर्ववर्णातथामध्येपताकाकिंकिणी युता ॥ बाहुप्रमाणाकर्तव्यास्तंभंबाहुप्रमाणकम् ॥ १३९७ ॥

पूर्वदिशामें पीली पताका, अग्निकोणमें कपिलरंग की, दक्षिणमें काली, नैर्ऋतिमें श्याम वर्ण पश्चिम में शुक्ल, वायव्यमें हरी, उत्तरमें सपेद, और ईशानमें धवल रंगकी पताका होती है ॥ ९५ ॥ और ईशान पूर्वके मध्यमें सफेद, पश्चिमनैऋतके बीचमें लालरंगकी ॥ ९६ ॥ और झालरदार सबरंगों की पताका मध्यमें होती है यह पताका बाहु के समान लंबी और उसका खंभ भी उतना ही लंबा होता है ॥ ९७ ॥

यद्वारमार्गेपूर्वेतुध्वजः षोडशहस्तकः ॥ स्तंभोस्यांविधि वत्स्थाप्यः सघंटाभरणीकृतः ॥ ९८ ॥ पुष्पमालान्वितः स्था प्योद्वारमार्गेथदक्षिणे ॥

द्वारमार्ग के पूर्व भागमें सोलह हाथलंबी ध्वजा बनावै इसके खंभ भी घंटा और आभूषणोंसे युक्त विधि पूर्वक स्थापन करना चाहिये ॥ ९८ ॥ और दक्षिण में फूलमालाओं से युक्त स्तंभ द्वारमार्ग में स्थापन करै ॥

इतिप्रोक्तंवास्तुशास्त्रंपूर्वंगर्गायधीमते ॥ ९९ ॥ गर्गात्परा शरः प्राप्तस्तस्मात्प्राप्तोबृहद्रथः ॥ बृहद्रथाद्विश्वकर्माप्राप्तवा न्वास्तुशास्त्रकम् ॥ १४०० ॥ सविश्वकर्माजगतोहितायाक थयत्पुनः ॥ वासुदेवादिषुपुनर्भूलोकेभक्तितोब्रवीत् ॥ १४०१ ॥ इदंपवित्रंपरमंरहस्यंयः पठेन्नरः ॥ तस्यस्यामदवितथावाणी सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ १४०२ ॥

यह वास्तुशास्त्र ब्रह्माजीने गर्गमुनि को सुनाया ॥ ९९ ॥ गर्गमुनिने पराशर को जगतके हितकी कामना के लिये पराशर ने बृहद्रथको, बृहद्रथ ने विश्वकर्माको ॥१४००॥ और विश्वकर्मा ने जगतके हितके लिये वासुदेव आदिकोंको भूलोक में भक्तिपूर्वक सुनाया ॥ १४०१ ॥ यह बडा पवित्र, परम गुप्त तंत्रहै जो मनुष्य इसे पढताहै उसकी बाणी फलवती होजातीहै यह मैं सत्य सत्य कहताहूं ॥ १४०२ ॥

अथसुविमलविद्योविश्वकर्मामहात्मासकलगुणवरिष्ठःसर्व-शास्त्रार्थवेत्ता ॥ सकलसुरगणानांसूत्रधारःकृतात्माभवनानि-वसतांसच्छास्त्रमेतच्चकार ॥ १४०३ ॥ इति श्रीब्रह्मोक्तवि-श्वकर्मप्रकाशेविश्वकर्मणोक्तवास्तुशास्त्रेत्रयोदशोऽध्यायः १३

तदनंतर अत्यंत उज्ज्वलविद्यासंपन्न, सकल गुण वरिष्ठ, संपूर्ण शास्त्रार्थों का जाननेवाला, संपूर्ण देवगणों का सूत्रधार और कृतात्मा विश्वकर्मा संसारी जीवोंके लिये इससर्वोत्तम ग्रंथको रचता हुआ ॥ १३०२ ॥ इतिश्री विश्वकर्म-प्रकाशे विश्वकर्मणोक्तवास्तुशास्त्रे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

नवीन और उपयोगी पुस्तकों का विज्ञापन ।

सुश्रुतसंहिता ।

मूल भाषा टीका शारीरिक के चित्र और अंग्रेजी कोष सहित ।

हे प्रियवरों आज हम सहर्ष आप लोगों का चित्त इधर खींचतेहैं क्यों कि यह कहावत प्रसिद्ध है, कि " एक तन्दुरुस्ती और हजार नियामत " चाहै जैसी प्रियवस्तु क्यों न हो तन्दुरुस्तीके बिगड़तेही वह अप्रिय मालूम होने लगती है, यहांतक तो है कि मनुष्य प्यारी से प्यारी देहसे भी ग्लानि करके मृत्यु की बाट देखने लगता है अस्तु यह देह रक्षा आयुर्वेद के प्राचीन सद् प्रबन्धों में कहे हुए नियमों को पालन करने सेही हो सकती है वे नियम जैसे पूर्ण रूप से इस ग्रंथ में दिये हैं, किसी दूसरे ग्रंथ में दर्शन को भी नहीं है, इसी ग्रंथ का आशय ले लेकर, अथवा ज्यों का त्यों प्रकरणों को लेकर बहुत से नवीन वैद्यों ने अपने अपने नाम से ग्रंथ रच दिये है वैद्यक के इस अखिल भंडार में चिकित्सा सम्बधी कोई भी ऐसा विषय नहीं छोड़ा गया है जिससे दूसरे ग्रंथ की आवश्यकता हो यदि पांच सौ रुपये की कीमत के अन्यग्रंथ खरीदलो तोभी इसकी समता नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह तो स्वंय धन्यन्तरिजी के मुख का उपदेश है इस ग्रंथ की अनुक्रमणिका ९० पृष्ठ में है शारीरिक संबधी चित्र ४० पृष्ठ में संपूर्ण ग्रंथ १४८० पृष्ठ में समाप्त है कागज पुष्ट अक्षर मुम्बई बिलायती कपड़े की सुनहरी अक्षरों की जिल्द मूल्य डाकव्यय सहित १०) रुपया है ॥

गर्ग संहिता ।

मूल वृजभाषा टीकासहित ।

यह ग्रन्थ श्रीकृष्णचन्द्र महाराजके कुल पुरोहित श्रीगर्गाचार्य्यजीका बनाया हुआहै इसमें भगवान के अनेकानेक ऐसे गूढ रहस्य हैं जो श्रीमद्भागवतादिक ग्रंथों में भी नहीं हैं इसका श्रवण और पठन भक्तिशून्य मनुष्य के हृदय में भी भक्तिका संचार करते हैं इसके श्लोकों की रचना ऐसी कर्ण प्रिय है कि सुनते सुनतेजी नहींभरताहै जो श्रीकृष्णचन्द्र के भक्तहैं वह इस ग्रन्थको लियेविनाकदापि नहीं रहेंगे मुम्बई के मोटे अक्षरों में छपा हुआ मूल्य ६) रु०

चरक संहिता ।

मूल भाषाटीका आयुर्वैदिक इतिहास सहित ।

यह ग्रंथ आयुर्वेद के ग्रथों में सव से प्राचीन चिकित्सा का अखिल भंडार

और आर्य्यावर्त्त का गौरव स्वरूप है यदि आकाश के तारागण समुद्र की बालू के कण और मेघके बिंदु किसी प्रकार गणना में आसक्के हों तो इस ग्रन्थके गुण भी गिनने में आसक्के हैं इसकी प्रशंसा से पत्रको भरना वृथा है क्योंकि ऐसा कोई हिन्दू नहीं है जिसने इसका नाम न सुन हो इस्के निघंट भाग में ५०० द्रव्यों के अंग्रेजी, फारसी, अर्बी, बङ्गला, हिन्दी गुजराती, मरहटीआदि भाषाओं के नामांतर हैं जिस से सब को उपयोगी होगा ग्रंथ के प्रारम्भ में आयुर्वेदी इतिहास है जिस में चरक, सुश्रुतादि सम्पूर्ण आयुर्वेद के ग्रंथकारों को जीवन चरित्रभी है इसके विषयोंकी अनुक्रमणिका ८० पृष्ठमें है इस तरह इस ग्रंथ में सब मिलाकर १२०० पृष्ठ हैं यह ग्रंथ ३० पौंड के मोटे चिकने बिलायती कागज पर मुम्बई के अक्षरों में बहुत स्पष्ट छापा गया है सुनहरी जिल्द मूल्य डाकव्यय सहित १०) रुपया है ॥

आनन्द वृन्दावन चम्पू ।

सुखवर्तनी टीका सहित ।

लीजिये ! लीजिये ! ! जो ग्रंथ अबतक मरुस्थल के जलकी भांति रसातल में छिप रहाथा वही ग्रंथ सम्पूर्ण बाईसों स्तबकमें छपकर तयारहै कोई पण्डित और विद्वान् ऐसा नहीं है जिसने इसका नाम न सुना हो परंतु इसके दर्शन दुर्लभ थे जिसको हाथ से लिखवाने में पच्चीस तीस रुपया से कम नहीं लगते थे वही वैष्णवों का एक मात्र धन श्रीमद्भागवतादि ग्रंथों के वक्ताओं का हस्तयष्टि विद्वानों की बुद्धि का परीक्षक भक्ति शून्यजनों में भक्ति संचारक और श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का महासागर छपकर तयार है इसकी श्लोक संख्या श्रीमद्भागवत के समान है यह वृहदग्रन्थ ६२५ पृष्ठ में सम्पूर्ण विलायती कागजपर मुंबई अक्षरों में छपा हुआ तयार है इस्की जिल्द बलायती कपडे की बंधी हुई है श्लोंकोपर यत्रतत्र अन्वयांक और कठिन स्थलोंपर टिप्पणी भी दीगई है इन सब बातों के होते भी इस्का मूल्य केवल ४) रु० है डाकव्य ॥) है लेना है तो ले लीजिये नहीं पीछे दाम बढजायगा ॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना–

किशनलाल द्वारकाप्रसाद (२) **पंडित श्रीधरशिवलाल**

बंबईभूषण छापाखाना — ज्ञानसागर छापाखाना

मथुरा । — **मुंबई ।**